Ph.D THESIS

नव औपनिवेशिक सन्दर्भ में समकालीन कहानी: एक विश्लेषण

NAV AUPANIVESHIK SANDARB MEIN SAMAKALEEN KAHANI: EK VISHLESHAN

Thesis
Submitted to
Cochin University of Science and Technology

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY
In
HINDI
Under the Faculty of Humanities

By
टीना तोमस
TEENA THOMAS

Dr. R. SASIDHARAN
Head of the Department

(Prof.) Dr. M. SHANMUGHAN
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

JULY 2013

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled **"NAV AUPANIVESHIK SANDARB MEIN SAMAKALEEN KAHANI: EK VISHLESHAN"** is an authentic record of research work carried out by **TEENA THOMAS** under my supervision at the Department of hindi, Cochin University of Science & Technology, in partial fulfilment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI and that no part thereof has been included for the award of any other degrees.

(Prof.) Dr. M. SHANMUGHAN
Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi - 682 022

Place:

Date :

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"NAV AUPANIVESHIK SANDARB MEIN SAMAKALEEN KAHANI: EK VISHLESHAN"** is the bonafide record of the original work carried out by me under the supervision of **Dr. M. Shanmughan,** Professor, at the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, and no part thereof has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

TEENA THOMAS
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 682 002

Place:
Date :

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-74

नव औपनिवेशिक पृष्ठभूमि व परिवेश का समग्र विश्लेषण

स्वतंत्र्योत्तर राजनीति का विवेचन - स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ज़ारी आर्थिक शोषण -भारत पर साम्राज्यवादी देशें खासकर अमेरिका का दबाव - गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सीमाएँ - नरसिंहराव सरकार की नई आर्थिक नीति - ढांचागत समायोजन कार्यक्रम - गैट समझौते पर भारत के ऐतिहासिक हस्ताक्षर - विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता - भूमण्डलीकरण की स्वीकृति - उदारीकरण व निजीकरण पर अधिष्ठित नई आर्थिक नीति - बाबरी मस्ज़िद के ध्वस के बाद बनी साम्प्रदायिकता - गोध्रा कांड और गुजरात का नरसंहार - अध्यात्मिकता के तहत अन्तर्निहित धर्म की राजनीति

दूसरा अध्याय 75-124

कहानी के औपनिवेशिक प्रतिरोधी आयाम का ऐतिहासिक विवेचन

प्रेमचन्द और यशपाल की कहानियों में अभिव्यक्त उपनिवेशिक विरोध - नई कहानी, सक्रिय कहानी व जनवादी कहानी में जाहिर साम्राज्यवादी व साप्रदायिक विरोधी आयाम

तीसरा अध्याय 125-218

नव औपनिवेशिक व्यवस्था के खिलाफ उभर आए प्रतिरोधी आयाम - समकालीन कहानी में

भूमंडलीकरण व उपभोग संस्कृति के खिलाफ रचित कहानियों का विश्लेषण - उदय प्रकाश की कहानियाँ - संजीव की कहानियाँ - असगर वज़ाहत की कहानियाँ - पंकज विष्ट की कहानियाँ - सांप्रदायिकता की पोल खोलती कहानियाँ - स्त्री को उपभोगवस्तु की तरह मूल्यांकित करते औपनिवेशिक सांस्कृतिक परिवेश में लिखी महिला कहानिकारों की कहानियाँ

चौथा अध्याय 219-251

अभिव्यक्ति पक्ष का नया विन्यास

प्रेमचन्द युगीन कहानी का शिल्प पक्ष - नई कहानी का शिल्प पक्ष - अन्य शैलियों का प्रयोग - मिथक और प्रतीकों का प्रयोग - नव औपनिवेशिक संदर्भ में रचित समकालीन कहानी का शिल्प - भाषा - जनसाधारण की भाषा का प्रयोग - हिन्दीतर शब्दों का प्रयोग - आंचलिक प्रयोग - प्रतीकों का प्रयोग - बिम्ब और उपमान - अलंकार - कहानी के शीर्षकों में नवीनता - कहानी का आकार - पात्रों का नामकरण

उपसंहार 252-269

संदर्भ ग्रन्थ-सूची 270-293

पुरोवाक्

पुरोवाक्

विलयती शासन से आज़ाद होने के बाद भी जो साम्राज्यवादी शोषण ज़ारी रहा, उसे अभिहित करने के लिए 'नव उपनिवेशी दौर का शोषण' अभिहित किया जाता है । वर्तमान भूमण्डलीकरण प्रक्रिया के दौर में यह आर्थिक शोषण ज़ोर पकड़ रहा है । इस से सामाजिक ज़िन्दगी का कोई भी आयाम मुक्त नहीं है। आज सांस्कृतिक क्षेत्र पर जो हमला हो रहा है, बिलकुल त्रासद एवं नृशंस है । नव औपनिवेशिक दौर के इस अमानवीय परिवेश के खिलाफ संस्कृतिकर्मियों ने कारगर ढंग से अपना प्रतिरोध जाहिर किया है; अपने माध्यमों को औजार की तरह प्रयोग भी किया है । हिन्दी साहित्यकार, खासकर समकालीन कहानीकारों ने इस हालात के खिलाफ सक्रिय प्रतिक्रिया प्रकट की है । यह शोध प्रबन्ध इस प्रतिक्रिया के आकलन का एक छोटा सा विनम्र प्रयास है ।

मैंने इसका शीर्षक **"नव औपनिवेशिक संदर्भ में समकालीन कहानी: एक विश्लेषण"** रखा है । अध्ययन की सुविधा के लिए यह चार अध्यायों में विभजित है । तीसरे अध्याय के तीन खण्ड हैं । अंत में उपसंहार है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पहले अध्याय का शीर्षक है - "नव औपनिवेशिक पृष्ठभूमि व परिवेश का समग्र विश्लेषण। इस अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर राजनीति का विवेचन, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ज़ारी साम्राज्यवादी देशों का आर्थिक शोषण, भारत पर साम्राज्यवादी देशों, खासकर अमेरिका का दबाव, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सीमाएँ आदि अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला है । 1991 में नरसिंहराव सरकार द्वारा लायी गयी नई आर्थिक नीति पर विस्तार से विचार किया है । उदारीकरण और निजीकरण पर अधिष्ठित नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत ढांचागत समायोजन

कार्यक्रम, गैट समझौता, विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता आदि अनेक मुद्दों को परखने की कोशिश की है ।

इसका दूसरा अध्याय है **"कहानी के औपनिवेशिक प्रतिरोधी आयाम का ऐतिहासिक विवेचन"** प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्द और यशपाल की कहानियों में अभिव्यक्त उपनिवेश-विरोधी स्वरों को एकत्रित किया गया है । साथ में नई कहानी एवं जनवादी कहानी आन्दोलन में रचित साम्राज्यवादी व साम्प्रदायिक कहानियों का विश्लेशण करके मुक्तिबोध, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, राकेश वत्स, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह आदि कहानीकारों की चर्चित कहानियों को परखा गया है ।

तीसरा अध्याय है **"नव औपनिवेशिक व्यवस्था के खिलाफ उभर आए प्रतिरोधी आयाम-समकालीन कहानी में।"** प्रस्तुत अध्याय को तीन खण्डों में विभजित किया है । पहले खण्ड में भूमण्डलीकरण और उपभोग संस्कृति के खिलाफ रचित पंकज विष्ट, उदय प्रकाश, स्वयं प्रकाश, असगर वजाहत, संजीव आदि कहानीकारों की कहानियों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । तीसरे खण्ड में स्त्री को उपभोगवस्तु की तरह मूल्यांकित औपनिवेशिक सांस्कृतिक परिवेश को जाहिर करती लेखिकाओं जैसे अलका सरावगी, गीतांजली श्री, उषा महाजन, ऊर्मिला शिरीष आदि की कहानियों पर प्रकाश डाला है ।

चौथा अध्याय है **"अभिव्यक्ति पक्ष का नया विन्यास",** प्रस्तुत अध्याय में समकालीन कहानी में आत्मसात नई भाषा, शैली व नये तकनीकों का विवेचन किया गया है ।

उपसंहार में नवऔपनिवेशिक दौर के हालात के प्रति समकालीन कहानीकारों का कैसा रवैया रहा है, और उसके प्रति किस तरह उन्होंने अपने माध्यम को एक औजार की तरह इस्तेमाल किया है, उनको मूल्याकित करने का प्रसास किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. एम. षण्मुखन के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार हुआ है । उनकी प्रेरणा से ही यह कार्य संपन्न हुआ है । वक्त-वक्त पर मेरी गलतियों को सुधारने का दायित्व निभाया है । मेरे शोधकार्य को सफल बनाने के लिए उनकी सारी कोशिशें के सामने मैं तहे दिल से अपना आभार प्रकट करती हूँ ।

विभाग के अध्यक्ष डॉ. शशीधरन के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने आवश्यक सुविधाऐं प्रदान करके मेरी सही मदद की है ।

हिन्दी विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मेरी काफी मदद की है ।

हिन्दी विभाग और वहाँ के पुस्तकालय के कर्मचारियों को भी मैं धन्यवाद अदा करती हूँ, जिन्होंने इस शोधकार्य को सुगम बनाने के लिए काफी सहयोग दिया है । साथ में उन विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिनकी रचनाओं का उपयोग इस शोध प्रबन्ध की तैयारी के लिए किया गया है । सेन्ट तेरेसास कॉलेज की डॉ. हेलन के.जे, डॉ.उषा नायर, डॉ. लता नायर, डॉ. सौम्या बेबी आदि के प्रति में आभारी हूँ जिन्होंने हमेशा मुझे हौसला दिया है । मेरे प्रिय

पति, मित्रों, परिवारवालों और अन्य शुभ चिन्तकों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस शोधकार्य में मेरा साथ दिया है ।

और अन्त में मेरे पिताजी (स्वर्गीय) और माँ जो मेरी प्रेरणा और बल रह चुके हैं, पता नहीं कैसे उनके प्रति कृतज्ञता अदा करूँ ।

मैं यह शोध-प्रबन्ध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ । अनजाने आ गयी कमियों तथा गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थि हूँ ।

सविनय

टीना टॉमस

शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 682 022

तारीख :

पहला अध्याय

नवऔपनिवेशिक पृष्ठभूमि व परिवेश का समग्र विश्लेषण

अ. स्वातंत्र्योत्तर राजनीति का विवेचन

जैसे हमारे प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने सूचित किया है, "14 आगस्त की रात को बारह बजे स्वाधीनता का घंटा बजा और भारत में एक नया युग आरंभ हुआ"[1], पर विभाजन की विभीषिका ने स्वतन्त्रता के उमंग को उदासी में तब्दील कर दिया। स्वतंत्रता-प्राप्ति सचमुच हमारे देश के इतिहास में बहुत बड़ी नियामक घटना या क्रान्ति रही है क्योंकि शताब्दियों की परतन्त्रता के बाद भारतीयों ने मुक्ति की सांस ली थी । अंग्रेज़ों की दासता के जकडन से मुक्ति तथा प्रजातन्त्र की स्थापना देश के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं, पर आज़ादी के साथ ही भारतवर्ष का, भारत एवं पाकिस्तान के बंटवारे ने देश के मानस को धक्का पहूँचाया था । भयानक रक्तपात, अत्याचार, अनाचार, बलात्कार एवं मौत के तांडव नृत्य ने दिलों को दहला दिया । कलकत्ता, पंजाब आदि से लेकर पूरे देश में साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी । यों विभाजन के अभिशाप ने स्वाधीनता-पूर्व की राष्ट्रीय आस्था को बुरी तरह खंडित कर दिया ।

यह सही है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति और देश के विभाजन ने देश का ढांचा ही बदल दिया । लेकिन धीरे धीरे यह हकीकत सामने आई कि आम लोग आज़ादी से वंचित रहे । जिस आज़ादी का सपना उन्होंने देखा था, वह सपना ही रह गया। जनता मोह-भंग की स्थिति में पहुँच गयी । बाहरी शक्तियों की गुलामी टूटी, पर भीतरी शक्तियों ने जनता को जकड़ लिया। स्वतंत्रता के नाम पर सत्ता का हस्तान्तरण मात्र हुआ । हरिशंकर परसाई ने इस मोह-भंग की सही तस्वीर पेश की है - "आज़ादी से पूर्व अंग्रेज़ इस देश को खा रहे थे । आधा खा चुके

---
1. डॉ. राधाकृष्णन - भारतीय संस्कृति - पृ. स. 88

तो देशी लोगों ने कहा बाकी हमें खा लेने दो । यह था ट्रांसफर ऑफ डिश, थाली उनके सामने से इनके सामने आ गई, वे देश को पश्चिमी सभ्यता के सलाद के साथ खाते हैं"[1] यही कारण है कि सही बुद्धिजीवी इस आज़ादी को सही अर्थों में आज़ादी नहीं मानते । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय मानस में टुच्चे स्वार्थों ने जन्म लिया और लोग अपना घर भरने तथा आज़ादी की परवाह न करने के लिए आज़ाद हो गये । आज नीति पर दलीय राजनीति ने कब्जा कर लिया है । यानी स्वतन्त्रता - प्राप्ति के उपरान्त देश का नक्शा बराबर बदलता गया है, परतंत्र भारत में गाँधी देश के आदर्श रहे और करोड़ों उनके अनुयायी बने, पर नेहरु युग में ऐसे नेताओं की संख्या कम होती गयी ।

आज़ादी पूर्व देश का राजनीतिक नेतृत्व जन-मानस की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता था, पर आज़ादी मिलते ही नेता शासक बन गये और नौकरशाही नये मालिकों का सबसे प्रिय और सहयोगी बने । राजनीतिक नेतृत्व और नौकरशाही की इस मिली-भगत ने शासन-तन्त्र और नीति-निर्धारण के सभी पक्षों पर इस तरह हावी हो गए कि सामान्य बुद्धिजीवी ने अपने आपको उपोक्षित ही नहीं अनुभव किया बल्कि व्यापक सन्दर्भों से अपने को अलग ही कर लिया। इस वजह स्वतन्त्र भारत को कई तरह की समस्यओं से गुज़रना पड़ा ।

आतंक, भय, कुंठा को जन्म देते राजनीतिक परिवेश में युद्ध एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । अप्रैल सन् 1954 में तिब्बत के विषय पर नेहरू-चाऊ-एनलाई के सम्मिलित वक्तव्य द्वारा 'पंचशील' सिद्धान्त की पृष्टि हुई, इसके अनुसार एक-दूसरे राष्ट्र की सीमाओं एवं उसकी सार्वभौमता का सम्मान,

---

1. मार्कण्डेय - भूदान - भूदान, पृ. सं. 21

अनाक्रमण, दूसरे राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्ताक्षेप समानता तथा पारस्परिक सुविधा, शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं आर्थिक सहयोग आदि बातों पर बल दिया गया था । सन् 1959 तक भारत-चीन के संबन्धों में कोई कटुता न थी, किन्तु तिब्बत के मामले को लेकर आपसी सम्बन्ध बिगड़ने लगे, फलतः जैसे समझा जाता है 20 अक्तूबर 1962 को चीन ने अचानक भारत पर हमला कर दिया । यद्यपि इस युद्ध में भारत को करारी हार खानी पड़ी, किन्तु इससे भारतीय जनता तथा नेताओं को अपनी वास्तविकता का पता चला । उनकी आँखें खुलीं और उन्हे अपनी नीतियों पर फिर से विचार करने का अवसर मिला । सन् 1962 में युद्ध की दुंदुभी बजी पर भारत इस स्थिति में नहीं था कि मुकाबला कर सके । सन् 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो न केवल उन्होने भारत तथा नेहरू की पीठ में छुरा भोंक दी बल्कि उस विदेश नीति की भी नींव उडा दी जिस पर पंडित नेहरु को अगाध आस्था रही थी । विरोधी दल ने नेहरु सरकार को युद्ध केलिए विवश कर दिया था । उस समय केवल एक ही कदम उठाया जा सकता था कि फायर करना शुरू कर दो, भले ही बन्दुक में गोली न हो।

सन् 47 के पहले जो ज़हर सांप्रदायिक दगों के रूप में हिन्दु-मुसलमानों की नसों में फैल चुका था, उसका असर आज़ादी के बाद भी कम नहीं हुआ । भारत और पाकिस्तान की कटुता का लावा सन् 1965 में भयंकर रूप से फूटा जिसका प्रभाव दोनों ही देशों पर पड़ा । भारत ने साहस से मुकाबला कर पाकिस्तान को हरा दिया । युद्ध विराम के साथ हकीकत भी उभर आई कि राष्ट्र की समस्या सुलझती है पर व्यक्ति की नहीं । लड़ाई चाहे चीन के साथ लडी गयी हो, चाहे पाकिस्तान के साथ-आम आदमी राजनीति का मोहरा बनता रहा है,

विवशता के साथ उसे युद्ध करना पड़ा है और जीत की खुशी उसके हाथ न आकर चन्द स्वार्थी राजनीतिक नेताओं के हाथ आयी है, जिनका आक्रोश सिर्फ आँसू बनकर रह जाता है ।

आज़ादी के बाद जो बुनियादी परिवर्तन समाज के विभिन्न क्षेत्र में होना चाहिए थे, वे नहीं हुए । सतही, परिवर्तनों के साथ नेताओं के वादे ही गूंजते रहे फलतः सन् '65' के बाद मज़दूर आन्दोलन, किसान आन्दोलन, छात्र आन्दोलन और मध्य वर्ग में व्यापक असन्तोष ने संघर्ष के द्वार खोल दिए । सन् '70' के बाद जनता की मनस्थिति में व्यापक परिवर्तन आया । वामपंथी प्रभाव से नक्सलबाड़ी आन्दोलन को बढ़ावा मिला । नक्सलबाड़ी किसान आन्दोल ने संघर्ष की नयी भूमिका तैयार कर दी । पश्चिम बंगाल की राजनीतिक उथल-पुछल अव्यवस्था एवं अनिश्चितता की स्थिति को देखकर कुछ वामपंथी कम्यूनिस्ट दलों ने समस्या को अपने हाथ में लिया । उन्होंने सशस्त्र क्रान्ति की माओवादी नीति अपनाई और नक्सलबाड़ी के गरीब किसानों को वहाँ के ज़मीन्दारों के विरुद्ध लड़ने की शक्ति दी । उन्होंने सन् 1967 के चुनाव का बहिष्कार किया और वामपंथी कम्यूनिस्ट पार्टी से अलग होकर एक स्वतंत्र-संगठन बनाया । वे लोग अपने तरीके से सत्ता को हथियाना चाहते थे । सरकार ने नक्सलबाडी आन्दोलन के उन्मूलन का बीड़ा उठाया था । प्रमुख नक्सलबाडी नेता चारु मजूमदार को जेल में डाल दिया गया, जहाँ बाद में उनकी मृत्यु हो गयी। धीरे-धीरे नक्सलवाद का प्रभाव कम होने लगा ।

स्वतन्त्रता के बाद राजनीतिक वातावरण को विषक्त करने में आपातकाल

की ज़्यादातियों की प्रमुख भूमिका रही है, यह दौर राजनीति में मूल्यों की गिरावट का था । इतना झूठ, फरेब, छल पहले कभी नहीं देखा गया । दगाबाज़ी संस्कृति हो गयी थी । बहुत बड़े-बड़े व्यक्तित्व बौने हो गये । श्रद्धा सब कहीं से टूट गयी, भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति ने अपना असर सब कहीं डाला। किसी पर किसी का विश्वास नहीं रह गया था, न व्यक्ति पर न संस्था पर । यह विकलांग श्रद्धा का दौर था। यह समय 'अनुशासन पर्व' था और इसमें स्वतंत्रता जैसा शब्द; शब्दकोश से हटा दिया गया था । चारों तरफ एक प्रकार की आग लगी हुई थी । मन में भय और शंका व्याप्त थी । कौन जेल भेज दिया जायेगा, किसे फांसी होगी, कोई नहीं जानता था । राजनेता अपने अस्तित्व का बोध कराने के लिए किसी को भी मरवा सकते थे । डर, दहरात, आतंक के बीच जनता रास्ता चाहती थी, पर इस काल की अव्यवस्था ने मनुष्य की आत्मा, सभ्यता और ईमानदारी को खरीद लिया । महाभारत का युद्ध अठारह दिन चला था और आपातकाल अठारह महीनों तक चलता रहा । और पूंजीपति एवं सामन्तों की सरकार आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में असफल रही ।

स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान ने देश के समस्त नागरिकों को वयस्क मताधिकार दिया। वयस्क मताधिकार ने 'स्वत्व' की पहचान बनाई, सदियों से पद-दलित जाति ने सम्मान और अपमान के बीच विभाजक रेखा को पहचानना प्रारम्भ किया । जातीयता, भाषा, प्रान्तीयता के आधार पर परस्पर विभाजित शिक्षित समुदाय को राजनीति ने जोड़ा भी और तोड़ा भी । इस तथ्य को हम वोट की राजनीति भी कह सकते हैं । भारत की राजनीतिक ज़िन्दगी की यह सच्चाई किसी से छिपी नहीं है कि वोट के निर्णय जाति के आधार पर होते हैं ।

स्वनन्त्रोत्तर भारत में राजनीति मात्र सत्ता की राजनीति रह गई थी जिसका आधार चुनाव था, और लक्ष्य सत्ता की प्राप्ति । इस काल में चुनाव जीतने के लिए दलगत चेतना, दलों के उत्कर्ष और स्वार्थ सिद्धि की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही थी । सत्ता में आने का लोभ और सत्ता में बने रहने की आकांक्षा ने दलगत राजनीति को जन्म दिया और उनका माध्यम चुनाव बना । राजनेता और जनता के बीच चुनाव को सम्पर्क - सूत्र के रूप में देखा जा सकता है । चुनाव की राजनीति ने वर्ग, धर्म और जाति निरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक मूल्य व्यवस्था को संकुचित सीमाओं में कैद कर दिया है । भ्रष्टाचार, घूस, जातिवाद, सम्प्रदायवाद आदि के रास्ते पर चलकर पार्टियाँ गाँधी, नेहरू, समाजवाद, क्रान्ति, राष्ट्रप्रेम, भावात्मक एकता, हरिजन कल्याण, गरीबी हटाओ, एकता एवं अखंडता के नारे लेकर चुनाव द्वारा कुर्सी पर पहूँचने के लिए प्रयास करती हैं । शासन-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, पुलिस-व्यवस्था-हर स्थान पर नेताओं के आदेश चलते हैं और सफल नेता वही है जो सारी व्यवस्था को अपने हाथ में रखता है । आज भारत में असत्य को सत्य, दोषी को निर्दोष, अयोग्य को योग्य, अनुचित को उचित बना देना राजनेताओं के वश में है । आज स्वतन्त्र भारत में सरकारी तन्त्र की आधारशिला रिश्वत है ।

स्वतन्त्रता के बाद आये हुए सरकारों ने भ्रष्टाचार को इस तरह देश में फैलाया है कि आज इससे भारत को बचाना आसान नहीं है । आज़ादी के पहले जब जवहरलाल नेहरू अंतिम सरकार के प्रधान मंत्री बने तो उन्होंने नेशनल हेराल्ड को लखनऊ से दिल्ली लाने की योजना बनाई । तय हुआ कि इसके लिए 5 लाख रूपये जमा किए जाएं । रफी अहमद किदवई ने जो उस समय नगर

विमानन मंत्री थे, हिमालयन एयरवेज के मालिक से 25-25 हज़ार रुपये की राशि वसूल की और बदले में उन्हे अपने विभाग का ठेका दिया । जब सरकार पटेल को इस बात का पता चला तो उन्होंने नेहरू से शिकायत की । नेहरू ने पहले तो घुमा-फिरा कर सरकार को यह कहना चाहा कि नेशनल हेरालट के धर्मार्थ काम के लिए जमा किए गए चंदे को अन्य कामों के लिये रखे पैसे से अलग माना जाना चाहिए । पटेल ने नेशनल हेराल्ड को धर्मार्थ संस्था कहे जाने पर आश्चर्य व्यक्त किया था । स्मरणीय है कि पं. जवाहरलाल नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू भी अपने अखबार 'इंडिपेंडेट' के लिए अनुचित तरीके से धन-संग्रह कर चुके थे ।

भ्रष्टाचार की समस्था का सबसे जटिल पहलू यह है कि इससे कानून की सीमा से बाँधना बहुत मुश्किल है । भारतीय दंड संहिता की धारा 161-168 में इसका जिक्र सरकारी कर्मचारियों से संबन्धिति अपराधों के प्रसंग में आता है । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123 में तथा भ्रष्टाचार निरोध कानून, 1947 में इसकी व्यवस्था हुई है । नेहरू के बाद भ्रष्टाचार की धड़ल्ले से बढ़ोत्तरी हुई । सन् 1963 के अन्त में तात्कालीन गृहमंत्री गुलजारी लाल नंदा ने घोषणा की कि उच्च पदों पर भ्रष्टाचार को खतम करने के लिए वे मज़बूत कदम उठाएगे और अगर वे इसमें कामयाब नहीं हुए तो गृहमंत्री पद से त्यागपत्र दे देंगे। इसके लिए उन्होंने भारत सेवक समाज और भारतीय साधु समाज के तत्वावधान में सदाचार समितियों का गठन किया । भ्रष्टाचार से निपटने का यह पहला सुविचारित प्रयास था । किन्तु इसका अन्त बहुत दयनीय हुआ ।

विश्वनाथ प्रताप सिंह और चन्द्रशेखर की गैरकाग्रेसी सरकारों को लगभग डेढ़ साल का अन्तराल उनके आपसी झगड़ों में बीता और अर्थव्यवस्था की बिगड़ती स्थिति को सम्हालने के लिए कुछ नहीं किया जा सका । बोफोर्स कांड में ठोस सबूतों का बार-बार दावा करनेवाले विश्वनाथ प्रताप सिंह बोफोर्श के अपराधियों को तो नहीं पाए, उत्पादन शुल्क का घोटाला उनके कार्यकाल में और हो गया । डेढ़ साल के बाद कांग्रेस फिर सत्ता में आ गई और उसने राजीव गाँधी के समय शुरु हुई प्रक्रिया को और तेज कर दिया । पि.वी. नरसिंहा राव और बाद में मनमोहन सिंह ने तो भारतीय अर्थव्यवस्था साम्राज्य शक्तियों के सामने पूरा खोल दिया । हवाला कांड मई 1991 में प्रकाश में आया था, इसमें कई पार्टियों के बडे-बडे नेता, भारत सरकार के ऊँचे अफसर, पुलिस और खुफिया तंत्र के उच्च अधिकारी फंसे हुए थे इसलिए उसे दबा दिया गया । कुछ लोगों की अनथकी कोशिशों से यह मामला उच्चतम न्यायालय तक पहूँच पाया था ।

दुर्भाग्य से हमने गाँधी जी की सादगी पर आधारित जीवन-शौली का तिरस्कार करके पश्चिम की नकल पर उपभोगवादी जीवन शैली को अपनाया । हमारे पूँजीवादी समाज में - गरीब-अमीर के बीच बहुत बड़ा अन्तर बरकरार था। पराजित विकास नीति ने उसे और बढ़ाया । इस समाज में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खुली छूट देना तो आग में घी डालने जैसा था । लेकिन तथा-कथित उदारीकरण के पीछे पागल हमारे नेताओं को अभी बात समझ में नहीं आ रही है । अलावा इसके, साप्रदायिकता को बढ़ावा देनेवाले दलों से भारत में हर दिन अयोध्या और गुजरात दुहराने की संभावनाऐं हैं । यों स्वातंत्र्योंत्तर राजनीति का विवेचन करते समय भारतीय राजनीति की सबसे दयनीय एवं ह्रासोन्मुख तस्वीर हमारे सामने उभर कर आ रही है ।

II स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ज़ारी आर्थिक शोषण

भारत की अर्थ व्यवस्था के संबन्ध में डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है - "दुनिया में दूसरा ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ आर्थिक विषमताऐं इतनी विस्तृत हों और आर्थिक सुविधाऐं इतनी कम हो जितनी वे भारत में है।"[1] क्योंकि किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था उस देश के सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था के साथ जुडी हुई है । भारत की अर्थ-व्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, लेकिन हम उतना अन्नोत्पादन नहीं कर पाते है जितना हमें चाहिए । इसलिए विदेशों से अन्न का आयात सरकार को करना पड़ता है । 'अधिक अन्न उपजाओं' तथा 'हरित क्रान्ति' आन्दोलन भारतीय नेताओं के प्रमुख लक्ष्य रहे हैं । पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि की उन्नति और विकास की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है । गाँधीजी ने गाँव को इकाई मानकर गाँव के स्वावलम्बन एवं ग्रामराज्य की संकल्पना देश के समक्ष रखी । गाँधीजी के इस चिन्तन को विनोबा ने 'भूदान' कार्यक्रम चलाकर मान्यता दी । बाद में भूदान भी शोषकों का एक अस्त्र बन गया, जिसके द्वारा वे बंजर भूमि को दान में देने लगे । इस आन्दोलन की असफलता से गरीब किसानों का मोहभंग हुआ और वे पूर्व स्थिति में आकर भाग्यवादी बन गये ।

वर्तमान समय में शासन ने निजिकरण को बढ़ावा दिया है । निजीकरण से देश, विदेश और प्रवासी भारतीयों की पूँजी से उद्योंगों के विकास में प्रगति लाने के सपने देखे जा रहे हैं, मंहगाई और मुद्रा स्फीति सरकार के वश में नहीं है । बढ़ती मंहगाई, चिन्ताजनक मुद्रा-स्फीति, आवश्यक वस्तुओं की बाज़ारों में कमी, व्यापारिक असंतुलन, कच्चे माल की विदेश-नीति, देश की बिगड़ी अर्थ

---

1. डॉ. राधाकृष्णन - भारतीय संस्कृति - पृ. 100

व्यवस्था को और कमज़ोर बना रही हैं । योजनाऐं और कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जब देश के उद्योगपति केवल मुनाफा कमाने और धन बटोरने का लक्ष्य छोड़कर, देश के आर्थिक विकास को सर्वोपरि मानकर ईमानदारी और गंभीरता से कृतसंकल्प हो सकें ।

आज भारत में औद्योगीकरण तेज़ी से बढ़ रहा है । औद्योगिक नगरों का सृजन हो रहा है । ऐसा लग रहा है कि भारत की ज़ोरों पर प्रगति हो रही है । लेकिन सच तो यह है कि औद्योगीकरण का फायदा एक वर्ग विशेष पर केन्द्रित है । भारत की वर्तमान पूँज़ीवादी व्यवस्था, पूँजी निवेश एवं विनियोग द्वारा अधिकाधिक लाभ प्राप्ति पर आधारित व्यवस्था है। सरकारी नीति सिर्फ प्रशासन पर सीमित है । उत्पादन की बुनियाद में व्यक्तिगत पूँजी की अहं भूमिका है, अतः राष्ट्रीयकृत प्रतिष्ठानों में भी आम आदमी को शोषण और हानि ही मोहताज होती है । लाभ पूँजीपतियों को होता है क्योंकि वे ही राष्ट्रीयकृत प्रतिष्ठानों (बिमा निगम तथा बैंक) एवं निजी उद्योगों में रुपया लगाते हैं । आम आदमी पर उनका शिकंजा और कसता जा रहा है । तकनीकी तरक्की और औद्योगीकरण की प्रगति से आम आदमी मशीन का पुर्जा बनकर रह गया है । यों भारतीय जनता आज तीन विभागों में बट गई है। उनकी बदहालत में कोई बदलाव नहीं आया है। शोषण का शिकंजा बढ़ता ही जा रहा है । बरसों के संघर्षों से हासिल हकों से भी यह वर्ग वंचित होता जा रहा है ।

भारत में ग्रामीण लघु एवं कुटीर गृह-उद्योगों की स्थिति भी दयनीय है । योजनाओं के लिए जनता के हिस्से में धैर्य तथा नेताओं के हिस्से में सुख-

सुविधाएं आती है । ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की योजनाओं का लाभ ग्रामीणों को नहीं मिल रहा है बल्कि ग्रामीण विकास कार्यालयों के ज़रिए उनका शोषण ही हो रहा है । रोटी के लिए श्रम, स्वदेशी का उपयोग, सभी काम का सम्मान, मशीनों का सीमित प्रयोग, भूदान, ग्रामदान, कुटीर उद्योग, हस्तकरघा, हस्तशिल्प जैसी नीतियों और योजनाऐं गाँधी और विनोबा का सपना थी जिससे वे देश में समाजवाद लाना चाहते थे । लेकिन आज ये सपना मात्र रह गयी है क्योंकि इस सपने को भी नेता लोग खरीदकर व्यापार कर रहे है । मेहनत करने पर भी ग्रामीण लघु उद्योगों में लगे मज़दूरों को सम्मान के साथ जीने का अवसर नहीं मिलता है। वे निपुण हैं और उनके मालों का महत्व भी बढ़ रहा है लेकिन उन लोगों को कई तरह के शोषणों से गुज़रना पड़ रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किसी राष्ट्र की उसके हैसियत, उसके अपने आर्थिक विकास पर निर्भर करती है । जवहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, इंदिरा गाँधी, मोरारजी देसाई, राजीव गाँधी, वी.पी. सिंह से लेकर मनमोहन सिंह तक सभी ने देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया, परन्तु सतही योजनाएँ केवल वर्ग विशेष को ही लाभान्वित करती रही । परतंत्र देश में विदेशी शोषक थे और स्वतंत्र देश में स्वदेशी ही एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं । आर्थिक स्थिति की दृष्टि से देखा जाये तो मोटे तौर पर भारतीय जनता को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग । इनके अलावा एक दम सर्वहारा यानी भिखारी वर्ग भी यहाँ मौजूद है । उच्च वर्ग अधिक से अधिक शक्तिशाली होने के लिए समाज में जमाखोरी, मिलावट, रिश्वत, भ्रष्टाचार, कालाधंधा जैसे अनैतिक कार्यों को स्वयं तो करते ही हैं, मध्यवर्ग तथा

निम्न वर्ग को भी अपने साथ मिलाने तथा उनका शोषण करने का प्रयास भी करता रहता है ।

आर्थिक समस्याओं के कई कारण होते हैं । जो देश जितना गरीब होता है, और जितनी तेजी से जनसंख्या बढ़ती है, देश उतना ही गरीब होता जाता है। स्वतंत्र भारत में वंध्याकरण, गर्भ-निरोधक साधन, गर्भ पात, विलम्बित विवाह आदि उपायों का प्रचार खुले आम हो रहा है । 'परिवार नियोजन' पर पानी की तरह रुपया बहाया जा रहा है, पर जनसंख्या के आंकड़े बता रहे है कि ये योजनाऐं अधिक सफला नहीं हो पायी हैं । शिक्षा के प्रसार एवं औद्योगिक-वैज्ञानिक विकास के परिणामस्वरूप गाँव की अपेक्षा राहरों में रोज़गार के क्षेत्र अधिक विकसित हुए हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकास-योजनाओं में यद्यपि बेरोज़गारी घटाने के प्रश्न को प्रमुखता दी गयी है, किन्तु इस समस्या को सुलझा पाना सरकार की सामर्थ्य के बाहर होता जा रहा है । जनसंख्या की वृद्धि एवं बढ़ती बेरोज़गारी के साथ महंगाई भी दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ रही है । बाज़ार से चीज़ें गायब हो जाती हैं और जब मिलती हैं तो पहले से दुगने दाम देने पड़ते हैं । पुरानी पीढी के लोग स्वतंत्र भारत में इतने वर्ष बिताने के बाद भी अंग्रेज़ी शासन को अच्छा मानते हैं, क्योंकि तब भ्रष्टाचार इतना फला फूला नहीं था । वर्तमान समय में एक वर्ग आर्थिक रूप से पूरी तरह संपन्न है और दूसरा वर्ग कभी राशन तो कभी तेल की लाइन में लगकर मामूली चीज़ों के लिए भी तरस रहा है । यह विडंबना पूर्णतः सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्विरोधों की उपज है, जिसका सरोकार पूर्णतः मानव-नियोजित कानूनों से है ।

III. भारत पर साम्राज्यवादी देशों खासकर अमेरिका का दबाव

स्पेन - अमरीका युद्ध (1898ई) और अंग्रेज़ बोअर युद्ध (1899-1902 ई) के बाद से आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में साम्राज्यवाद शब्द का प्रयोग जोरों से होने लगा । अंग्रेज़ अर्थनीतिज्ञ जे.ए. हाबसन ने 'साम्राज्यवाद' नामक एक पुस्तक लिखी जो 1902 ई में लंदन और न्यूयार्क से प्रकाशित हुई। लेनिन ने 1916 में 'साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी । इसमें उन्होंने साम्राज्यवाद की रूप-रेखा पर बडे सरल व सुबोध ढंग से प्रकाश डाला । लेनिन के अनुसार पूँजीवाद विकास की चरम सीमा पर पहूँचने पर साम्राज्यवाद में तब्दील हो जाता है । उक्त पुस्तक में साम्राज्यवाद की परिभाषा देते हुए लेनिन ने लिखा - "साम्राज्यवाद पूँजीवाद के विकास की वह अवस्था है जिसमें पहूँचकर वित्तीय पूँजी का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है । पूँजी का निर्यात अत्याधिक महत्व ग्रहण कर चुका होता है । अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्टों के बीच दुनिया का बँदवारा भी आरंभ हो जाता है । सचमुच इस अवस्था में सबसे बड़ी पूँजीवादी ताकतों के बीच पृथ्वी के समस्त क्षेत्रों का बँटवारा भी पूरा हो जाता है ।"[1]

साम्राज्यवाद की एक परिभाषा काउत्सकी की भी है । उन्हें दूसरी सोशलिस्ट अंतर्राष्ट्रीय युग के अर्थात् 1889 से 1914 तक के पचीस वर्षों के मुख्य मार्क्सवादी सिद्धांतवत्ता माना जाता है । उनकी राय में साम्राज्यवाद अति विकसित औद्योगिक पूँजी की उपज है । यह साम्राज्यवादी प्रक्रिया हर औद्योगिक पूँजीवादी राष्ट्र की इस चेष्टा में निहित है कि वह बडे-बडे कृषि अंचलों पर, इस

---

1. अयोध्या सिंह साम्राज्यवाद का उदय और अस्त पृ. सं. 21-22

बात की ओर कोई ध्यान दिये बिना उन अंचलों में कौन-सी जातियाँ बसती हैं, उत्तरोत्तर अधिक अपना नियंत्रण स्थापित कर ले अथवा उन्हें छीनकर अपने में मिला ले "[1]

अंग्रेज़ अर्थनितिज्ञ हाबसन ने अपनी पुस्तक 'साम्राज्यवाद' में बताया है कि "नया साम्राज्यवाद पुराने साम्राज्यवाद से भिन्न है, पहले तो इस दृष्टि से कि उसने एक ही बढ़ते हुए साम्राज्य की महत्वाकाँक्षा के बजाय आपस में प्रतियोगिता करने वाले साम्राज्यों के सिद्धांत और व्यवहार को अपना लिया है, जिनमें से प्रत्येक साम्राज्य राजनीतिक क्षेत्रवृद्धि और वाणिज्यिक लाभ की एक जैसी लालसा से प्रेरित है । दूसरे, इस दृष्टि से कि वित्तीय या पूँजी लगाने के स्वार्थों ने सौदागरी स्वार्थों पर प्रधानता प्राप्त कर ली है"[2]

कार्ल मार्क्स ने पूँजीवाद की बुनियादी विशेषता यह बतायी थी कि वह सारी दुनिया में अपना विस्तार करता है । यह प्रक्रिया युरोप में पूँजीवाद के जन्म के साथ ही शुरु हो गयी थी । लेकिन इस प्रक्रिया की दो अवस्थाऐं हैं । पहली अवस्था उपनिवेशवाद की थी, जिसका सामना भारत ने ब्रिटिश शासन के रूप में किया था । इस अवस्था में यूरोप के पूँजीवादी देशों ने दुनिया के विभिन्न देशों में जाकर अपने उपनिवेश कायम किये - अफ्रीका एशिया व लातीनी अमरीका में । ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, पूर्तगाल आदि यूरोपीय देशों ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया । उन्होंने अन्य देशों को अपना उपनिवेश बनाया और उन पर शासन भी किया। दूसरी अवस्था उपनिवेशवाद समाप्त हो जाने की बाद की है और विशेष रूप से सोवियत संघ के विघटन के बाद की है । इस दूसरी अवस्था

1. अयोध्या सिंह - साम्राज्यवाद का उदय और अस्त पृ. सं. 23
2. अयोध्या सिंह - साम्राज्यवाद का उदय और अस्त पृ. सं. 23

में उपनिवेश के बिना भी अन्य देशों पर अपना अधिकार कायम रख सकता है। इस दूसरी अवस्था का नाम है नवउपनिवेश या भूमण्डलीकरण । इसकी विशेषता यह है कि दूसरे देशों को अपने उपनिवेश बनाए बिना भी शोषण कर सकता है । उन देशों के सत्ताधारी या नेता ही शोषण के दलाल की भूमिका भी निभाते है । सोवियत रूस के विघटन के बाद अमेरीका के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने वाला कोई नहीं है और दूसरे पूँजीवादी देश उससे प्रतिद्वंद्विता करने के बजाय दुनिया की लूट में से कुछ हिस्सा पाने के लिए उसके सहयोगी बने हुए हैं । पहली अवस्था और दूसरी अवस्था में एक और महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि नयी टेक्नोलॉजी को आत्मसात कर अमेरीका ने ऐसी जबर्दस्त सामरिक शक्ति प्राप्त कर ली है कि दूसरा कोई देश उससे प्रतिद्वंद्विता करने या उसका विरोध करने की स्थिति में नहीं है । इसलिए अमेरिका स्वयं अपने आपको भूमंडल का नेता या पुलिस बता रहा है । बिना किसी शर्म संकोच के संरक्षक का रोल अदा कर रहा है ।

वर्तमान दौर में अमेरीकी नेतृत्व में जो भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया हो रही है, उसमें भी आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक प्रयासों के साथ सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी हमला हो रहा है; जिसे दिमागों का उपनिवेशीकरण अभिहित किया गया है। यह अमेरिका की वर्तमान विदेश नीति का अभिन्न हिस्सा है । अमेरिका के तरफदार लेखकों ने यह घोषणा की है कि इक्कीसवीं सदी में अमेरिका आर्थिक और सौनिक धरातल पर और अधिक मज़बूत होगा । लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से यह सर्वधा घातक और खतरनाक होगा । भारत जैसे विकासशील और अविकसित देशों पर आर्थिक दबाव और सैनिक आधिप्त्य ज़माने के लिए

सांस्कृतिक क्षेत्र जैसे शिक्षा, साहित्य, कला व मीड़िया द्वारा लोगों पर कब्जा करने की प्रयत्न कर रहे हैं । यों जनता के दिमागों में परिवर्तन यानी 'ब्रेयनवाश' ही अमेरिका का लक्ष्य है ।

जॉन पांफ्रेड के अनुसार "यह मेड इन चाइना (चीन में बना) अमेरीकी झंडों का तूफान है "।[1] एक ओर अमेरीकी संस्कृति, संगीत व साहित्य आम जनता के लिए सामान्य आनन्द बन रहा है तथा दूसरी ओर अमेरीकी सरकार की विदेश नीति का अदृश्य संवाहक भी । यों उनकी रणनीति बेहद कारगार साबित भी हो रही है ।

कितने लोग इस बात पर विश्वास करते है कि अफ़गानिस्तान में युद्ध का विरोध करना आतंकवाद के समर्थन के बराबर है, या तालिबान के पक्ष में मतदान है । युद्ध का शुरूआती उद्देश्य-ओसामा बिन लादेन को ज़िन्दा या मुर्दा पकड़ने का था। अब यह कहने की कोशिश हो रही है कि तालिबानी शासन को उखाड़ फेंकना और अफगानी औरतों को बुर्के से निजात ही लक्ष्य है । हमें यह समझाने की कोशिश हो रही है कि अमेरीकी सैनिक वास्तव में नारीवादी लाइन पर हैं । इस बात पर हमे यह सोचना चाहिए कि पाकिस्तान और बंगलादेश में अल्पसंख्यकों और महिलाओं से और भी खराब व्यवहार किया जाता है । क्या इन पर बमबारी कर दिया जाए ? क्या दिल्ली, इस्लामाबाद और ढाका को बर्बाद कर दिया जाए ? क्या हम बमों की मदद से नारीवादी स्वर्ग पा सकते हैं ? एक ओर अमेरिका युद्ध को भड़काते है और दूसरी ओर डिटरजेंट और जूते के

---

1. जॉन पांफ्रेट - चाइनीज़ वर्किंग ओवरटाइम टु स्यू यू एस फ्लैग्स, वाशिंगटन पोस्ट 20- सितंबर - 2001 पृ. सं. 14

निर्माताओं द्वारा स्पांसर किए टीवी कार्यक्रमों के ज़रिए अवास को अर्थच्युत भी कर देता है ।"[1]

भारत भी अमेरीका के इस सर्वतोन्मुखी दबाव से मुक्त नहीं है । हाल ही में अमेरीका ने भारत और पाकिस्तान को लड़ाई के कगार से निकालने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । पहले की लडाईयों में अमेरीका, पाकिस्तान को सहारा दे रहा था । अमेरीका जिसे कि जार्ज बुश ने "शान्तिपूर्ण राष्ट्र" कहा है, विगत पचास वर्षों से एक के बाद एक देश को लड़ाई में उलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है । आज दुनिया का 'खुला बाज़ार' भारत अमेरीका के हाथ में है। पिछले दस वर्षों के अबाध कॉर्पोरेट वैश्वीकरण में विश्व की कुल आय प्रतिवर्ष 2.5 फीसदी की दर से बढ़ी है । फिर भी दुनिया में गरीबों की संख्या में दस करोड़ का इज़ाफा हुआ है । भारत में 'संरचनात्मक समायोजन', जोकि कॉर्पोरेट वैश्वीकरण परियोजना का अंतिम छोर है, लोगों के जीवन को लील रहा है । 'विकास' की परियोजनाऐं, बड़े पैमाने पर निजीकरण और श्रम से संबंधित 'सुधार' लोगों को उनकी ज़मीन और नौकरी से बेदखल कर रहे हैं । भारत में 'खुला बाज़ार' पश्चिमी बाज़ारों को नंगाई से संरक्षण दे रहा है और विकासमान देशों को अपने व्यापारिक प्रतिबंधों को उठाने के लिए मज़बूर कर रहा है, इससे गरीब, और गरीब हो रहे हैं तथा अमीर और भी अमीर । खुला बाज़ार न सिर्फ राष्ट्र की सार्वभौमिकता को नकारता है बल्कि लोकतंत्र को भी कमज़ोर करता है । सच तो यह है कि बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेशन मनपसन्द सौदों के शिकार में है । सबसे ज़्यादा इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेशन सौदे विकासशील देशों में सरकार-पुलिस, न्यायलय, कई बार सेना तक के सक्रिय

1. अरूंधति रॉय - नव साम्राज्य के नए किस्से - पृ. सं. 13

सहयोग के बिना न आगे बढ़ाए जा सकते हैं । यानी इसकेलिए अमेरिका के तरफदार व वफादार सत्ता की ज़रूरत है । साम्राज्यवादी शक्तियाँ पूरी दुनिया में इन बफादार सत्ताओं की तलाश में है ।

अमेरिका आज भूमण्डलीकरण और भूमण्डलीय संस्कृति का दूसरा नाम है । एक प्रमुख अमेरिकी पत्रकार टॉमस.एल. फ्रिडमैन मानते है - "हम अमेरिकी द्रुतगामी विश्व के देवदूत, मुक्त बाज़ार के पैगम्बर और उच्च प्रौद्योगिकी के महाधर्माचार्य हैं । हम चाहते हैं कि हमारे मूल्यों और पिज्जा हट्स, दोनों का विस्तार हो । हम चाहते है कि सारी दुनिया हमारा अनुसरण करे और जनतान्त्रिक एवं पूँजीवादी बने, हर पात्र में एक वेबसाइट, हर होठों से लगी पेप्सी की बोतल, हर कम्प्यूटर में माइक्रोसॉफ्ट विडोज हो और प्रत्येक व्यक्ति हर जगह अपनी गाड़ी में स्वयं पेट्रोल डाले।"[1]

अमेरिकी ढ़ाबा मेकडोनाल्ड और कॉफी हाउस श्रृंखला स्टार बक्स अपने पेय और खाद्य पदार्थों के ज़रिए, अमेरिकी खानपान को बढ़ावा दे रहे है । यही काम केंटकी फायड चिकन, पिज्जा हट्स, डोमिनों पिज्जा और ठॉकोबेल्स कर रहे हैं। मानव इतिहास में यों पहली बार हो रहा है कि समाज के हर स्तर के लोग जाने अनजाने में भूमण्डलीकरण के दबाव को झेल रहा है । सोवियत संघ के विघटन के बाद दुनिया का शक्ति सन्तुलन बदला गया और अमेरिकी साम्राज्यवाद एक तरफा प्रभुत्व हासिल कर लिया । दुनिया पर आर्थिक और राजनीतिक नियन्त्रण कायम रखने केलिए अमेरीका ने भूमण्डलीकरण का पैकिज घोषित कर दिया । आज कल अमेरिका पूरी दुनिया की योजनाऐं बना रहा है । साथ ही एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका पर अपनी मनमानी शर्तें भी लादनी शुरु

---

1. टॉमस.एल. फ्रिडमैन - ए. मेनिफेस्टो फॉर द फास्ट बल्डे- द न्यूयॉर्क टाइम्स - मैगजीन - 28 मार्च 1999

कर दी । अमेरिका ने बाज़ार शक्तियों को ओर मज़बूत बना दिया है । राज्यों की कल्याणकारी भूमिका खत्म कर दी गई और प्राकृतिक संसाधनों पर अपना नियन्त्रण कायम करने के लिए सैनिक कार्यवाहियों की हद तक उतर गया । उदारीकरण और मुक्त बाज़ार के नाम पर विश्व की जनता पर सब प्रकार की अनीतियाँ थोपी गयी । उन्हें अपने अधिकारों और संस्थाओं से बेदखल करने की कोशिश भी जारी है । अमेरिका के नेतृत्व में विश्व व्यापार संगठन ने विश्व पर असमान व्यापार तथा पेटेंट प्रणालियाँ अज़माने का प्रयास कर रहा है। यों अमेरिका अपनी साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करने केलिए संपूर्ण विश्व को अपने इशारों पर नचाने में मशगूल है ।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सीमाएँ

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरीका और रूस दुनिया की दो महाशक्ति बन गये थे । अमेरीका ने पूँजीवाद के रास्ते को अपनाया और रूस ने समाजवाद को ।

दुनिया की ये दो शक्तियाँ दो विभागों में खडी हो गयीं और इसी तरह शीत युद्ध (Cold war) का प्रारंभ हुआ । विश्व भर में कुछ ऐसा महौल छा गया था कि इन दो महाशक्तियों के सहारे ही विश्व के अन्य देशों का अस्तित्व संभव हो सकता था । इसलिए इन दोनों देशों की पक्ष-विपक्ष में अन्य देश खडे हो गए । भारत जैसे कतिपय देशों ने तो गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई ।

अत: ऐशिया और आफ्रिका के कई नये स्वतंत्र देशों ने शीत युद्ध में भाग लेने से इनकार कर लिया । क्योंकि उन्हें ऐसा लग रहा था कि इस तरह के सैनिक अधिनिवेश दुनिया की शान्ति और स्वतंत्रता के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकते

हैं। इन देशों पर बहुत सारी जिम्मेदारियाँ थीं । उन्हें अपने देश को सांस्कृतिक एवं, आर्थिक स्तर पर पुनःरचना करनी थी । युद्ध से भयभीत जनता में उत्साह नहीं होगा, युद्ध से सिर्फ गरीबी और बेरोज़गारी ही मिल सकती हैं, शान्ति तो बिलकुल नहीं । उनकी यही सोच थी। एशिया, आफ्रिका के सारे देशों ने उपनिवेशवाद की ज्यादतियों को पूर्ण रूप से सहा था । इसलिए ये सभी देश इस बात से अभिज्ञ थे कि युद्ध से दूर रहकर ही देश की प्रगति संभव है । फिर भी एशिया के कतिपय देशों ने शीत युद्ध में भाग लिया और विदेशी ताकत को अपने देश में पलने की इज़ाजत दी । क्योंकि वे इन महाशक्तियों के बिना कुछ करने के लिए असमर्थ थे ।

उस दौरान के भारतीय प्रधान मंत्री जहरलाल नेहरू ने ही गुट निरपेक्ष आन्दोलन का बीड़ा उठाया था । इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति, सुकारनो, मिश्र के राष्ट्रपति नासर, यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो आदि अनेक महान नेताओं ने इस आन्दोलन में हिस्सा लिया । गृट निरपेक्ष आन्दोलन की पहला सम्मेलन 1961 में युगोस्लाविया के बेलग्राडी में हुआ था । 25 देशों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया । धीरे-धारे इस आन्दोलन की लोक प्रियता बढ़ने लगी । देशों की सदस्यता 25 से 107 हो गई । गुट निरपेक्ष आन्दोलन का सातवाँ सम्मेलन नई दिल्ली में इन्दिरा गाँधी की अध्यक्षता में संपन्न हुई थी ।

आज अमेरीका शीत युद्ध के अभाव में दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति बन गया है और अपने आपको दुनिया की पुलीस मानते हुए पूरी दुनिया के मामलों में दखलअन्दाज कर रहा है।

अमेरिका तो हथियारों के निर्माण एवं व्यापार में मशगूल है । इसलिए दुनिया में युद्ध का होना ज़रूरी है । अगर दो देशों के बीच कहीं समस्था, शुरू होता है तो अमेरीका बीच में आ खड़ा हो जाता है । समस्था को बिगाड़ने के साथ साथ दोनों देशों को हथियार भी बेजने लगता है । एक बार अमेरीका किसी देश में पैर रखता है तो वापस जाने का नाम तक नहीं लेता है । इराक ज्वलन्त सबूत के रूप में हमारे सामने है । सच बात यह है कि 'नाम' (N.A.M.) के सदस्य रहे कोई भी देश अमेरीका के इस दबाव से बाहर नहीं है । इस संदर्भ में गुन्नार मिर्डल सूचित किया है कि "जब 1950 के लगभग संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेशी सहायता का बजट अचानक अधिक तेजी से बढ़ने लगा तो इसकी प्रमुख प्रेरणा कम-विकसित देशों के विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने की इच्छा नहीं थी, बल्कि शीतयुद्ध को ओर उग्र बनाने की इच्छा थी।"[1] 'नाम' की नमो निशान नहीं रही। फिर भी अमेरिका दुनिया में संघर्ष चाहता है । अपनी अस्मिता को ज़ाहिर करने के वास्ते ।

जब पहला विश्व युद्ध समाप्त हुआ था तो दुनिया के कई देशों और यूरोप के राजनेताओं को इस बात की चाहत थी कि फिर दूसरा युद्ध न हो जाये । इसके लिए तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बुडो विल्सन ने लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना की । लेकिन इस संस्था ने बदले की भावना को ज़्यादा प्रमुखता दी । सदस्य देश लोग जर्मनी से बदला लेना चाहते थे । फलतः दूसरा विश्व युद्ध हो गया । इसके बाद अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीतयुद्ध ज़ारी रहा, विश्व शान्ति की बात तो सब कर रहे थे लेकिन सबके मन में स्वार्थता थी । पर गुट-निरपेक्ष नीतियों के दबाव ने तीसरे विश्वयुद्ध की संभावना को ही खत्म कर दिया।

---

1. गुन्नार मिर्डल - द चैंलेज आँफ वर्ल्ड पावर्टी - पृ. 15

पर आज इस आंदोलन के अभाव में स्थितियाँ बदल गई हैं । दुनिया खतरों से दूर नहीं है । गुट निरपेक्ष आंदोलन के नेता रहे भारत फिलहाल अमेरिका के साझेदार बन गया है ।

(आ) नरसिंहराव सरकार की नई आर्थिक नीति

1980 के दशक से ही विकास की रणनीति को लेकर विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच पुनर्विचार होने लगा था । इसकी सूचना 1991 में हूए चुनावों में भागीदार विभिन्न विचारधाराओं के सभी राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों में देखी जा सकती है । अर्थ व्यवस्था की पुनर्रचना की ज़रूरत उन्हें महसूस होने लगी थी ।

विदेशी कर्ज का संकट 1991 के प्रारंभ में उभरा और ऐसी स्थिति आ गई कि भारत अंतर्राष्ट्रीय कर्ज के भुगतान में अपने को असमर्थ पाने लगा । भूगतान संतुलन की स्थिति विकट थी । मुद्रास्फीति की दर में भारी वृद्धि का खतरा मँडरा रहा था । ऐसी हालत लगातार खराब मानसून और अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में तेल की कीमतों की वृद्धि जैसे कारणों से नहीं आई थी । यानी अर्थव्यवस्था की वह बदहालत किसी अनियंत्रित विपदा के कारण पैदा नहीं हुई थी । यह 1980 के दशक में आर्थिक नीतियों में लगातार की गई गलतियों का परिणाम था । वित्तिय घाटा (केन्द्रीय सरकार के खर्च और आमदनी का अंतर, जिसे पूरा करने केलिए आंतरिक कर्ज लिया जाता है) तेज़ी से बढ़ता रहा । भूगतान संतुलन के चालू खाते में घाटा बढ़ता रहा । इसका मोटे तौर पर अर्थ

यह हुआ कि विदेशियों से मिलनेवाली विदेशी मुद्रा में, विशेषकर अमेरीकी डालर में कमी आई और विदेशी भुगतान बढ़ गया । इसके चलते विदेशों से और कर्ज लेना पड़ा । फलतः विदेशी कर्ज और बढ़ गया । सरकारी वित्त में जनता से लिया गए कर्ज भी तेजी से बढ़ा । विदेशी कर्ज के भुगतान की स्थिति भी असंतुलित हो गई थी । भविष्य के इस संकट का अंदाज़ा लगाने के लिए कुशाग्रबुद्धि की ज़रूरत तो नहीं थी जबकि कोई भी यह अंदाज़ा कर सकता था कि नीतियाँ यदि नहीं बदली गयीं तो संकट आ सकता है । पर सरकार संकट की आँधी के बावजूद शुतुमुर्ग की तरह समस्या से मुँह छिपाए रही। वह आर्थिक लोकप्रियतावाद की रेत में मुँह छिपाए सोचती रही कि कोई चमत्कार होगा और संकट उड़नछू हो जाएगा ।

समस्या और गंभीर होती गई क्योंकि 1980 के दशक के मध्य में सरकार रक्षा खर्च में वृद्धि करती गई । इस अवधि में भारत रक्षा खर्च के मामले में, स्टॉकहोम स्थित इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट के अनुसार, विकसित देशों (तेल-समृद्ध सऊदी अरब तथा इराक समेत) से आगे था । आश्चर्य नहीं कि कुल खर्च राजस्व प्राप्ति यानी आमदनी से अधिक हो गया । आर्थिक समस्याओं से देश गुज़र रहा था । नवंबर 1990 से मार्च 1991 के बीच दो सरकारें गिरी। फरवरी 1991 में केन्द्रीय बजट समय पर पेश नहीं किया जा सका । राजनीतिक तदर्थता मई-जून 1991 में होनेवाले चुनाव तक खिंचती रही । इन्हीं चुनावों के दौरान एक पूर्व प्रधानमत्री की हत्या तक हो गई । इन सब घटनाओं, स्थितियों के चलते महाजनों का, भारत पर भरोसा काफी कम हो गया । अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी

बाज़ार में भारत की खास-दर (क्रेडिट रेटिंग) काफी कम हो गई । अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाताओं से कर्ज मिलना बन्द हो गया । इन सभी समस्याओं ने पहले से ही कमज़ोर अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिया । भारत कर्ज न लौटनेवाला देश घोषित होते-होते रह गया । संक्षेप में कहें तो 1991 के मध्य तक यह स्थिति आ गई थी कि विदेशी मुद्रा की अदायगी टालने या कर्ज लेने की सारी संभावनाएँ चुक गई थी । जून के अन्त में चुनाव के बाद कांग्रेस सत्ता में आ गई थी ।

विश्व प्रसिद्ध 'वाशिंगटन सर्मानुमति' (वाशिंगटन कंरोंसस) के अनुकूल 1991 में भारत सरकार ने भी व्यापक रूप से आर्थिक नीति में सुधार लाने का प्रयास किया । औद्योगिक नीति के सुधार के अन्तर्गत नई कंपनियों की शुरुआत तथा मौजूदा कंपनियों के विकास पर लगे प्रतिबंध खत्म कर दिए गये । निवेश संबन्धी निर्णयों के लिए सरकार की मंजूरी की ज़रूरत नहीं रही । राज्य सत्ता के हस्ताक्षेप के अभाव में उन पर कोई नियन्त्रण नहीं रहा । उद्योंगों के, चाहे निवेश कितनी ही क्यों न हो लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया । लाइसेंस की अनिवार्यतावाले उद्योग थोडे ही रह गए । हमारी अर्थव्यवस्था में आय का स्तर कम है, बेरोज़गारी काफी है और सामाजिक सुरक्षा का कोई सवाल है ही नहीं । कर्मचारियों की छँटनी और कंपनियों की लॉक आऊट आम बात हो गई । भारत में कंपनियों की खरीद-बिक्री, विलय आदि का अनुभव यही बताता है कि औद्योगिक क्षेत्र में एकाधिकार बनाने तथा बाज़ार के बडे हिस्से पर कब्जा करने के उद्देश्य से ही यह सब किया गया है । इसके कुछ उदाहरण देखे जा सकते है । हिन्दुस्तान लीवर द्वारा टाटा ऑयल मिल्स कंपनी की खरीद, प्रौक्टर-गैम्बल द्वारा गोदरेज एंड ब्वाइस पर नियन्त्रण, कोका कोला और पार्ले का विलय, मल्होत्रा और जिलेट

में समझोता आदि"[1] बहुत से देशों में एकाधिकार विरोधी कानून बने हुए हैं और वहाँ इस तरह की कार्यवाई के लिए अनुमति नहीं दी जाती । कंपनियों को जब सर्वाधिकार दिया जाता है तब मंहगाई पर से भी सरकार का नियंत्रण हट जाता है । औद्योगिक नीति सुधार ने भारत की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह पूँजीसापेक्ष कर दिया है ।

भारत में व्यापार नीति के सुधार का उद्देश्य यही रहा है कि आयात पर लगाए गए नियन्त्रणों को समाप्त कर दिया जाए, ऐसी उद्योगों को प्राप्त संरक्षण खत्म कर दिया जाए तथा देसी कीमतों को विश्व की कीमतों के स्तर के बराबर लाया जाए । यों आयात-निर्यात पर से मात्रात्मक नियन्त्रण यानी कोटा प्रणाली खत्म कर दी गई । आयात शुल्क में भारी कमी की गई । निर्यात के लिए दिया जानेवाला अनुदान कम कर दिया गया । मुद्रा की विनिमय दर में समायोजन के चलते रुपये का काफी अवमूल्यन हो गया। आयात महँगा और निर्यात सस्ता हो गए । यही मकसद रहा कि गैर-व्यापारक माल के उत्पादन का महत्व कम हो जाएगा और संसाधन व्यापारिक माल के उत्पादन की बढ़ोत्तरी हो जाएगी । साथ ही, देसी कंपनियों को अन्तार्राष्ट्रीय प्रतियोगिता का सामना करना पडेगा तो वे भी सक्षम बनने केलिए मज़बूर हो जाऐगी ।

इस व्यापार नीति सुधार के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक के चिन्तन के साथ हमारे वित्त मंत्रालय का भी दिमाग रहा है । लेकिन यह नीति हमारी अर्थ व्यवस्था में कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर रही हैं । आयात पर आधारित तेजी से चलाया गया उदारीकरण कार्यक्रम (जिसके अन्तर्गत आयात लाइसेंस की समाप्ति तथा उपभोक्ता सामानों को छोड़कर सभी समानों पर उत्पाद

---

1. अमित भादुडी, दीपक नय्यर -उदारीकरण का सचः -पृ. 37

शुल्क में कमी) के चलते अर्थ व्यवस्था में अत्यधिक संरक्षण की जगह संरक्षहीनता की स्थिति बन जाती है । आश्चर्य की बात है कि भारत में आयात में उदारता लाई गई लेकिन पाटन-विरोधी कानून (एंडी-डंपिंग लॉ) नहीं बनाया गया ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग किया जा सके । इससे देसी कंपनियाँ बन्द हो जाने की संभावना है ।

सरकार भुगतान सन्तुलन की स्थिति को लेकर खामखाह इतनी चिंतित रही कि उदारीकरण नीति का द्वार पोर्टफोलियो निवेश (घरेलू पूँजी बाज़ार में शेयर, डिबेंचर तथा अन्य ऐसे निवेश-माध्यमों की खरीद) के क्षेत्र में उदार शर्तों के साथ विदेशी निवेश संस्थाओं के लिए खोल दिया । इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि पोर्टफोलियो निवेश में निवेश-अवधि की कोई सीमा नहीं होती, निवेशित पूँजी और उस पर आर्जित लाभांश कभी भी वापस लिया जा सकता है । अर्थ-शास्त्री कहते है कि यह टमटम को घोड़े के आगे रखने जैसी मूर्खता का आदर्श उदाहरण है ।"[1] भारतीय पूँजी बाज़ार में जो खींचतान तथा सट्‌टेबाजी चलती है उसे देखते हुए यह विदेशी पोर्टफोलियो निवेश काफी महँगा और खतरनाक सिद्ध हो सकता है । क्योंकि कंपनियाँ न सिर्फ लाभांग बल्कि पूँजी भी कभी भी वापस ले सकता है । इससे भारतीय अर्थव्यवस्था का संतुलन बिगड़ सकता है ।

प्रौद्योगिकी के आयात का एक नतीजा यह हो सकता है कि यदि कई कंपनियाँ एक समय आयात करती रहती हैं, तो बाज़ार का अनुशासन इस प्रक्रिया को ज़रूर थोड़ा सीमित करेगा, लेकिन देशी प्रोद्योगिकी क्षमता का दम

---

1. अमित भादुडी, दीपक नायर - उदारीकरण का सचः पृ. स. 40

घृट जाने की संभावना भी है । अगर सरकार के पास भविष्य के बारे में कोई सुचिंतित दृष्टि नहीं हो तो सिर्फ खुलेपन को लागू करने से कुछ भी सही नहीं होगा।

सार्वजनिक क्षेत्र सुधार के तहत सरकार का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र की गतिविधियों को सीमित करना, घाटे में चलते सार्वजनिक उपक्रमों को बन्द करना तथा सरकारी खजाने पर से इस क्षेत्र के घाटे का बोझ हटाना भर रह गया। बी. आई. एफ. आर ही निर्णय लेगा कि ऐसे उपक्रमों को प्रभावकारी ढंग से पुनर्गठित किया जा सकता है या उन्हें बन्द कर देना है । वैसे इस क्षेत्र में सुधार का प्रमुख आकर्षण चुनिंदा सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी शेयरों का विनिवेश है । (यह पहले 20 प्रतिशत तक था, बाद में बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दिया गया) यह भी दावा कि गया किया इससे सार्वजनिक क्षेत्र व्यापारोन्मुख हो सकेगा।

सार्वजनिक क्षेत्र के सुरक्षित उद्योगों की संख्या कम कर दी गई । लेकिन सार्वजनिक निवेश पोर्टफोलियों पर व्यवस्थित ढंग से पुनर्विचार नहीं किया गया जिससे इस क्षेत्र की पुनर्रचना या युक्तिसंगत पुनर्गठन हो सके । कानून में संशोधनों तथा प्रशासकीय प्रबन्ध के मामले में संकोच के साथ कुछ ऐसे कदम उठाए गए हैं जिससे उचित क्षतिपूर्ति देकर सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को बन्द किया जा सके । लेकिन ये सब अभी तक कागजों तक सीमित है क्योंकि इसके लिए उचित राजनीतिक वातावरण नहीं बनाया जा सका है । चिन्ता की बात यह भी है कि सार्वजनिक उपक्रमों के शेयरों की बिक्री का तरीका न तो पारदर्शी रहा है और न ही हर किसी की पहूँच में रहा है । इसीलिए बाज़ार से काफी कम

कीमतों पर इन शेयरों की बिक्री तथा इससे सरकार को हुए भारी नुकसान को लेकर सन्देह रहा है । साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र को दिया जानेवाला गैर-योजना समर्थन (मुख्यतः घाटा पूरा करने का जरिया) धीरे-धीरे कम और फिर बिलकुल ही बन्द कर दिया गया है । इससे सरकार का खर्च तो घटा है लेकिन इन सरकारी कंपनियों की बेहतरी के लिए कुछ नहीं किया जा सका। इसके पीछे राजनीति के अनुकूल नरम उपाय अपनाने की दृष्टि रही है, यानी मध्यम अवधि में इस क्षेत्र को संभाव्य बनाने के बजाय सरकार की तात्कालिक वित्तीय ज़रूरतें पूरी करना। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि सक्षम सार्वजनिक क्षेत्र से सरकार को आगे लाभ होता रह सकता है, लेकिन इस लाभ को सरकार, शेयर बेचकर संसाधन जुटाने की नीति के चलते, लुटाने पर आमादा है ।

इस क्षेत्र में साफ-साफ अवसरवाद दिखाई पड़ता है । पुनर्गठन की सही कोशिश किए बगैर निजीकरण के इस तरीके को न तो सुधार, न ही समायोजन की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें यह तो हो सकता है कि अच्छे उपक्रमों को बेच दिया जाए और बीमार उपक्रमों को रखा जाए या कुछ दिवलिया उपक्रमों को बन्द ही कर दिया जाए । लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में सक्षमता तथा उत्पादकता बढ़ाने की कोई सुनियोजित कोशिश नहीं दिखती है । इसका कारण सिर्फ यह नहीं है कि हमारे सुधारवादियों में आर्थिक कल्पनाशीलता का अभाव है बल्कि इसके पीछे एक गहरी बेचैनी है जो चोरी की राजनीति और 'लूट में चरखा नफा' वाली मानसिकता से उपजी है।"[1] यदि सार्वजनिक क्षेत्र को राजनीतिक तथा नौकरशाही नियंत्रणों से मुक्त कर दिया जाए, उसे पारदर्शी तथा ज़िम्मेवार बना दिया जाए तो मंत्रियों-नौकरशाहों की जागीरदारी खतम हो जायेगी ।

वित्तीय क्षेत्र में सुधार का उद्देश्य रहा है कि सरकारी व्यापारिक बैंक प्रणाली अधिक लाभप्रद तथा देसी पूँजी बाज़ार की कार्यप्रणाली बेहतर बनायी जाए । लेकिन भारत में उदारीकरण के प्रणेता सहज भाव से यह मानकर चल रहे हैं कि बाज़ार का अनुशासन बैंक प्रणाली तथा पूँजी बाज़ार को अपने आप अधिक सक्षम बना देगा । सरकार ने व्यापारिक बैंक के लेनदेन में व्याज की जटिल संरचना को सरल तथा विनियन्त्रण के ज़रिये उसे अधिक व्यावहारिक बना दिया है । उम्मीद की जाती है कि इससे व्यापारिक बैंकों के लाभ पर लगी बंदिश समाप्त हो जाएगी, यानी उनका लाभ बढेगा । दूसरी तरफ, लंबी अवधि वाली सरकारी प्रतिभूतियों की व्याज दर को बढ़ाकर बाज़ार के स्तर पर ला दिया गया है । इसका मकसद है कि सरकार को कम व्याज पर कर्ज देने से बैंकों पर जो बोझ पड़ता था, वह कम हो जाए । पूँजी बाज़ार में सुधार का उद्देश्य निजी क्षेत्र में निवेश बढ़ाना तथा विदेशी पोर्टफोलियों के निवेश को आकर्षित करना है । घरेलू पूँजी बाज़ार में व्याज की दर को विनियंत्रित कर दिया गया है और प्राथमिक पूँजी बाज़ार में नए शेयर इश्यू लाने, उनका आकार तथा मूल्य तय करने के लिए सरकारी अनुमति की प्रथा को समाप्त कर दिया गया है । सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप पद्धतियों तथा मानदंडों को लागू किया है। अच्छा है, लेकिन इसकेलिए व्यापापिक बैंकों के पोर्टफोलियों में बड़ी मात्रा में गैर-निष्पादक परिसंपत्तियों (नॉन-परफॉर्मिग एसेट्स) की ज़रूरत होगी । इसके चलते बैंकों का नेटवर्क खत्म हो जाएगा तथा उन्हें और अधिक आधारभूत पूँजी की ज़रूरत पडेगी । इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि सरकार कर्ज ले रही है, अपने ऊपर कर्ज का बोझ बढ़ा रही है । संक्षेप में कहें तो भारत में वित्तीय क्षेत्र

1. अमित भादुडी, दीपक नायर - उदारीकरण का सचः - पृ. स. 43

के सुधारों का यही परिणाम है कि व्यापारिक बैंक प्रणाली तथा पूँजी बाज़ार नियमों के जाल में फँसी हैं तथा उन्हें अत्याधिक शासित रहना पड़ रहा है। अब सुधार की जो प्रक्रिया सामने आई है, उससे यही स्पष्ट हुआ है कि विनियंत्रण से वित्तीय अव्यवस्था और बढ़ेगी ।

दरअसल आर्थिक उदारीकरण का यही अर्थ होता है कि बाज़ार की कीमत को सक्षम कीमत के स्तर पर लाया जाए तथा व्यक्तियों, परिवारों एवं कंपनियों को आर्थिक निर्णय लेने की अधिक स्वतंत्रता दी जाए । मतलब सत्ता की भूमिका घट जाएगी । यानी राजनीतिक या नौकरशाही की इच्छा-अनिच्छा पर आधारित प्रक्रिया से हटकर बाज़ार-आधारित नियमों पर सारी प्रक्रिया ज़ारी रहेगी । देश के बाज़ार अचानक नहीं बन जाते बल्कि राज्य के सचेत प्रयासों से बनते हैं । राज्य के विनियमनों तथा एक संस्थान के रूप में सुचारू रूप से चलते बाज़ार के बीच एक जटिल अंतर्क्रिया होती है । अनेक आर्थिक इतिहासकारों ने इस पर प्रकाश डाला है । उनमें से एक इतिहासकार कार्ल पोलियानी ने इसे दुहरी गतिशीलता का नाम दिया है।"[1] यानी जब-जब बाज़ार ने अपने क्रियाकलाप के क्षेत्र का विस्तार किया है तब-तब बाज़ार का सुचारु रूप से चलाने के लिए राज्य को नए विनिमय बनाने की आवश्यकता पड़ी है । इस दोहरी गतिशीलता में राज्य और बाज़ार दोनों एक-दूसरे को सहयोग देते है। इसलिए मुक्त बाज़ार तथा राज्य के न्यूनतम हस्ताक्षेप के बारे में अभित भादुडी सूचित करता है कि भारत को अधिक गहराई से फिर सोचना पडेगा। लेकिन ऐसा लग रहा है कि भारत में चलाए जा रहे उदारीकरण में अपने अतीत के अनुभवों से सीख नहीं ली गई ।

---

1. अमित भादुडी, दीपक नायर - उदारीकरण का सचः- पृ. स. 45

ढांचागत समायोजन कार्यक्रम

नरसिंह राव सरकार की नई अर्थनीति के तहत ढांचागत समायोजन कार्यक्रम को अमल करने का निर्णय लिया गया था । यह विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा प्रस्तावित उदारीकरण का ही हिस्सा है । उदारीकरण कार्यक्रम के दो चरण हैं । (1) स्थिरीकरण (2) ढ़ाँचागत समायोजन । स्थिरीकरण के चरण में सलाह दी जाती है कि सरकार अपना राजकोषीय घाटा कम करें, क्योंकि राजकोषीय घाटा ज़्यादा होने से अनुचित रूप से माँगें बढ़ती हैं और आवश्यक पूर्ति न होने से चीज़े महँगी हो जाती हैं । चीज़ों की लागत ज़्यादा होगी, तो उनका निर्यात कम होगा, अतः विदेशी मुद्रा का संकट बना रहेगा। इसी सिलिसले में मुद्रा का अवमूल्यन करने की सलाह भी दी जाती है । उम्मीद की जाती है कि इससे निर्यात बाज़ार में प्रतिद्वंद्विता करने की शक्ति हासिल की जा सकेगी । साथ ही सरकार को यह सलाह भी दी जाती है कि यह टैक्स दरों, खासकर तट कर दरों और व्याज दरों में कमी करे, ताकि औद्योगिक उत्पादन की लागत कम हो सके और उत्पादन बढ़ सके। कहा जाता है कि यह विदेशी मुद्रा के संकट को दूर करने का अल्पकालीन और सतही नुस्खा है । सामान सस्ता होगा, तो ज़्यादा बिकेगा - यह एक सीधी-सी बात है, हालाँकि इसके साथ यह शर्त भी जुड़ी हुई है कि अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में उसकी माँग भी हो और यह माँग सिर्फ वस्तु की कीमत पर निर्भर नहीं होती । हमें इस बात पर भी विचार करना पडेगा कि यह एक देश की अन्तरिक मामला है, वह किस हद तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लोगा । लेकिन चूँकि ऋण लेनेवाले देशों की

किसी भी कीमत पर विदेशी मुद्रा की चाहत रहती है, अतः उनके लिए वही रास्ता बच रह जाता है जो बैंक-कोष सुझाते हैं ।"[1]

ढाँचागत समायोजन, स्थिरीकरण कार्यक्रम का ही विस्तार है । इस समायोजन कार्यक्रम के मुख्य उपादान इस प्रकार है कि अर्थव्यवस्था का खुलापन यानी देशी उद्योंगों के मामले में सरकारी नियन्त्रणों को समाप्त करना तथा विदेशी निवेश के लिए दरवाज़ा खोलना। दूसरा है सार्वजनिक क्षेत्र की परिधि को घटाना ताँकि निजी क्षेत्र का दायरा बढ़ा सके । तीसरा है बाज़ार की शक्तियों को ज़्यादा मौका प्रदान करना, चौथा है सब्सिडी कम करना, ताकि राजकोष पर दबाव को कम किया जा सके । पांचवाँ उपादान है मुद्रास्फीति की दर को नियन्त्रित करना। भारत सरकार पिछले छह वर्षो से इसी कार्यक्रम पर अमल करती रही है ।"[2]

लेकिन उदारीकरण का यह कार्यक्रम सिर्फ बैंक-कोष का नीतिगत फार्मूला नहीं है बल्कि गरीब देशों में बरकरार पुँजीवादी अर्थव्यवस्था का स्वभाविक रास्ता है इसका हमें राजीव गाँधी सरकार की अर्थनीति से पता चलता है । राजीव गाँधी की सरकार पर विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का कोई दबाव नहीं था । इन्दिरा गाँधी की सरकार ने एक बार ज़रूर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लिया था और उनकी शर्तों का पालन करते हुए रुपए का अवमूल्यन किया था तथा अर्थव्यवस्था को 'खोलने' की दिशा में कुछ कदम भी उठाए थे । लेकिन उन्हें जल्द ही यह अनुभव हो गया कि आरोपित नीतियों से देश का भला नहीं हो सकता, अतः उन्होंने मुद्रा कोष का ऋण भी चुका दिया और अनुबंधित ऋण का बाकी हिस्सा भी नहीं लिया । राजीव गाँधी की सरकार

1. राजकिशोर - उदारीकरण का राजनीति - पृ. स. 41
2. राजकिशोर - उदारीकरण का राजनीति - पृ. स. 41

के लिए ऐसी कोई मज़बूरी नहीं थी। फिर भी उन्होंने 1991 के आम चुनाव के लिए जो चुनाव घोषण पत्र बनाया था, उसके आर्थिक कार्यक्रम मुख्य बिन्दु इस प्रकार था। 1) सार्वजनिक क्षेत्र का आकार कम किया जाएगा, उसे मुनाफा - केन्द्रित बनाया जाएगा तथा उसमें सरकारी इस्ताक्षेप कम से कम होगा (2) टैक्स के बोझ को कम किया जाएगा । (3) वित्तीय घाटे को अनुशासित किया जाएगा (4) निर्यात को प्रोत्साहित किया जाएगा (5) उद्यमशीलता को प्रोत्साहित किया जाएगा (6) पूँजी बाज़ार का विकास किया जाएगा (7) विनियमित करनेवाली प्रणाली का सरलीकरण होगा (8) नई टेक्नोलॉजी लाई जाएगी । (9) विदेशी निवेश और टेकनोलॉजी लाने के लिए सहयोग गठबंधनों की अनुमति दी जाएगी (10) विनिर्माण की समस्त गतिविधियों में प्रतिद्वंद्विता लाई जाएगी।"[1] बीच-बीच में जन कल्याण की बात तो की गई है लेकिन यह बात मुख्य नहीं बन पाई। मुख्य बात यह है कि अर्थव्यवस्था को पूँजीवादी मूल्यों के आधार पर चलाया जाएगा । वस्तुतः यह ढाँचागत समायोजन ही आज के शासक वर्ग का आर्थिक दर्शन है, जो पूंजीवादी आर्थिक दर्शन का ही नया आयाम है ।

गैट समझौते पर भारत के ऐतिहासिक हस्ताक्षर

गैट दुनिया के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी नियम बनाने और विवादों को सुलझाने के लिए बनाया गया मंच है । इसका पूरा नाम "व्यापार एवं सीमा शुल्क संबन्धी सामान्य समझौता (General Agreement on trade and tariff) है । आज दुनिया के 108 देश इसके कुल सदस्य हैं जिनमें 79 तीसरी दुनिया के गरीब देश हैं। फिर भी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की भांति इसपर भी दुनिया के अमीर देश हावी हैं और उन्हीं की चलती भी है । गैट के

1. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - पृ 42

महानिदेशक का कार्यालय जेनेवा में स्थित है । महा निदेशक प्रायः किसी अमीर देश का ही होता है । गैट समझौता मुख्यतः औद्योगिक एवं कतिपय कृषि पदार्थों के मुक्त व्यापार को सुनिश्चित करने की व्यवस्था पर केन्द्रित थी । लेकिन कुछ वर्षों, पहले अमेरिका और अन्य अमीर देशों ने दबाव डाला कि गैट का दायरा विस्तृत किया जाये। इसमें खेती की नीतियाँ, पेटेंट कानून, विदेशी पूँजी निवेश की स्वतंत्रता, सेवाओं का व्यापार आदि को भी शामिल किया जाये । विभिन्न मुद्दों पर पूर्ण सहमति नहीं बन पाने के कारण पूर्व महानिदेशक आर्थर डंकेल ने 1991 के अन्त में एक मसौदा पेश किया । इसे 'डंकेल प्रस्ताव' कहा जाता है। 15 दिसंबर 1993 को इस पर औपचारिक सहमति हो गई ।

हालांकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर डंकेल प्रस्ताव पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया चलायी जा रही थी, फिर भी एकपक्षीय अमेरिकी कार्यवाइयाँ यह स्पष्ट कर देती हैं कि ये संधियाँ वफादार नहीं हैं और इसकी पीछे अन्तर्राष्ट्रीय दादागीरी व साम्राज्यवाद की दखलंताज़ी हैं । पिछले कुछ वर्षों में अमेरिका - यूरोप की अर्थव्यवस्थाओं में कुछ ठहराव आ गया है और मंदी, बेरोज़गारी आदि बढ़ने लगी हैं । औद्योगिक उत्पादन का विकास रूक गया है और प्रदूषण आदि के रूप में उद्योगों के दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं । जापान, कोरिया जैसे कुछ देशों से तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है ।.....इस सबको नियन्त्रित करने, दुनिया के गरीब देशों में नया बाज़ार पाने, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कारोबार, आमदनी व मुनाफा बढ़ाने तथा नये क्षेत्रों में अपने व्यापार की शुरुआत के लिए अमीर देशों को दुनिया की व्यवस्था में बदलाव लाने की ज़रूरत महसूस हुई और वही डंकेला प्रस्ताव के रूप में सामने आया है ।"[1] गैट डयरक्टर जनरल पीटर सतरलान्ट के अनुसार

1. राजकिशोर - विनाश को निमंत्रण - पृ. सं. 63

गैट व्यवस्था राजनीति और अर्थनीति के इतिहास का एक निर्णायक समय है । अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिन्टन के मुताबिक गैट व्यवस्था अमेरिकी नेतृत्व को और मज़बूत बना देगा । इन बयानों से यह बात स्पष्ट है कि इस गैट व्यवस्था से कौन-सा देश ज़्यादा खुश है । डंकेल मसौदा 436 पृष्ठों का पोथा है । इसमें हमारे लिए जो प्रासंगिक वे इस प्रकार है :

कृषि संबंधी प्रावधान - कुछ ऐसी नीतियों को प्रस्तुत किया गया है जिनके अनुसार दुनिया के हर देश को कृषि पदार्थों का आयात करना होगा । अमीर देशों को अपनी कुल खपत का तीन प्रतिशत और गरीब देशों को दो प्रतिशत कम से कम आयात करना होगा । जिन देशों पर भुगतान संतुलन का संकट है, उन्हें इसमें कुछ छूट मिल सकती है । इसी के आधार पर भारत सरकार कह रही है कि इस प्रावधान का भारत पर कोई असर नहीं पडेगा। लेकिन किसी देश पर भुगतान संतुलन का संकट है या नहीं, यह उस देश के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तय करेगा । यानी उसे मुद्रा कोष की शर्तें माननी पडेंगी । उस देश को आयात बन्द करने की अनुमति नहीं दी जायेगी । इससे देश की खेती और किसानों पर बुरा असर पडेगा । अनाज व अन्य उपज की कीमतें गिर जायेंगी और किसानों के बरबाद होने की संभावना है ।

खेती से जुडे जो अनुदान सरकार की ओर से दिये जाते हैं, जैसे खाद, बीज, सिंचई, कर्ज, बिजली या समर्थन मूल्य आदि को नियन्त्रित करने का प्रावधान डंकेल प्रस्तावों में है । निर्यात संबन्धी अनुदान के संदर्भ में, दुनिया के बाज़ार में अपनी उपज बेचने के लिए जो अनुदान दिये जाते हैं उन्हें इतना कम

करना होगा कि वे कुल सरकारी बजट के 36 प्रतिशत से और कुल मूल्य के 24 प्रतिशत से ज़्यादा न हों । अमीर देश अपने निर्यात अनुदानों में जितनी कटौती करेंगे, उसकी दो-तिहाई कटौती गरीब देशों को भी करनी होगी। किन्तु अमीर देश इतना भारी निर्यात अनुदान देते हैं कि इस कटौती के बावजूद वे काफी अनुदान दे सके हैं । भारत तो आज अपने निर्यातों पर विशेष अनुदान देने के लिए काबिल नहीं है ।

डंकल प्रस्तावों में खाद्यान्न सुरक्षा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की बात की गई है । खाद्यान्न का सुरक्षित भण्डार बनाने और राशन की दुकानों से बाज़ार से कम कीमत पर अनाज बाँटने का प्रस्ताव भी है, लेकिन इसके लिए दो शर्दें हैं एक सरकार बाज़ार भाव पर ही अनाज खरीदेगी और दो राशन का अनाज सिर्फ अत्यन्त गरीब व कमज़ोर लोगों (बी पी एल वर्ग) को पोषण की कमी पूरा करने के लिए दिया जाये । इसके कई नतीजे निकलेंगे। एक तो वर्तमान समय में जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली चला रही है, जिसका तमाम कमियों के बावजूद अभाव की स्थिति में लोगों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराने में योगदान रहा है, उसे बन्द करनी पडेगी । स्वच्छता और स्वास्थ्य सुरक्षा के तहत पौधों व अनाज में लगी फफूँद व अन्य बीमारियों के आधार पर कोई देश किसी अनाज या खाद्य सामग्री को खरीदने से इनकार कर सकता है । इस बारे में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कसौटी मानदंड तैयार करने का काम डंकेल कोडेक्स आयोग नामक अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसी को सौंपा गया है । किन्तु कोडेक्स आयोग में अमीर देशों और बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व है और वह उनका पक्षपात कर

सकता है । वास्तव में स्वच्छता और स्वास्थ्य सुरक्षा संबन्धी प्रावधानों को अमीर देश गरीब देशों के निर्यात को रोकने के लिए की गई साजिश है ।

बौद्धिक संपदा अधिकार प्रणाली के अन्तर्गत पेटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट आदि आते हैं । डंकेल का प्रस्ताव है कि इनसे संबन्धित कानून पूरी दुनिया में एक-सा होना चाहिए । यदि एक जगह कहीं किसी नयी चीज़ का पेटेंट हो गया तो उसका उत्पादन या तो पेटेंट करानेवाली फर्म के द्वारा या रॉयल्टी चुका कर उसकी अनुमति से ही होना चाहिए । नहीं तो यह माना जायेगा कि पेटेंट की गयी वस्तु का चोरी से उत्पादन किया जा रहा है और उसपर पेटेंट कानून तहत कार्रवाई की जा सकती है । डंकल प्रस्ताव के अनुसार सबके लिए पेटेंट की अवधि 20 वर्ष करनी होगी । बौद्धिक संपदा अधिकार संबन्धी डंकेल के प्रावधानों का असली मकसद पूरी दुनिया में बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों को टेक्नोलॉजी व उत्पादन पर एकाधिकार प्राप्त करना और रायल्टी के रूप में उनके मुनाफे बढ़ाना है । पेटेंट का सबसे ज़्यादा इस्तेमाल वे ही करती हैं । पेटेंट किसी ने भी कराया है, उसके अधिकार ये कंपनियाँ पैसे दे कर खरीद लेती हैं । यह हकीकत है कि तीसरी दुनिया में अभी तक कराये गये 80 प्रतिशत पेटेंट विदेशियों के पास हैं, जिनमें मुख्यतः अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, फांस तथा स्विट्ज़रलैंड की कंपनियाँ हैं । पेटेंट से इनके मुनाफे बढ़ने के साथ गरीब देशों में दवाओं, बीजों व अन्य वस्तुओं के दाम भी बढ़ जायेंगे जिससे करोड़ों - अरबों लोगों की ज़िन्दगी पर बुरा प्रभाव पडेगा । मसलन मान लिजिए, किसी इलाके में किसी खास के बीज आपूर्ति एक ही कंपनी करती है । कंपनी को मालूम है कि हर वर्ष

कितने बीजों की खपत उस इलाके में होती है । यदि किसी वर्ष में कंपनी के बीजों की ब्रिक्री कम हुई तो वह किसानों पर आरोप लगा सकती है कि उन्होंने पिछली फसल में से बीज बचा कर बोये हैं ।

डंकेल प्रस्ताव के आधार पर बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों को 'स्थापना अधिकार' मिल जाएगा। किसी भी कंपनी को दुनिया में कहीं भी अपना कारोबार स्थापित करने का अधिकार होगा । राष्ट्रीय बरताव का अधिकार भी इन्हे हासिल होगा । अर्थात किसी विदेशी कंपनी के साथ भी वही बरताव किया जायेंगा जो देश कंपनी के साथ होता है । दरअसल डंकेल प्रस्ताव का यही सार है देशी कि सरकारों पर पाबंदी और बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों को स्वच्छंद छूट । बैंक, बीमा, दूर संचार, विज्ञापन, परिवहन, उपग्रह की सेवाएँ खेलकूद, होटल आदि बहुत सारी संस्थाएं व तत्व डंकेल के स्वतंत्र व्यापार' के अन्तर्गत आ जाते हैं । अमीर देशों में कई कारणों से उद्योगों का विकास मंद पड़ गया है । वे नये उद्योगों को तीसरी दुनिया की उर्वर भूमि पर रोपना चाहते हैं, क्योंकि उधर श्रम सस्ता है, प्राकृतिक संसाधन और कच्चा माल सस्ता व सुलभ हैं, प्रदूषण संबन्धी नियम-कायदे कठोर नहीं हैं । और नया उपभोक्त बाज़ार भी वही मिलेगा । यह काम वे बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों से कराना चाहते हैं । ताकि नियन्त्रण और मुनाफा उन्हीं के हाथ में रहे। अमीर देशों की अर्थ व्यवस्था में सेवाओं का हिस्सा बढ़ता जा रहा है और वे ही सबसे प्रमुख गतिविधियाँ हो गयी हैं। उद्योगों में बढ़ते मशीनीकरण, स्वचालन, कप्यूटर तथा रोबोट के इस्तेमाल से तथा मंदी के कारण जो लोग बेरोज़गार हो रहे हैं, उन्हें खपाने केलिए भी अर्थ ज़रूरत है । अतएवं वे अब शोषण का जाल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैलाना चाहते हैं ।

भारत का लगभग एक चौथाई निर्यात कपडे व पोशकों के रूप में होता है । लेकिन आज तक इसका खुला व्यापार नहीं हुआ है । कपडे का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार 'बहु रेशा समझौते' से नियंत्रित होता है, जिसमें अमीर देश गरीब देशों के वस्त्रों के आयात का कोटा निर्धारित कर देते है । कोई गरीब देश इस कोटे से ज़्यादा नहीं बेच सकता । यह व्यवस्था स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है । लेकिन इसे समाप्त करने के लिए डंकल प्रस्ताव के तहत अमीर देशों को 20 वर्ष का समय दिया गया है ।

डंकेल प्रस्ताव में "बहुपक्षिय व्यापार संगठन" का रूप देने का प्रावधान है । यह एक प्रकार से राष्ट्रीय सरकारों पर 'सुपर सरकार' के रूप में होगा । इसे अनेक आंतरिक मामलों में नीति-निर्धारण, निर्णय क्षमता, हुक्म देने, फैसला सुनाने और सजा देने का अधिकार मिल जायेगा । इसमें अमीर देशों और उनकी बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों के स्वार्थों का ही वर्चस्व होगा । वे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के साथ मिल कर पूरी दुनिया पर राज करेंगे। यों गैट समझौता दुनिया के अमीर देशों और उनकी बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों के साम्राज्य को फैलाने का सबसे ताज़ा हथियार है । लेकिन विडंबना की बात है कि भारत सरकार ने गैट समझौते पर हस्ताक्षर दिए हैं और उसके आधार पर आर्थिक नीतियों को अमल करने की शुरुआत भी की है । ऐसी स्थिति में भारत का आम जनता को और उसके जागरूक समूहों को ही यह जिम्मेदारी उठानी पडेगी कि भारत की तीसरी दुनिया के खिलाफ अमीर देशों व उनकी बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों की इस

साजिश को समझें और अपनी आज़ादी, संप्रभुता, अपनी खेती, अर्थव्यवस्था व जनजीवन पर आये इस संकट का मज़बूती से मुकाबला करें ।

विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता

विश्व व्यापार संगठन विश्वबैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश के समान, साम्राज्यवादी देशी के हित में स्थापित संगठन है । जिसका मकसद विकाशील एवं गरीब देशों के व्यापार को निर्मंत्रित करने के साथ अपने हित की दिशा में अग्रसर करना भी है । डंकल के व्यापार संबन्धी प्रस्तावों को अमल करना संगठन का घोषित रवैया है । 1994 अप्रील 15 को 125 देशों के प्रतिनिधियों ने मरोकों के मरमेश में एक सम्मेलन का आयोजन किया । उसमें विश्व व्यापार संगठन बनाने का निर्णय लिया गया और उसके परिणाम स्वरूप 1995 जनवरी 1 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई ।

मुक्त एवं स्वतंत्र व्यापार की सहायता देनेवाली शर्तें W.T.O. के प्रावधानों में दर्ज है । समझौता व ऋण संबंधी नियमों को आयाम में लाने की कोशीश आदि अनेक तत्व इसके अन्तर्गत आ जाते हैं । दो देशों के बीच व्यापार संबन्धी तर्कों को खतम करने के लिए इसमें अनेक व्यवस्थाऐं है और कोई भी प्रतिनिधि देश W.T.O. के खिलाफ नहीं जा सकते है। 1994 में मोरेश्यस में जिस समझौते में हस्ताक्षर किया गया था, उसमें सारी व्यवस्थाएँ विस्तार से दर्ज है । W.T.O.का जनीवा में अपना सचीवालय है जहाँ 400 से ज़्यादा कर्मचारी हैं । अपने प्रतिनिधि देशों की सहायता से W.T.O. इस सचीवालय को चलाता है ।

हर देश अपने राजदूत को वहाँ भेजता है । साथ ही साथ प्रतिनिधि देशों की सरकारें अपनी समस्याओं को जाहिर करने विद्वानों को भी भेज देती हैं ।

W.T.O. में निर्णय का आधार वोटिंग से ज़्यादा प्रतिनिधि देशों की आम सहमति है । इसी तरह W.T.O.प्रतिनिधि देशों की एकता को बनाये रखता है । अगर किसी कारण देशों के बीच एकता नहीं हुई तो वोटिंग की व्यवस्था भी है। W.T.O. में प्रतिनिधि देशों को चुनने का हकदार, 'अमेरीका' जैसे कुछ संपन्न देश हैं । इसलिए संपन्न देश विकासशील देशों को अपने वश में रखकर फैसलों को अपने पक्ष में करने के लिए कामयाब होते हैं । इसी तरह विकासशील देशों के निर्णय में बदलाव भी आ जाता है । विकसित देश अपने तात्पर्य को किसी भी कीमत पर विकासशील की रहम पर छोड़ना नहीं चाहते हैं। कृषि, सब्सीड़ी, स्वास्थ आदि अनेक क्षेत्रों में वे वही फैसला लेते हैं जो उन के लिए फायदे मंद हो । विकासशील देशों को बाज़ार के साथ जोड़ने का दायित्व भी W.T.O. का है । प्रतिनिधि देशों को अवश्यानुसार आर्थिक उपदेश भी दिया जाता है ।

W.T.O की पक्षधरता और तानाशाहि के खिलाफ विकासशील और अविकसित देशों में W.T.O के विरुद्ध अनेक प्रकार के विद्रोह भी दिखाई पड़ रहे हैं । 1999 दिसंबर में W.T.O का अमेरीका के सीयाट में जो सम्मेलन हुआ उसके विरुद्ध सशक्त विद्रोह विकासशील और अविकसित देशों की जनता की तरफ से हुआ । क्योंकि W.T.O की नई आर्थिक नीतियाँ इन देशों के लिए खतरनाक साबित हो सकती थी । विकसीत देश W.T.O के ज़रिए विकासशील

देशों की आयात, व्यवस्था को पूरी तरह कुचल देने की आज साज़िश कर रहे थे । भारत जो विकासशील देशों का सशक्त प्रतिनिधि है यदि चाहते तो विकासशील देशों की समस्याओं को दुनिया के सामने प्रस्तुत कर सकते थे । लेकिन सियाट सम्मेलन में भारत बार-बार यही दुहराते रहा कि भारत को विकासशील देश की नज़र से मत देखा जाए। इसलिए विकसीत देशों के हित के साथ भारत को अपने आपको जोड़ना पड़ा ।

खुले तौर पर W.T.O की तानाशाही सियाट सम्मेलन में दिखाई दे रही थी । W.T.O का सरोकार सिर्फ बहु राष्ट्रीय कंपनियों के तात्पर्य के साथ था। इसका अंजाम यह होगा कि पूरी दुनिया में आर्थिक जनतंत्र बिगड़ जाएगा । आपसी तर्कों को खतम करने के लिए W.T.O में बहुत धन खर्च करना पडेगा। इसलिए ज़्यादातर विकाशील देश पीछे हट रहे हैं । कभी-कभी देशों के बीच की आपसी समस्याओं के हल के लिए 30 महीने तक लगते हैं । इससे विकासशील देशों को कठिन आर्थिक समस्याओं का सामना करना पडता है । कभी-कभी W.T.O के सहयोग से विकसित देश विकाशील देशों पर व्यापरिक उपरोध भी लगा देते हैं । इससे विकासशील देशों का बाज़ार और खतरे में पड़ जाएगा ।

भारत विश्वव्यापार संगठन का सदस्य बन गया है , इसलिए संगठन की व्यवस्थाओं का पालन करने के लिए मज़बूर है, भारतीय अर्थ व्यवस्था में W.T.O की दखलंदाज़ी से जो विघटन होता है, उसके बुरे परिणामों का फल भारतीय जनता को भुगतना ही पडेगा, यदि उससे मुक्त होना है तो सदस्यता को ही भंग करना होगा । वैसी ताकत सत्ताधारियों की नही है, यदि है तो वे चाहते

नही हैं क्योंकि भारतीय सत्ता आज भी उच्च वर्ग के हित में सृजित है, विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता से उनको कोई हानि होने की संभावना नहीं है । जो भी हो भारतीय आर्थिक व्यवस्था W.T.O के निर्णयों से विचलित होने की सौ फीसदी संभावना है ।

भूमण्डलीकरण की स्वीकृति

नव उपनिनेशवाद विश्व बैंक, आई. एम. एफ, व विश्व व्यापार संगठन के ज़रिए जिस तरह तीसरी दुनिया के विकासशील देशों को अपना उपनिवेश बनाकर लूट रहा है, इससे स्पष्ट है कि ये तीनों संस्थाएँ साम्राज्यवाद के मुखौटे हैं । वर्तमान विकासशील एवं गरीब देशों की सरकारों का वैश्विक पूँजी के प्रति आकर्षण सचमुच ही चिन्ता का विषय है । वैश्विक पूंजी का एक हिस्सा जो हमारे उत्पादन के साथ अवश्य जुड़ा है - वह सलाना रायल्टी, लाभांश और तकनीक के खर्चों के नाम पर भारी मुनाफा कमाता है । भारतीय स्टाक बाज़ार को भी आज विदेशी पूँजी ही नियन्त्रित कर रही है । यहाँ हमे एक बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि भारत का काफी धन काले रूप में विदेशों में जमा है । किसी भी सरकार ने इस धन को देश में लाने का प्रयास नहीं किया है । यद्यपि चुनाव के दौरान राजनीतिक पार्टियाँ इसकी घोषणा करती हैं ।

इस वैश्विकरण के साथ एक उपभोक्तावादी वर्ग भी पैदा किया जा रहा है। टी.वी. चैनलों पर जिस तरह की उपभोक्तावादी संस्कृति हावी है, उससे हम अपनी संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं, अपने इतिहास से दूर किए जा रहे हैं, हम मानसिक व आर्थिक रूप से नई गुलामी की ओर बढ़ रहे है । किताबों की जगह

इंटरनेट ने ले ली है । साहित्य हाशिए की चीज़ बनकर रह गया है । और नया उपभोक्तावादी वर्ग तो विचारों से शून्य है, इतिहास बोध से कोसों दूर भी ।

जो लोग भूमण्डलीकरण के पक्ष में बोलते हैं उन के लिए भूमण्डलीकरण वस्तुतः व्यापारिक क्रियाकलापों, विशेषकर विपणन संबन्धी क्रियाओं का अन्तर्राष्ट्रीयकरण है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व बाज़ार को एक ही क्षेत्र का समझा जाता है । दूसरे शब्दों में भूमण्डलीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाज़ारों की पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबन्धित न रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत लाभ दशाओं का विदोहन करने की दशा में अग्रसर होता है।"[1]

एक देश की सीमा के बाहर अन्य देशों में वस्तुओं एवं सेवाओं की लेन-देन करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय निगमों अथवा बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ देश के उद्योगों की सम्बद्धता भूमण्डलीकरण है । कतिपय विद्वानों के अनुसार पूरी दुनिया को एक भूमण्डलीकरण गाँव के रूप में मानने की अवधारणा ही वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण है।"[2] लेकिन हकीकत यह है कि भूमण्डलीकरण का मतलब है नव उपनिवेशवाद । दुनिया के तमाम अविकसित व गरीब देशों को परोक्ष तौर पर उपनिवेश बनाने की साजिश। बताया जाता है कि अब राष्ट्रों के बीच भौगोलिक दूरी बेमानी हो चुकी है । दुनिया काफी छोटी हो चुकी है और कोई भी देश अपना नुकसान करके ही शेष विश्व से खुद को अलग-थलग रख सकता है । भूमण्डलीकरण आज, भारत जैसे देशों के लिए अपने देशी हितों की जगह दूसरे देशों और बहुर्राष्ट्रीय निगमों के हितों को वरीयता देते नीतिगत

---

1. पल - प्रतीपल - जन - मार्च - 2005 पृ. सं. 154
2. पल - प्रतीपल - जन - मार्च - 2005 पृ. सं. 154

बदलाव का नाम है । भूमण्डलीकरण राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर-पार आर्थिक लेन-देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है । विश्व अर्थ व्यवस्था में आया खुलापन, आपसी जुडाव और परस्पर निर्भरता का फैलाव है।"[1] मतलब प्रत्येक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण की प्रक्रिया। इसके अन्तर्गत उन्मुक्त बाज़ार एवं प्रतिस्पर्द्धा के साथ राष्ट्रीय बाज़ारों को अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारों में तब्दील करने की प्रक्रिया भी जुडी है।

लेकिन जो भूमण्डलीकरण के पक्ष में बोलते हैं हमेशा यह बात भूल जाते हैं, कि बडे शहरों के शांपिंग मॉल्स, शोरुम्स, फूड प्लाज़ा, कारों से भरी सड़कों और नाइट क्लब्स के बाहर एक और दुनिया है जहाँ गरीब रहते हैं जिनके पास सिवाय पेट की और कोई समस्या नहीं है । भूमण्डलीकरण के ज़रिए दुनिया को एक गाँव में बदलने की प्रक्रिया मानने वाले या इसके बहाने पूरी दुनिया को एक कुटुंब समझने के भारतीय दर्शन का हवाला देने वाले भूल जाते हैं कि जिस फासिस्ट पूंजी के हितों पर भूमण्डलीकरण की विचारधारा कायम है वह पूरी दुनिया को गाँव या कुटुंब में नहीं बल्कि खौफनाक युद्ध के मैदान में ज़रूर बदलने की क्षमता रखती है । वैश्वीकरण के प्रभाव यूँ तो प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिले लेकिन यह मुलतः एक आर्थिक परिघटना ही है । तकनीकी अंदाज में कह सकते हैं कि यह सामंतवाद पूँजीवाद के क्रम में एक नई राजनैतिक व्यवस्था है जो दुनिया के नियन्त्रण के लिए वित्तीय पूँजी के बेरोकटोक प्रवाह का इस्तेमाल करती है ।

जैसे कम्युनिस्ट घोषणापत्र में कहा गया है कि "......अपने माल के लिए

1. पल - प्रतीपल - जन - मार्च - 2005 पृ. सं. 155

बराबर फैलते हुए बाज़ार की ज़रूरत के कारण पूंजीपति वर्ग दुनिया के कोने-कोने की खाक छानता है । वह हर जगह घुसने को, हर जगह पैर ज़माने को, हर जगह संपर्क कायम करने को बाध्य होता है । विश्व बाज़ार को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर पूँजीपति वर्ग ने हर देश में उत्पादन और खपत को एक सार्वभौमिक रूप दे दिया है ....।"[1]

आज पूँजीपति ताकतें इस बात से अवगत हैं कि पूरे विश्व को अपने कब्जे में रखने के लिए बाज़ार में ही नहीं बल्कि पूरी संस्कृति में दखल देना ज़रूरी है । सुपरमैन और मिकी माउस, मैकडॉनल्ड या कोक भारतीयों के लिए उतने ही परिचित हैं, जितने वे अमेरिका के लिए हैं । यह परिचय कुछ इतना गहरा है कि आज की पीढ़ी इन्हे अमेरिकी मानती ही नहीं और यह अमेरिकी जीवन-शैली की विजय है । आज पूरी दुनिया को भूमण्डलीकरण की ताकत का अहसास हो रहा है । प्रत्येक व्यक्ति भूमण्डलीकरण की चपेट में उसी प्रकार आ गया है जैसे वह समुद्र तट पर सो रहा हो और अचानक सागर की एक बड़ी लहर आकर उसे बहा ले गयी है । सच तो यह है कि भूमंडलीय संस्था विश्व बाज़ार पर जनतान्त्रिक अंकुश रखने में सक्षम नहीं है, न ही वह राष्ट्रों के बीच बढ़ती गैरबराबरी की स्थिति को सुधार सकती है । वर्तमान भूमण्डलीकरण ने हर देश की सामाजिक समस्याओं पर आंतरिक राष्ट्रीय राजनीति के नियंत्रण को या हल करने की कोशिशों को कमजोर कर दिया है । भूमण्डलीकरण से विदेश व्यापार और विदेशी निवेश की संभावना ज़रूर बढ़ जाती है परन्तु इसका फायदा तभी उठाया जा सकता है जब देश के अन्दर के हालात ठीक हो और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मज़बूत हो ।

---

1. मार्क्स, कार्ल एवं एंगेल्स (अनुवाद - रमेश सिन्हा) - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषण पत्र - 1848 / 2000 - 28

विश्व में तेज़ी से बढ़नेवाली भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को मज़बूत बनाने में सबसे प्रमुख भूमिका अमेरिका की है । हेनरी किसिंगर के अनुसार 'भूमण्डलीकरण संयुक्त राज्य (U.S.A) के आधिपत्य का ही पर्यायवाची है। बिना लाग-लपेट के उन्होंने कहा कि-जिस रास्ते पर अमेरिका चल रहा है उसे ही दुनिया के अन्य देशों को अपनाना चाहिए । अमेरिका का अनुसरण ही उन्हें अपनी मुक्ति की ओर ले जाएगा।"[1] अमेरिका के अनुसरण का अर्थ है वाशिंग्टन की आम राय को स्वीकार करना । इसे अमेरिकी सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों ने (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक व इंटर अमेरिकन डेवलपमेट बैंक) द्वारा सामने लाया गया और जॉन विलियम्सन ने 1990 में प्रस्तुत किया । विकासशील देशों पर इसे थोपा गया, इस आम राय में विकासशील देशों की ऐतिहासिक-सामाजिक पृष्ठभूमि और उनकी विशेप परिस्थितियों पर ध्यान नहीं दिया गया है। वाशिंग्टन आम राय को नवउदारवाद और बाज़ार रूढ़िवाद भी कहा गया है इसके अन्तर्गत गरीबी निवारण और कमज़ोर वर्गों के कल्याण के कार्यक्रमों और सबसीडी की समाप्ति की बात भी की गई है । अस्पताल हो या शिक्षा संस्थान मुक्त सेवाएँ नहीं उपलब्ध कराई जानी चाहिए । पुल या सड़कों या नहरों का निर्माण होता है तो उनका इस्तेमाल करने वालों से शुल्क वसूल किया जाएँ । विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में कोई बाधा न हो तथा उसे देशी, निवेश के साथ साथ पूरी समानता व सम्मान भी मिलें । राजकीय उपक्रमों का निजीकरण होना चाहिए । नई देशी या विदेशी फर्मों के प्रवेश पर कोई रोक या किसी तरह प्रतिबन्ध न हो, दूसरे शब्दों में लाईसेंसिंग और नियन्त्रण समाप्त कर दिया जाए। सम्पत्ति को प्राप्त करने, इस्तेमाल में लाने और हस्तान्तरण करने के मार्ग में कोई रूकावट न हो ।

---

1. हेनरी किसिंगर - आयरलौंड की राजधानी डबलिन के ट्रिनिटी कालेज में दिए भाषण से - 12 अक्तूबर 1999

वर्तमान भूमण्डलीकरण के तहत मनमर्जी से कर्मचारियों को काम पर रखने और निकालने का अधिकार देशी-विदेशी पूँजीपति को हासिल है । उनके अनुसार 'हायर-फायर' की आज़ादी मिलने पर ही मज़दूरों और कर्मचारियों को अनुशासित किया जा सकता है । फिर यूनियनों की ताकत को भी कम करना आवश्यक है । इससे श्रेमिकों के संघर्ष करने की ताकत कम हो जाएगी । आरक्षण को बन्द करवाने की बात भी चल रही है । सच तो यह है कि विकासशील देशों की सरकार को इन सारी शर्तों को मानना पड़ रहा है, नहीं तो विदेशी कंपनियाँ ऐसे देशों में अपनी पूँजी निवेश नहीं करेंगे ।

भूमण्डलीकरण की ताकतों ने पूरे सांस्कृतिक क्षेत्र को प्रदूषित किया है। आज कम्प्यूटरों का इस्तेमाल जन्मकुंडली बनाने में किया जाता है । लोगों के मन में यह धारणा जम गया है कि कम्प्यूटर से तैयार जन्मकुंडली दोषरहित होती है। कम्प्यूटर और इन्टरनेट के साथ केबल टेलीविज़न और उपग्रह के माध्यम से किसी भी देश के कार्यक्रम दुनिया भर में दिखाये जा सकते हैं । मगर सरकारें केबल टी.वी, इन्टरनेट और ई-मेल के ज़रिए अश्लीलता के प्रसार को रोकने में असफल रही हैं । दृश्य मीडिया मनोरंजन के माध्यम से विदेशी जीवन शैली और मूल्यों के बडे वाहक की भूमिका भी निभा रहे हैं । आज कल 'छोटे से कमर्शियल ब्रेक' के दौरान आप रेडियो या टी.वी. बन्द नहीं कर सकते बल्कि विज्ञापन को झेलते हुए मुख्य कार्यक्रम की प्रतीक्षा करने केलिए मज़बूर है । कोई मशहूर सिने तारिका कोई श्रृंगार प्रसाधन सामग्री उपयोग में लाती है तो आप क्यों पीछे रहेंगे। हर नवयुवती के मन में उसके समान बनने की ललक पैदा होगी । बिलगेटस को पुस्तक या पत्रिका पढ़ते दिखलाया जाता है तो उसका उद्देश्य हर

नवोदित उद्यमी को उनकी नकल के लिए प्रोत्साहित करना है। आज भारत में सी. एन.एन, एम.टी.वी और मल्टिप्लेक्स सिनेमाघर हर जगह छाते जा रहे है । और सबसे खतरनाक बात ये है कि निजी टी वी चैनलों और समाचार पत्रों से साहित्य के नाम और निशान मिट रहे हैं ।

अंग्रेज़ी ही साइबर स्पेस की मुख्य भाषा है इसलिए अंग्रेजी पढे-लिखे नौजवान अमेरिकी संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते, अमेरिकन संस्कृति और हमारी संस्कृति के मिलावट से एक उपसंस्कृति बन रही है । आज संस्कृति खरीद-बिक्री की चीज़ बन गई । बहुराष्ट्रीय मीड़िया कम्पनियाँ जिनके संचार नेटवर्क सारी दुनिया में फैले हैं, विश्व के हर कोण से स्थानीय संस्कृतिक संसाधनों को जुटाकर सांस्कृतिक मालों तथा मनोरंजन के साधनों के रूप में सजा-संवारकर बाज़ार में बिक्री के लिए रख रहे हैं । सांस्कृतिक मालों का बाज़ार बड़ा ही नहीं बल्कि निरन्तर विस्तारशील और मुनाफा दायक है । संचार के साधनों और फिल्मों, टी.वी. चैनलों, इन्टरनेट आदि पर नियन्त्रण कर अमेरिका ऑन लाइन-टाइम वार्नर जैसी कम्पनियाँ संस्कृति को मनचाही दिशा दे रही हैं । पिता दिवस, माता दिवस, प्रेमी / प्रेमिका दिवस के रूप में जैसे मालों की बिक्री को बढ़ाने के ज़रिए खोजे गये दिवस भी हमारी नई संस्कृति के हिस्से हैं ।

भूमण्डलीय संस्कृति के कारण मीड़िया के क्षेत्र में भी बहुत बदलाव आ गया है । अखबारों और पत्रिकाओं का प्रकाशन एक व्यवसाय मात्र बन गया है और ये व्यवसाय का लक्ष्य है मुनाफा कमाना । आज रेड़ियो, टेलीविज़न और

इन्टरनेट ने ऑडियो और दृश्य मीड़िया को प्रिन्ट मीड़िया के मुकाबले अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली बना दिया है । पहले मीड़िया का स्वामित्व राष्ट्रीय होता था किन्तु आज वह राष्ट्र की सीमाओं को तोड़ चुका है । मास मीड़िया पर थोपे गए नियन्त्रण को लगभग समाप्त कर दिया गया है ।

आज कल कम्प्यूटर से जुडे अपराधिक कृत्यों, नाभिकीय सामग्रियों की चोरी, कालेधन को सफेद करने की प्रक्रिया क्रेडिट कार्ड तथा सारवपत्रों से जुड़ी जालसाज़ी आदि बड़े पैमाने पर बढ गयी है । यानी भूमण्डलीकरण से जुडी सूचना प्रौद्योगिक क्रान्ति ने संगठित अपराध को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप दिया है । अनेक सक्षम युवक अपराध की दुनिया में इसलिए शरीक हैं कि अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें जीने का मौका नहीं मिलता। भूमण्डलीकरण के वर्तमान युग में जहाँ 20 प्रतिशत जनसंख्या की हालत में सुधार हो रहा है तो 80 प्रतिशत की हालत खराब हो रही है, इसलिए इनमें से कुछ लोग आत्महत्या करते हैं, आतंकवाद की ओर आकर्षिक हो जाते हैं, भाँति-भाँति गिरोह बनाते हैं, जो नशीले पदार्थों की तस्करी, काले धन को सफेद करने की प्रक्रिया, बैंक और क्रेडिट कार्ड की जालसाजी आदि में शरीक हैं । कोलंबियाई माफिया, रुसी माफिया के सहयोग से पूर्वी यूरोप में हेरोइन और कोकीन के बाज़ार बनाता है । अमेरिका में इन दोनों माफिया संगठनों की साठगांठ चले, इसके लिए वे न्यूजर्सी स्थित अमेरिकी माफिया को लाइसेंस फीस देते हैं ।”[1] अमेरिका के नेवाड़ा राज्य के रेगिस्तान में बसी ‘स्वप्न नगरी’ लासवेगस से सब परिचित हैं, यह शहर पूरी तरह माफिया के प्रभाव में है । उसका वर्तमान मेयर माफिया का वकील रहा है। अमेरिकी उपन्यासकार जेम्स मैकमानुस के अनुसार वहाँ दुनिया में मक्का के बाद

---

1. गिरीश मिश्र, ब्रजकुमार पाण्डेय़ - भूमण्डलीकरण मिथक और यतार्थ - पृ. सं. 85

सबसे अधिक 'तीर्थ यात्री' आते हैं, हवाई अड्डे पर उतरते ही तरह-तरह की घूतक्रीड़ा, भोजन और मनोरंजन के अनेकानेक साधन दिखते हैं ।"[1] आज हमारे देश में भी माफिया गैंग और नेताओं के बीच अनैतिक संबन्ध है । चुनावों में माफिया, धन और बल उपलब्ध कराते हैं और सत्ता में आने के बाद नेता लोग माफिया को देश लूटने की पूरी छूट देते हैं ।

इस भूमण्डलीकरण के दौर में कौन सुरक्षित है ? छोटे-छोटे दूकानदार तो सबसे ज़्यादा आज परेशान हैं । शहर में बडे-बडे सुपरमार्केट के खुल जाने से शहर के छोटे-छोटे दूकानदारों का भविष्य अन्धकारमय हो गया है । ग्राहक तो आज सूपर मार्केट की ओर भाग रहे हैं। वालमार्ट, जायन्ट, सियर्स आदि अनेक बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में कब्जा कर चुकी हैं । इन के सामने खड़ा रहना छोटे दूकानदारों की बस की बात नहीं है । वर्तमान भूमण्डलीकरण के पक्षधरों का मानना है कि कल्याणकारी राज्य के तहत धनी लोगों से गरीब लोगों और ज़रूरतमदों को जिन वित्तीय संसाधनों का हस्तांतरण (सब्सिड़ी, पेंशन, सहायता, अनुदान आदि के रूप में) किया जाता है उनके कारण आर्थिक कार्य निष्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इस दृष्टिकोण ने हमारे समाज में गरीबों की ज़िन्दगी और कठीन बना दिया है । पिछले कुछ वर्षों में हमने देखा है कि पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, डाक व्यवस्था, सड़क निर्माण, दूर संचार आदि से जुड़ी सेवाओं का निजीकरण हो रहा है । नए सरकारी अस्पताल नहीं खुल रहे हैं और सरकारी स्कूलों की हालत भी बहुत बुरी है । बूढे और सेवा निवृत्त लोगों की आय तेज़ी से घटी है । पूँजीपतियों के विहार व शोषण लिए सरकार ने खुली छूट दी है ।

---

1. गिरीश मिश्र, ब्रजकुमार पाण्डेय़ - भूमण्डलीकरण मिथक और यतार्थ - पृ. सं. 86

कोक-पेप्सी भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर को प्रभावशाली प्रतीक हैं। एक हाथ में कोक या पेप्सी की बोतल, दूसरे में मोबाईल फोन और मुंह में मैकडोनल्ड का बर्गर हो तो किसकी मजाल है कि आपको आधुनिक न कहे । आज बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ अखबारों, टेलिविज़न कार्यक्रमों और रेड़ियो के ज़रिए बच्चों और युवा वर्ग को कोक-पेप्सी की ओर आकर्षित कर रही हैं। कोक हो या पेप्सी उद्देश्य है अधिकतम मुनाफा, भले ही लोगों खासकर बच्चों और युवा वर्ग के स्वास्थ्य पर इसका कितना भी बुरा असर पड़े । दिखावे के लिए भले वे लाखों रुपए खेलकूद और सांस्कृतिक आयोजनों पर खर्च करें मगर उनका हमारे देश की संस्कृति के संरक्षण से कोई लेना-देना नहीं है ।

भूमण्डलीकरण का शेयरों के बाज़ार पर इस तरह धाक है कि आज आप घर बैठे दुनिया के किसी भी कोने में स्थित बाज़ार में कारोबार कर सकते है । क्योंकि हर समय कोई-न-कोई शेयर बाज़ार खुला रहता है । आदेश और पैसे इन्टरनेट के ज़रिए भेजे जा सकते है । यह काम मिनटों में नहीं, सेकेंडों में होता है । सच तो यह भी है कि अफवाह से भी बाज़ार में अस्थिरता पैदा होने में देर नहीं लगती । ऐसी अवसर पर अगर बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ अपने शेयर बेचकर अपने पैसे निकालने का निर्णय ले लेती हैं तो इसका भयंकर परिणाम हो सकता है ।

सूचना प्रौद्योगिकी और संचार माध्यमों में अभूतपूर्व परिवर्तनों ने पत्र-लेखन को काफी कुछ महत्वहीन बना दिया है । अब लोगों के बीच टेलीफोन, फैक्स, ईमेल आदि के माध्यम से संदेशों का विनिमय होने लगा है । इसके साथ

डाकसेवा के निजीकरण तेज़ी से हो रहा है । निजी कूरियर सेवा को मान्यता मिल रही है और उनकी सेवाओं के सस्ते और भरोसेमंद होने से लोग कुरियर सेवा की ओर आकृष्ट हैं । कारोबारी लोग विशेष रूप से निजी कुरियर सेवा को ही अपनाने लगे हैं ।

संक्षेप में सरकारी गोदामों में पाँच करोड़ टन अनाज जमा है फिर भी लाखों लोग भूखे है । राजस्थान, कालाहांडी और उड़ीसा में पानी की भी किल्लत है । वेतन कम है । छोटे किसान अनाज उत्पादन कर रहे हैं, लेकिन विदेशी कृषि उत्पाद बहु र्राष्ट्रीय कंपनियों के कारण उनके जीवन भी मुशकिल में है । सरकार ने अनाज का समर्थन-मूल्य भी कम रखा है । न खाना है, न पीने या सिंचाई के लिए पानी है, शिक्षा है भी तो बहुत कम। यह है भारतीय सच्चाई, यही भूमण्डलीकरण की देन है ।

फिर भी आज दुनिया में शोर है - विश्व बाज़ार में उतरो, होड़ में कूदो, अपने बलबूते पर अपनी जगह बनाओ ।

उदारीकरण व निजीकरण पर अधिष्ठित नई आर्थिक नीति

50 और 60 के दशक की पुरानी अर्थनीति जिसे हम मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं, समाजवाद और पूँजीवाद, दोनों आर्थिक प्रणालियों के सर्वश्रेष्ठ का संतुलित मिश्रण है । सच यह है कि यह दोनों ही प्रणालियों की बुराइयों का निकृष्ट संगम है ।"[1] राजीव गाँधी ने 1984 में सत्ता संभालते ही मुंबई में यह बयान दिया था कि सरकार गरीबों के लिए जो एक रुपया खर्च करती है, उसमें से 15 पैसा ही उन तक पहूँच पाता है । शेष बिचौलियों द्वारा हड़प लिया जाता

1. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - पृ. सं. 11

है । यह वक्तव्य आज भी भ्रष्टाचार के संदर्भ में सबसे ज़्यादा उद्धृत किया जाता है । 1991 तक भारत का विदेशी मुद्रा संकट अत्यंत गंभीर हो चुका था । अप्रैल 1991 में पहली बार 20 करोड़ डॉलर का ऋण लेने के लिए यूनियन बैंक ऑफ स्विट्जरलैंड को 20 टन सोना बेचा गया था । लेकिन 1989 तक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान भारत को ठोस आर्थिक प्रगति का प्रमाण पत्र दे रहे थे । लंदन के फाइनांशियला टाइम्स ने 11 अक्तूबर 1989 को अपने दिल्ली संवाददाता की एक गुलाबी रिपोर्ट प्रकाशित की । शीर्षक था "आलोचकों को निरुत्तर करने के लिए तैयार'। संवाददाता ने घोषित किया कि अर्थ व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन घटित हो रहे हैं, जिनका संकेत यह है कि भारत जल्द ही एशिया के तेजी से विकसित हो रहे नव-उद्योगीकृत देशों में स्थान शरीक करने जा रहा है । लेख ने एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के एक वरिष्ठ अधिकारी का यह बयान भी उद्धृत किया कि "भारत को टिकाऊ आधार पर 8-10 प्रतिशत वृद्धि दर हासिल करने में कठिनाई नहीं होगी"[1] विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ भी इस बात से सहमत थीं । लेकिन 1991 में सब कुछ उलटा हो गया था। डॉ. मनमोहन सिंह ने वित्तमंत्री बजट पेश करते हुए कहा कि 'स्वतंत्र भारत के इतिहास में इस तरह का अनुभव इसके पहले हमे कभी नहीं हुआ था ।

श्री राव की सरकार अल्पमत सरकार थी । फिर भी उदारीकरण पर अधिष्ठित नई अर्थनीति की पेशकश उसी सरकार ने की थी । 1991 के आम चुनाव में 53 प्रतिशत मतदान हुआ था, जिसमें से कांग्रेस को सिर्फ 36.5 प्रतिशत वोट मिले थे, यानी रद्द हो गए वोटों को छोड़ दिया जाए, तो कांग्रेस को लगभग 19 प्रतिशत वोट मिले । 20 प्रतिशत से भी कम मतदाताओं का

---

1. संपादक विमल जालान -द इंडियन इकॉनॉमी, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली - 1993, परिचय में उद्धृत

प्रतिनिधित्व करनेवाली सरकार को क्या ऐसी अर्थनीति बनाने का नैतिक अधिकार था ? लोकतंत्र में तो ऐसा ही होता है । अल्पमत होने पर भी सरकारें बनती हैं ।

उदारीकरण का निर्णय किस स्तर पर और कब लिया गया यह अभी तक एक रहस्य है । योजना आयोग ने इस नीति का प्रस्ताव नहीं किया था । कांग्रेस पार्टी के भीतर इस बारे में कभी खुल कर चर्चा नहीं हुई थी । संसद में न इस पर कोई बहस हुई और न कोई प्रस्ताव पारित किया गया । सच पूछा जाए तो सरकार ने नई अर्थनीति की कोई रूपरेखा व्यवस्थित रूप से पेश ही नहीं की थी और न ही कोई तर्किक बहस की गयी थी ।

नरसिंह राव के शासन में उदारीकरण की घोषित शुरुआत के पहले ही राजीव गाँधी के प्रधान मंत्रित्व के दौरान उदारीकरण का एक दौर चल चुका था। वस्तुतः उसके भी पहले, इंदिरा गाँधी ने जब 1980 में सत्ता संभाली थीं, उन्होंने उदारीकरण की दिशा में प्रारंभिक कदम रखे थे । अतुल कोहली ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है।”[1] 1981-82 में इस्पात और सीमेंट की कीमतों पर से नियन्त्रण हटा लिया गया, विनिर्मित वस्तुओं के आयात पर लगे हुए अंकुश शिथिल किए गए तथा राष्ट्रीय फर्मों द्वारा नए व्यवसाय शुरू करने एवं मौजूदा व्यवसाय का विस्तार करने पर नियन्त्रण कम कर दिया गया । इंदिरा युग के उदारीकरण की पुष्टि में वामपंथी साप्ताहिक ‘इकॉनॉमिक एंट पॉलिटिकल विकली (1 दिसंबर 1984) ने लिखा है कि ‘औद्योगिक लाइसेंसिंग का उदारीकरण और आयात शुल्कों में कटौती तथा विदेशी तकनीकी साझेदारी को प्रोत्साहन सरकार की औद्योगिक नीतियों के केन्द्रीय पहलू हो गए हैं ”[2]

1. अतुल कोहली -डेमोक्रेसी ऐंड डिस्कटेट, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस प्रथम भारतीय संस्करण - 1992
2. अतुल कोहली -डेमोक्रेसी ऐंड डिस्कटेट, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस प्रथम भारतीय संस्करण - 310. 311

भारत में उदारीकरण की अर्थनीति की पेशकश का वास्तविक श्रेय राजीव गाँधी को मिलना चाहिए । राजीव गाँधी स्वतंत्र भारत की उस पीढ़ी का प्रतिनिधि नेता है, जो किसी भी तरह के आदर्शवादी या नैतिक दबाव से मुक्त है। इस नयी पीढ़ी तो भारत को आधुनिक और समृद्ध देखना चाहती है । भारत को सिंगपूर जैसा बनाना चाहती है । इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि राजीव गाँधी पेशेबर पायलट रह चुके थे । इनकी मंत्री मंडली को तत्कालीन प्रेस 'कंप्यूटर ब्वायेज़' कहते थे । सरकार के आर्थिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए राजीव गाँधी ने कहा था कि नियम शैथिल्य आयात में उदारीकरण तथा विदेशी टेक्नोलॉजी तक सुगमतर पहूँच के न्यायसंगत सम्मिश्रण पर आधारित होगा । इस नये आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भारत आगमन पर तथा भारत में पहले से मौजूदा वहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यवसायिक विस्तार पर प्रतिबंध शिथिल कर दिए गए । भारतीय कंपनियाँ न केवल अपनी क्षमता का विस्तार करने के लिए, बल्कि नए क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र थीं । यों विदेशी कंपनियों से सहयोग बढ़ने लगा । आयात पर प्रतिबंध शिथिल कर दिए गए । उदारीकरण की दिशा में राजीव गाँधी के समय का सबसे ठोस और महत्वपूर्ण योगदान 'नई राजकोषीय नीति', माना जाता है जिसकी घोषणा 1985 में की गई थी । यह घोषणा तत्कालीन वित्त मंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने की थी। नई राजकोषीय नीति का लक्ष्य था आयात कर में कटौती करना, आयात कोटे समाप्त करना तथा कर आरोपण का स्तर कम करते हुए एक दीर्घकालीन कर नीति बनाना ।"[1] लेकिन राजीव गाँधी ने जिस सांस्कृतिक धारा को प्रोत्साहित किया, वह पश्चिमीकरण की मॉडल संस्कृति थी।

---

1. राजकिशोर -उदारीकरण की राजनीति - पृ. सं. 34

कई अर्थशास्त्रियों ने इस बात पर खेद व्यक्त किया है कि राजीव गाँधी अपनी उदारीकरण प्रवृत्ति को दूर तक नहीं ले जा सका ; क्योंकि उनके पास कोई खण्डित कार्यक्रम नहीं था। उसके पास कोई सुचिंतित आर्थिक दर्शन भी नहीं था । उदारीकरण उनके लिए एक प्रकार की पूर्व प्रतिज्ञा थी, जिसके द्वारा देश की एक छोटी-सी आबादी का पर्याप्त आधुनिकीकरण हो गया था ।

उदारीकरण में आपको सचमुच उदारता के तत्व नज़र आएंगे । अगर हम एक कारखाना खोलना चाहता है तो उससे पहले सरकार से अनुमति लेनी होगी या निजी क्षेत्र में किन-किन चीज़ों उत्पादन होना चाहिए, उन सारे आदेशों का पालन करना पडेगा । उदारीकरण की प्रक्रिया में इन अंकुशों को क्रमशः हटा लिया जाता है । कुछ लोग इसे 'आर्थिक सुधार' कहते हैं। भारत में इसे हम 'नई अर्थनीति कहते हैं, क्योंकि इसके पहले की अर्थनीति में इतनी 'उदारता' नहीं थी।"[1]

पूँजीवाद के पक्षधरों का प्रिय मुहावरा है बाज़ार आधारित अर्थ व्यवस्था या स्वतंत्र अर्थव्यवस्था । यहाँ स्वतंत्रता का अर्थ बाज़ार की स्वतंत्रता है । बाज़ार पर अंकुश जितने कम होंगें, आर्थिक निर्णय उतने ही बेहतर होंगे, क्योंकि स्वतंत्रता हर व्यक्ति को यह अवसर देती है कि वह अपने सवौत्तम हित में फैसला कर सके । स्पष्टतः यह पूंजीवादी स्वतंत्रता उदारीकरण नीति का ही हिस्सा है।

उदारीकरण विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थायी नीति है। यह अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाएँ बिलकुल लोकतांत्रिक नहीं हैं । क्योंकि इनके प्रत्येक सदस्य की वोट क्षमता बराबर नहीं है । जिस तरह किसी संयुक्त संध

1. राजकिशोर -उदारीकरण की राजनीति - उदारीकरण क्या है ? पृ. सं. 38

कंपनी के पास जितने शेयर होते हैं उसे उतनी ज्यादा निर्णय शक्ति हासिल होती है । उसी तरह विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष भी पूँजी की इस रणनीति के बल पर ही चलती है ।

उदारीकरण के दौर में भारतीय पूँजीवादी ताकतों को समझ में आयी कि विश्व बाज़ार के सहयोग के बगैर वे अपनी गतिविधियों का विस्तार नहीं कर सकती। विदेशी पूँजी का खुला निमंत्रण इसका अपरिहार्य नतीजा है । बाज़ार के दरवाज़े सबके लिए खुले रहते हैं। चाहे वह मिल मालिक हो या उसका चपरासी, दोनों समान अधिकार में उसमें दाखिल हो सकते हैं । यह बाज़ार का स्वभाव है। बाज़ार तानाशाह तब बनता है, जब वह किसी समाज से अपने आर्थिक विकल्प तय करने का अधिकार छीन लेता है । विश्व बाज़ार पहले भी था। तब दुनिया भर के व्यापारी अपने-अपने देश का सर्वोत्कृष्ट उत्पादन लेकर एक-दूसरे से विनिमय किया करते थे । इससे दोनों लाभान्वित होते थे । आज का विश्व बाज़ार ऐसा नहीं है । वह शासक और शासित पैदा करता है । बाज़ार अदृश्य ढंग से काम करता है कि उसके तिलिस्म को समझ पाना भी कठिन होता है । उसका ट्रेजिक पहलू यह है कि इस तिलिस्म में प्रवेश करना जितना आसान होता है, उससे निकलना उतना ही मुश्किल।"[1]

यह संचार क्रान्ति भी एक खूबसूरत धोखा है । मीडिया जो मनोरंजन की दुनिया पेश कर रहा है, वह एक सधा हुआ व्यावसायिक तंत्र है । यदि मीडिया का लक्ष्य सिर्फ सूचना क्रान्ति है, तो सबसे पहले अँधेरे महादेश अफ्रिका की तरफ ध्यान जाता जहाँ आधुनिक सूचनाओं की सबसे सख्त ज़रूरत है । लेकिन

1. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - बाज़ार की तानाशाही - पृ. सं. 58

आज भी अमीर लोगों की सूचना क्रान्ति वहाँ बाइबिल ही भेजी जाती है, आधुनिक जीवन विन्यास की खबरें नहीं ।

अमीर देशों के पूँजीपति विश्ववादी होते हुए भी सबसे पहले अपने देश के प्रति वफादार होता है । वह दूसरे देशों की संपत्ति बटोर कर अपने देश को समृद्ध बनाता है । गरीब देश के पूँजीपति इस बात से बेफिक्र है कि अपने देश के करोड़ों गरीब लोगों की क्या हालत है? मसलन विकसित देश क्षमिकों के आवागमन पर आज कठोर प्रतिबंध लगा रहे हैं । 60 और 70 के दशकों में भारतीय डॉक्टरों और इंजीनियरों को अमेरिका आकर बसने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिया जाता था, क्योंकि अमेरिका के पास प्रशिक्षित पेशेवर लोगों की कमी थी । लेकिन आज आवश्यकता की पूर्ति हो गई, तो उन्होंने कड़े आव्रजन कानून लागू कर दिए है ।

उदारीकरण की वजह किसानों की स्थिति बदतर बनती जा रही है । किसान बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अदृश्य रूप से गुलाम बन रहे हैं । पेटेंट नियमों के कारण कृषि व्यवस्था के बिगड जाने की संभावना है । बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों के कब्जे में आकर सरकार जब सब्सिड़ियों पर पाबंदी लगाती है तो गरीब ही इससे परेशान होते हैं । उदारीकरण नीतियों का यह खतरा है कि निजीकरण की प्रवृत्ति बढेगी और शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक मूल्यों की बढोत्तरी होगी । जहां तक वैज्ञानिक शोध संस्थानों का सवाल है, शोध के लिए पैसा जिन निगमों से आएगा, वे अपने व्यवसायिक उद्देश्यों के अनुसार ही शोध के विषय निर्धारित करेंगे । मतलब स्वतंत्र शोध-योजनाएँ कुंद पड़ जाएंगी । स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी

उदारीकरण नीतियों के कारण कई प्रकाऱ की समस्याएँ उभर आयेंगी। टेक्नोलॉजी के अनुप्रयोग से चिकित्सा क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन तो आया है। लेकिन चिकित्सा इतनी महँगी बन गई है कि गरीब लोग इस खर्च का वहन नहीं कर पा रहे हैं । सरकारी स्वास्थ्य सेवाएँ सिकुड़ रही हैं या आबादी में वृद्धि के अनुपात में बढ़ नहीं रही है, वहाँ निजी चिकत्सालयों तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं । आज गाँव के लोगों को वापस नीम-हकीमों के पास लौट जाना पड़ रहा है । ठीक ही कहा है कि एक गरीब देश में उदारीकरण की अर्थनीति जीने को जितना कठिन बनाती है, मरने को उतना ही आसान ।

सांप्रदायिक फासीवाद और साम्राज्यवाद का गठबन्धन

बीसवीं शताब्दी ने अनेक प्रकार की तानाशाहियों का साक्षात्कार किया है जिनमें प्रमुख हैं नस्ल और नस्ल साम्राज्यवाद की तानाशाही । इन के बीच सचमुच मिलीभगत है । नस्ल की तानाशाही का सबसे खूँखार प्रतीक हिटलर है। जर्मनी ने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के उपनिवेशवादी अभियान में हिस्सा नहीं लिया था । जब वह औद्योगिक शक्ति बना था, तब तक दुनिया का औपनिवेशिक विभाजन हो चुका था । अतः जर्मनी ने अपने भीतर और अपने आसपास ही कब्र खोदना शुरू किया । नस्लवाद इसका वैचारिक आधार बना। यहुदियों को इसका भयावह परिणाम भुगतना पड़ा ।

उपनिवेशवाद में भी एक प्रकार नस्ल की तानाशाही का प्रभाव हम देख सकते हैं । गोरे का प्रमुत्व । हिटलर के बाद नस्ल तानाशाही का सबसे बड़ा ऐतिहासिक ज्वार तो खतम हुआ, लेकिन नस्ल के आधार पर भेद भाव जारी रहा। बाद में अफ्रीका के कई देशों में नस्ल की तानाशाही का दबदबा ज़ारी

रहा। दक्षिण आफ्रिका इसका बुलन्द सबूत है । अमेरिका में नीग्रो लोगों के साथ गोरों का व्यवहार नस्लवाद का ही हिस्सा है । इससे पता चलता है कि साम्राज्यवादी दिमाग नस्लवाद के खिलाफ तो नज़र आता है, लेकिन हृदय उसके साथ है । एशिया में भी इसकी जड़ दिखाई पड़ती है । श्रीलंका का तमिल-सिंहल संघर्ष इसका उत्तम उदाहरण है । भारत में हिन्दुत्व का ताजा उभार फासीवाद की और बढ़ रहा है । इसका नतीजा बाबरी मस्जिद के ध्वंस में सामने आया था ।

फासीवाद के मूल में नस्लवाद ही कार्यरत है । वैदिक युग के आर्य भी नस्लवादी ही थे, क्योंकि वे अपनी सभ्यता को स्थापित करने के लिए अन्य किसी भी प्रकार की सभ्यताओं को नष्ट करने के लिए कृतसंकल्प थे । यहीं से भारतीय इतिहास में फासीवाद का सफर शुरु होता है । फ्रान्सीसी समाजवादी इतिहासकार दानियाल गुएरिन ने लिखा था : 'अगर हमने समाजवाद की घड़ी को निकल जाने दिया, तो हमारी सज़ा होगी - फासीवाद"[1]। फासीवादी प्रवृत्ति पूँजीवाद में ही अन्तर्निहित है और आज कल यह प्रवृत्ति खासतौर पर शक्तिशाली बन्ती जा रही है और जनतांत्रिक शक्तियाँ कमज़ोर हो गई है और वे पीछे हटती जा रही है । इस सदी के बीस और तीस के दशकों में , फासीवाद को सबसे बड़ी सफलता ठीक उन यूरोपीय देशों - जर्मनी, इटली तथा स्पेन - में मिली थी जहाँ मज़दूर वर्ग का आन्दोलन सर्वाधिक शक्तिशाली था और जहाँ इस आन्दोलन को बेहद निर्ममता से कुचला गया था । क्रूर और बर्बर शासकों का अनुभव तो मानव जाति को था, किन्तु फासीवाद एक नयी चीज़ थी। हिटलर ने फासीवाद का क्रूर चेहरा हमारे सामने प्रस्तुत किया । मुसोलिनी ने भी इटली में फासीवादी प्रवृत्ति को एक नया रुप दिया ।

---

1. मालिनी भट्टाचार्य (सं) - अयोध्या कुछ सवाल - पृ सं. 102

जनता की वास्तविक तकलीफों और आशंकाओं का दुरुपयोग फासीवाद की एक सामान्य विशेषता है । पूरब हो या पश्चिम, समूचे यूरोप में और भारत में भी फासीवादी मुख्यतः अंधराष्ट्रवाद के रूप में सामने आ रहा है । यह एक जानी-मानी सच्चाई है कि फासीवादी गोलबंदियाँ गरीब तबकों और मध्यवर्ग की दरिद्रता का फायदा उठाती हैं और उन ऊर्जाओं को नस्लवादी एवं धार्मिक घृणा के रास्ते पर डालती हैं ।

भारत में भारतीय जनता पार्टी इस रास्ते पर आगे बढ़ रही है । वह मुख्यतः मुसलमानों की और सामान्यतः उन सभी समुदायों की दुश्मन है जिन्हें वह हिन्दु विरोधी मानती है । 6 दिसंबर 1992 का बाबरी मस्जिद विध्वंस इसका शिखर प्रमाण है । उसके बाद पत्रकारों, नाट्यकर्मियों और संस्कृतिकर्मियों पर उसका लगातार हमला उनके फासीवादी चरित्र का उत्तम सबूत है । भारतीय फासीवाद को सिर्फ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उद्‌भव वर्ष (1925) तक सीमित करके देखना उचित नहीं है । इसकी अनेक प्रतिध्वनियाँ इस शताब्दी की शुरुआत से ही सुनी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन में और बंकिम चन्द्र चट्‌टोपाध्याय की अनेक रचनाओं में इसकी गूँज है । सावरकार ने हिन्दु राष्ट्र को अपने ढंग से परिभाषित किया । वह एक प्रचण्ड राष्ट्रवादी थे। इसी तरह गाँधी की हत्या भारतीय फासीवाद की एक केन्द्रीय प्रतीक है । कायदे से उस समय के हिन्दुवादियों को मुहम्मंद अली जिन्ना से ज़्यादा नाराज़ होना चाहिए था, क्योंकि जिन्ना ही के कारण भारत के विभाजन को मंज़ूरी मिली थी और मुस्लिम-बहुल राष्ट्र पाकिस्तान का आर्विभाव हुआ था। लेकिन जिन्ना पर एक भी हमला नहीं हुआ - हमला हुआ गाँधीजी पर जिन्हें अपनी सुरक्षा की कोई चिन्ता नहीं थी ।

आज फासीवाद और साम्राज्यवाद के सशक्त गठबन्धन की परिणति है आतंकवाद । आज काश्मीर में, युवा पीढ़ी को नस्ल और धर्म के नाम पर आतंकवाद के ओर ले जा रहे हैं । शिक्षा के अभाव और बेरोज़गारी युवकों की अहं समस्या है जिसका फायदा उठाना साम्राज्यवादी शक्तियाँ अच्छी तरह जानती हैं । यों यह बात स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद, सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद का गहरा सरोकार है जिससे साम्राज्यवादी शक्तियों का ही फायदा हो रहा है । उनका आर्थिक शोषणा मज़बूत हो रहा है और हथियार का बाज़ार गरमागरम है ।

बाबरी मस्जिद के ध्वस के बाद प्रखर बनी साप्रदायिकता

रामजन्मभूमि आन्दोलन का और इसके साथ एल. के आडवाणी की जो रथयात्रा चली उसका उद्देश्य केवल यही था कि देश के मुसलमानों को पूरी तरह अपराधी घोषित करें और उनके विरुद्ध हिन्दुओं को संघटित करें । आडवाणी जी की रथ यात्रा 1990 सितंबर25 को गुजरात के सोमनाथ से प्रारंभ हुई और अक्तूबर 23 के दिन बिहार के समस्तिपुर में समाप्त हुई । उनका यह 'रथ' वास्तव में अलंकृत एक टोयोटा वैन था । वह जिन राज्यों से होकर गुजरा, वहाँ मुसलमानों के प्रति भारी हिंसाकांड हुए, जितने लोगों की बलि हुई उनकी संख्या एक अंदाज़ के अनुसार 3000 से अधिक थी । आडवाणी जी की रथयात्रा यद्यपि अयोध्या पहूँचने में असफल हुई तथापि प्रशासक कांग्रेस पक्ष की मौनसम्मति और परोक्ष सहकार से अपने उद्देश्य की पूर्ति की । 1992 दिसंबर 6 के दिन अयोध्या में जमा हुए 2 लाख से बढ़कर करसेवकों और उनके लीडरों के सम्मुख बाबरी मसजिद को ध्वस्त किया गया । भाजपा ने लोगों के मन में साप्रदायिकता के बीज बोया, और कांग्रेस ने उसको पानी देकर पाला । राजीव

गाँधी और पी.बी. नरसिंह राव के नेतृत्व की केन्द्र सरकारों ने या उत्तर प्रदेश के कांग्रेजी मुख्यमंत्री वीरभद्र सिंह और तत्पश्चात् मुख्यमंत्री बने भाजपा के कल्याण सिंह आदि इसके खिलाफ सशाक्त कदम नहीं उठा पाये । एक रिपोर्ट के अनुसार दिसंबर 6 के दिन जब बाबरी मसजिद के गुंबज धाराशायी हो रहे थे तब दिल्ली में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहराव भोजन समाप्त कर दोपहर की नींद ले रहे थे "[1]

अयोध्या में दिसंबर 6 को लाखों करसेवक एकत्रित थे । भाजपा के सभी प्रमुख नेता भी वहाँ मौजूद थे । विश्व हिन्दु परिषद के स्वामीजी लोग तथा अन्य पदाधिकारी, साधु संत तथा आर.एस.एस के बहुत सारे लोग वहाँ उपस्थित थे । मस्जिद को लाखों लोगों के सामने तोड़ा गया और सबसे हास्यास्पद बात यह है कि आज भी इस बात पर छान-बीन हो रही है कि उस घटना में कौन-कौन भागी थे और किन लोगों के आदेश से यह घटना घटी । संघ परिवार के इस विध्वंसक कृत्य की आगे देश को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी । अयोध्या के मुसलमानों को सरकार, कानून, पुलिस आदि पर पहले से ही विश्वास नहीं था, लेकिन एक साथ ज़िन्दगी की मुसीबतों को झेलनेवाले हिन्दुओं पर उनका पूरा विश्वास था । दिसंबर 6 का वह भी नष्ट हो गया । अयोध्या के मुसलमानों ने उस दिन अपना सब कुछ खो दिया। अयोध्या की बिगडती हुई परिस्थिति से जो लोग डर गये उनमें से अधिकांश मुसलमान शहर छोड़ गये । बूढे, रोगी, बच्चे और कुछ जवान लोग अनिवार्य कारणों से शहर में रूके । करसेवकों ने अयोध्या के मुसलमानों के घर, दूकान आदि को लूटकर उसमें आग लगा दी । साथ में 13 मुसलमान पुरुषों को जला दिया । जब ये घटनाएँ हो रही थीं, पुलिसवाले चुप नहीं बैठे थे, वे भी कारसेवकों से जा मिले । इन खून खराबों और लूट के साथ करसेवकों

1. एस.आर भट, जी राजशेखर के फणिराज - सांप्रदायिकता के भयानक चेहरे - पृ. सं. 70

ने 21 मसजिदों, 10 मज़ार (सूफी संतों के समाधि स्थान) 2 ईदगाह और 2 मदरसों को भी तोड़ डाला ।"[1]

मशहूर समाज शास्त्री आशीष नदी ने अयोध्या और उसके आसपास के गाँवों में घूम घूमकर विषय संग्रह करके 'क्रियेटिंग ए नैशनालिटी' नामक एक रपट तैयार की, जिसमें यह बताया गया है कि उस दिन अयोध्या में 2 लाख आदमी थे, पर सब के सब संघपरिवार के सदस्य नहीं थे । उन में ऐसे सीधे साधे लोग भी थे जो संघपरिवार के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थे । बस इतना जानते थे कि मसजिद ने हिन्दुओं के स्वाभिमान को ललकारा है । कुछ लोगों का विश्वास था कि यहाँ बाबरी मसजिद थी वहां पहले राममंदिर था और ऐसे कुछ लोग भी थे जो सचमुच यह समझते थे कि वह स्थान साक्षात् श्रीरामचन्द्र का जन्मस्थान है । जटाधारी सन्यासियों के साथ साथ वहाँ जीन्स पहने हुए युवक भी थे । उनमें कई तो बेरोज़गार थे, कुछ तो भटके हुए आदर्शवादी थे, और कुछ उत्तेजित लोग भी थे जो सारे संसार को केसर रंग में रंगना चाहते थे । सच तो यह है कि साप्रदायिकता सशक्त एवं विशाल आयाम पा चुकी थी ।

गोध्रा कांड और गुजरात का नरसंहार

2002 फरवरी 27 की सूबह करीब आठ बजे लखनऊ से अहमदाबाद जानेवाली साबरमती एक्सप्रेस रेलगाड़ी ग्रोधा स्टेशन पर 25 मिनट ठहर कर आगे बढ़ी । इतने में किसी के अलारम चैन के खींचने से गाड़ी ग्रोधा स्टेशन से ज़रा आगे के सिगन्ल फालिया में खड़ी हो गई । उस जगह में अधिकतर मुसलमान बसे हुए थे । वहाँ लोग ज़मा होकर रेलगाड़ी पर पत्थर फेंकने लगे ।

1. एस. आर भट, जी. राजशेखर, के. फणिराज - सांप्रदायिकता के भयानक चेहरे - पृ. 72

अचानक रेलगाडी की 5-6 बोगियों में आग लग गई । बोगी के 58 यात्री जलकर राख हो गये । उनमें 26 महिलाएँ और 12 बच्चे थे । सफर करनेवालों में, अयोध्या में विश्व हिन्दु परिषद के एक कार्यक्रम में, भाग लेकर अपने गाँव लौटने वाले गुजरात के रामसेवक भी थे । विश्व हिन्दु परिषद ने यह घोषित किया कि ये अयोध्या में राममंदिर के निर्माण संबन्धी योजना कार्यक्रम में भागीदार रामसेवक हैं । और भाजपा नेताओं ने अपने आप यह निष्कर्ष कर लिया कि गोध्रा घटना के जिम्मेदार मुसलमान ही हैं ।

इस घटना के बारे में उस समय की गुजरात मुख्य मंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि मैं जनता को बता देना चाहता हूँ कि गुजारत ऐसी घटनाओं को बर्दाशत नहीं करेगा । मुजरिम अपने पापों की पूरी सजा पाएँगे । न केवल यही बल्कि हम ऐसा उदाहरण बनाएँगे कि सपने में भी कोई ऐसे अपराध करने की नहीं सोचेगे ।"[1].... "राज्य सरकार ने सामूहिक हिंसा की इस भयानक घटना को गंभीरता से लेते हुए कुछ ऐसे कड़े और प्रतीकात्मक कदम उठाने का निर्णय किया है, और ऐसा कठोर ढंड देने जा रही है कि फिर ऐसा अपराध भविष्य में कोई न कर पाये।"[2] इसके साथ हिन्दुत्व की प्रयोगशाला के रूप में गुजराज जल उठी ।

सरकार और पुलिस की मदद से एक भयावह नरसंहार की शुरुआत की गई । गूंडागर्दी की खुली छूट मिली । मतदाता सूची, हथियार, गैस सिलिंडर और बाहन आश्चर्यजनक तरीके से जुटा लिये गए । राज्य सरकार ने सेना बुलाने के निर्णय को 28 फरवरी की शाम तक टाले रखा । हालाँकि सेना अहमदाबाद में

---

1. अहमदाबाद दूरदर्शन से (गुजराती में) प्रसारित, 28 फरवरी 2002, एडीटर्स गिल्ड रिपोर्ट में प्रकाशित
2. गुजरात सरकार के सूचना निदेशालय की प्रेस विज्ञति - 28 फरवरी 2002, एडीटर्स गिल्ड रिपोर्ट में प्रकाशित पृ. सं. 43

मार्च को सुबह में आ गई थी, लेकिन स्थानीय प्रशासन से सहयोग न मिलने के कारण 3 मार्च तक रूकना पड़ा । तब तक 600 मुसलमाल मारे जा चुके थे, दो लाख से अधिक लोग बेघर हो गए थे, उनके घर जलाए गए और लूटे जा चुके थे । मुसलमानों की कई हज़ार करोड़ की संपत्ति बर्बाद हो चुकी थी । गोध्रा घटना के बाद, गुजरात बंद के दिन, अहमदाबाद के नरोद पाटिया में कौसरबानू नामक एक मुसलमान महिला के पेट को चीर कर, भ्रूण में स्थित बच्चे को निकालकर बाहर फेंक दिया गया था । अभागे मुसलमानों के शरीर पर ही नहीं, उनकी यादगारों पर भी आक्रमण हुआ । मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी और भाजपा के नेताओं ने यह सफाई दी कि यह हिंसाकांड गोध्रा घटना के प्रति लोगों के आक्रोश के कारण स्वयं प्रेरित प्रतिक्रिया है । लेकिन धर्म की राजनीति के पीछे छिपी सच्चाई से सभीअवगत ही है। अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमले के बाद नरेन्द्र मोदी ने एक टेलीविषन वार्ता में ऐलान किया था, "हर मुसलमान आतंकी नहीं होता, पर हर आतंकी घटना में मुसलमान शरीक होता है।"[1] जनता के मन में नफरत पैदा करना और उससे फायदा उठाकर अधिकार हासिल कर टिके रहना ही इन सारी बातों के पीछे का रास है ।

दरअसल ऐसा लगता है कि गोध्रा कांड एकाएक नहीं हुआ था । वह सिलसिलेवार घटनाओं की कड़ी था । "गोध्रा कांड के पहले अगस्त 200 में विहिप ने गुजरात के कई शहरों में मुसलमानों के विरुद्ध आवाज़ उठायी । पहल गाँव में अगस्त 1 को हिन्दू तीर्थयात्रियों पर आतंकी हमले के बाद प्रवीण तोगड़िया ने गुजरात बन्द का आह्वान किया था, भाजपा सरकार ने भी इसका समर्थन किया । शहर में मुसलमानों के व्यवसायों को आग लगायी गयी .....

---

1. द बिग फाइड - इस इस्लाम द कटिंग एज ऑफ टेररिज्म ? (चर्चा) - स्टार न्यूज चैनल - 14 सितंबर 2001

अहमदाबाद के हज़रत सैयद मासूम अली दरगाह जैसे धर्मिक स्थलों को भी जलाया गया.... मुसलमानों की दूकानों को जलाया गया..... डेढ़ करोड़ रुपयों के क्षति हुई।"[1] ये तो सिर्फ शुरुवात थी । गोध्रा कांड के बाद का नरसंहार दरअसल चरम स्थिति थी ।

अधिकारी वर्ग एवं पुलिस ने चुप्पी साध ली थी। साबरमती एक्सप्रेस की उस दिन के एक यात्री अवकाश प्राप्त बैंक कर्मचारी देबाशीष भट्टाचार्य ने टाइम्स ऑफ इंडिया को बताया कि ट्रेन पर पथराव लखनऊ के पास रुदौली स्टेशन से ही शुरु हो गया था।"[2] इसके बावजूद रेलवे पुलिस की आँख नहीं खुली कि आगे के स्टेशनों को खतरे से आगाह कर दें । बाद में गुजरात सरकार ने हिंसा के लिए मुसलमानों को दोषी ठहराई हिन्दुस्तान टाइम्स को दिए गए साक्षात्कार में राज्य के गृह मंत्री जडफिया ने कहा : "मार्च तक जो कुछ भी हुआ वह गोध्रा की प्रतिक्रिया थी । इसके बाद हुए दंगे मुसलमानों द्वारा शुरू किए गए । सिर्फ यही नहीं, उन्होंने दंगों की योजना भी बनाई।"[3] हिन्दुओं के पक्ष में भी नुकसान बहुत हुई। "अहमदाबाद में 5 मार्च को रात बारह बजे तक 249 लारों बरामद हो चुकी थी । उनमें से 30 लाशें हिन्दुओं की थी और छः लाशें की पहचान नहीं हो सकी। मारे गए हिन्दुओं में से 13 लोगों की मौत पुलिस की गोली से हुई और दूसरे बहुत से हिन्दुओं की मौत मुस्लिम प्रतिष्ठानों पर उनके हमलों के दौरान हुई । मिसाल के तौर पर, छः हिन्दु कर्मचारियों की लाशें हंस इन और टेस्टी होटल से बरामद हुई । हिन्दू-बहुल इलाकों में मुस्लिम गुटों ने लगभग नहीं के बराबर हमले किए, फिर भी पुलिस की गोली से 24 मुसलमान मारे गये"[4]

---

1. सिद्धार्थ वरदराजन - गुजरात हादसे की हकीकत - पृ. सं. 26
2.. टाइम्स ऑफ इंडिया - गोध्रा सरवाइवर हॉरर ऑफ बर्निग ट्रेन - 3 मार्च 2003
3. प्रतियूष कांत - निन्डर्स लुंपेंस फ्यूलिंग रायट्स : आइनी - टाइम्स ऑफ इंडिया -11 मई 2002
4. प्रवीण स्वामी - 'सैफरन टेरर - फ्रंटलाइन - 16-29 मार्च 2002

गुजरात में हिंसा इतने संगठित ढंग से हुई और उसमें सरकार की भागीदारी थी उसे 'दंगा' कहना उचित नहीं होगा । दंगे में विभिन्न धर्म के लोगों के बीच संघर्ष होते हैं । लेकिन मूसलमानों के खिलाफ एकतरफा नृशंस एवं अमानवीय आक्रमण हुआ था । यों सांप्रदायिक फासीवादी ताकतों का असली चेहरा भी सामने आया था ।

आध्यात्मिकता के तहत अन्तर्निहित धर्म की राजनीति

यह सर्वविदित बात है कि भारत आध्यात्मिक देश है । पश्चिम के भौतिक परिवेश का ज़रूर प्रभाव भारत पर पड़ा है । लेकिन उसकी आध्यात्मिकता में उतनी आँच नही आई है । यदि मानवियता बनाने में आध्यात्मिकता की भूमिका है तो कोई एतराज़ नहीं है । लेकिन दुःख की बात है कि भारत में आध्यात्मिकत को धर्म की आड़ में लोंगों में अंध विश्वास बढ़ाने और सत्ता हासिल करने के ज़रिया के रूप में इस्तेमाल किया जाता है । वर्तमान राजनीतिक पार्टियों के नेताओं में अधिकतर ज्योतिषियों, मान्त्रिकों और धर्म गुरुओं की सलाह प्राप्त किये बिना किसी भी शुभ कार्य का श्रीगणेश नहीं करते हैं । कई तो किसी बाबा, स्वामी अथवा ब्रह्मचारी के शिष्य वर्ग है । मुस्लिम-लीग के नेता इस्लामी कठमुल्लापन का व भाजपा के अग्रदूत हिन्दू कट्टरपंथ का पोषण कर रहे हैं । यद्यपि राजनीतिज्ञ जातियों से परे होने का दम भरते हैं और संदर्भानुसार ऐसे धार्मिक व जातीय पक्षों से हाथ-मिलाकर साम्प्रदायिकता को मान्यता दिलाते हैं ।

राजनैतिक पार्टियों चुनाव के समय में तो सांप्रदायिकता और कट्टरपंथ विषवृक्ष को पहले से भी ज्यादा पानी देते हैं । उस समय न केवल जाति और

कौम की ही नहीं बल्कि भगवान और धार्मिक गुरुओं के आशीर्वाद की भी बडी माँग होती है । संविधान के अनुसार हमारी राज्य व्यवस्था को धर्म-निरपेक्ष होना चाहिए । लेकिन केन्द्र और राज्य सरकारों और संस्थाएँ सभी धर्मों को बढावा दे रही है । रेडियो और टेलिविषन पर अनेक कार्यक्रम इसी के लिए आरक्षित है । विविध धर्मों के गुरु अपने-अपने चैनलों के द्वारा जनता को आत्मीयता के सार में डुबें रहे है । तीज-त्योहारों के दिन उससे संबन्धित पौराणिक आख्यानों का रसमय वर्णन रेड़ियो पर प्रसारित होता है । यों जितना संभव हो सके उतना धार्मिक अन्धविश्वास लोगों के दिलो दिमाग में भरने की कोशिश होती है । विविध संस्थानों का भी धार्मिक आयोजनों के साथ ही विधिवत उद्‌घाटन होता है । मंत्री गण और उच्च अधिकारियों का ऐसे धार्मिक समारोहों में भाग लेना आम बात हो गई है । कई बार तो ऐसा भी होता है कि स्वयं सरकार ही होम, हवन, पूजा ध्यान आदि का प्रबन्ध करती है ।

धर्म के नाम पर साधारण जन समूह को बहकाकर सत्ता में रहना ही राजनीतिज्ञों का उद्देश्य है । दरअसल सत्ता को धर्मनिरपेक्ष होना चोहिए । यानी धर्म के राजनीति से दूर रहने पर ही सत्ता नास्तिकों और विभिन्न प्रकार के आस्तिकों व धर्मावलंबियों के लिए समान रूप से सहायक हो सकती है।"[1] अगर धार्मिक संस्थाएं प्रत्येक समुदाय में एकता लाना चाहती है तो ठीक है । उस वजह से उस समुदाय में जाग्रति हो जाती है तो वह भी ठीक है । लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे समुदायों को जीने का हक नहीं है । सत्तासीन सरकार को पक्षधर होना नहीं चाहिए । उसे सभी अपेक्षाओं से दूर रहना है । पर विडंबना की बात है भारत में धर्म पर आधारित पार्टि सत्ता में रह चुकी है । धर्म पर आधारित

1. एलेन मॉन्टफियोरे (सं) - न्यूट्रेलिटी एण्ड इम्पर्शियेलिटी CUP, 1975, पृ. 5

संस्थाओं की सांस्कृतिक क्षेत्र में हावी है । आर.एस.एस जो अपने को सांस्कृतिक संगठन मानता है उसका एकमात्र लक्ष्य है हिन्दु राष्ट्र का निर्माण । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनेक संस्थाएँ खोली गई हैं । भारतीय जनता पार्टी यद्यपि पार्टी संगठन है फिर भी राजनैतिक क्षेत्र की आर एस एस संस्था के रूप में कार्यरत है । ट्रेड यूनियन के क्षेत्र में उसका भारतीय मज़दूर संघ है । विद्यार्थियों के क्षेत्र में 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् है । इन सबकी विचारधारा हिन्दू राष्ट्र की संकल्पना है । हिन्दू - मुस्लिम दंगे फसादों को प्रेरणा देनेवाला और एक संघटन है जमात-ए-इस्लामी, यह आर.एस.एस का मुस्लिम प्रतिरूप है । आर.एस.एस हिन्दू साम्राज्य का सपना देखता है तो यह इस्लामी राज्य का ।

भारत में जितने साप्रदायिक दंगे हुए हैं इन सबके पीछे राजनीतिक उद्देश्य छिपा है । कुछ लोग धर्म के नाम पर ही अपनी जीविका चला रहे हैं । आश्चर्य की बात यह है कि जनसाधारण यह समझने में असमर्थ हो रहे हैं। रामजन्मभूमि के आन्दोलन के कारण हिन्दू साप्रदायिकतावाद भारत की राजनीति का एक प्रमुख व ठोस आधार बन गया । आज भी यह स्थिति बल पकड़ती रही है । राजनीति से धर्म को अलग करना आज मुश्किल है, यद्यपि इसे अभी भी बार-बार दुहराया जा रहा है ।

फिर भी कोशिश ज़ारी रखनी चाहिए । राजनीतिज्ञ जो प्रजातंत्र और धर्मनिरपेक्षता पर विश्वास रखते हैं और राष्ट्रीय एकीकरण के प्रति उत्सुक हैं, उनको चाहिए कि धर्म को राजनीतिक मंच से जितना दूर हो, हटा दें । सब प्रजातांत्रिक और धर्म निरपेक्ष पक्षों को चाहिए कि कट्टरपंथी संघटनाओं और

सांप्रदायिक पक्षों का बहिष्कार करें, तत्काल राजनीतिक लाभ के लिए उनके साथ समझौता करना छोड़ दे । मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों की कठिनाइयों और असुविधाओं को दूर करने के लिए तुरन्त सही कदम उठाएँ । धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को प्रोत्साहन दे और धर्म और जाति पर अधिष्ठित मूल्यों, कार्यक्रमों, आचरणों व नीतियों की खिलाफ ज़ोरदार अभियान भी शुरु करें ।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि "मैं नहीं चाहता कि मेरे सपनों का भारत सिर्फ एक धर्म को मानो यानी वह पूरी तरह हिन्दु हो या पूरी तरह ईसाई, या पूरी तरह मुसलमान । बल्कि मैं चाहता हूँ कि वह पूरी तरह सहिष्णु बने, जिसमें, उसके सभी धर्म अगल-बगल सक्रिया रह सके"[1] सांप्रदायिक सौहार्द के शायद दो ही रास्ते हैं । एक बौद्धिक, विज्ञान-सम्मत और आधुनिक रास्ता, जिसमें धर्म के लिए या तो कोई जगह नहीं होगा या है तो एकदम हाशिये या पूर्णतः व्यक्ति पर आधिष्ठि । दूसरा रास्ता सच्ची धार्मिकता का है जो मनुष्य को उदात्तीकरण करता है । पहला रास्ता उसे एक हद तक मानवीय बनाता है । वह कठिन है और जल्दी संभव नहीं है । इसलिए हमें दुसरा रास्ता अपनाना चाहिए । लेकिन आज सब कुछ उलटा हो रहा है। इसलिए जद्दोजहद करनी होगी।

अंग्रेज़ों ने अपनी नीति 'बाँटो और राज करो' के अनुसार हमारे इतिहास को सांप्रदायिक मोड़ पर ख़डा कर लिया । और आज भी अनेक राजनीतिक संस्थाएँ इसी रास्ते से आगे बढ़ रहे है । गोलवलकर ने कहा था कि मुसलमानों की श्रद्धा और भक्ति पाकिस्तान के लिए ही आरक्षित है।"[2]..... हम जिस पर विश्वास करते हैं, उसके प्रति मुसलमानों में द्वेष भावना है । हम देव मंदिरों में पूजा करते है तो उनकी इच्छा उनको अपवित्र करने की होगी। यदि हम भजन

---

1. महात्मा गाँधी - यंग इंडिया - 22-12-1927
2. पं.पू.भी गुरुजी - इतिहास की चेतावनी, राष्ट्रोत्थान साहित्य, बेंगलोर - 1968 पृ. सं. 39

और रथोत्सव का प्रबन्ध करते हैं तो उन्हे किरकिरी होगी । हम गायों की पूजा करते हैं तो वे उसे खाना चाहते हैं । हम स्त्रियों को पवित्र मातृत्व का प्रतीक मानकर उनका आदर करना चाहते हैं तो वे उनपर अत्याचार करने के लिए लालयित रहते हैं । सभी प्रकार से वे हमारे जीवन-क्रम के विरोधी है"[1] मोलाना अबुल लैस इस्लाही जमात-ए-हिन्द नाम की संस्था के नाता का मानना है कि धर्म निरपेक्ष प्रजातंत्र की परिकल्पना स्लामी तत्वों के बिलकुल विपरीत है । उसके सामे सिर झुकाने का मतलब होगा कुरन से मुँह फेरना । उसमें भाग लेने का मतलब है हमारे रसूल (महम्मद पैगंबर) के प्रति द्रोह करना । प्रजातंत्र का ध्वजारोहण करना अल्लाह के ध्वज के विरुद्ध विद्रोह करना है । तुम कहीं भी हो धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय प्रजातंत्र का खण्डन अवश्य करो"[2] बमाने की ज़रूरत नहीं कि ये दोनों मंतव्य धर्मनिरपेक्षा प्राजातंत्र देश के लिए हितकारी नहीं हैं ।

उड़ीसा में धर्म परिवर्तन के नाम पर आज कल ईसाईयों पर हत्याचार हो रहे हैं । अत्याचार इतना बढ़ गया कि एक ईसाई नन का सामूहिक बलात्कार तक किया गया । मन्दिर और गिरीजाधर के मूर्तियों को तोड़ना आम बात हो गया है। कुछ कट्टरपंथी की प्रवृत्तियों से पूरा देश साप्रदायिकता की आग में जलने केलिए बेताब है । आज कल हर धर्म के लोग अपने लिए अलग-अलग चैनल खोल रहे है । रेडियो, टी.वी. आदि सरकारी जनसंचार माध्यमों में विविध प्रकार के धार्मिक प्रचार सम्प्रदायों का वैभवीकरण आदि का प्रदर्शन हो रहा हैं । यह सही नहीं है । इनके बदले ऐसे कार्यक्रमों का अधिकाधिक प्रसारण होना चाहिए जो लोगों में वैचारिक, वैज्ञानिक और धर्म निरपेक्ष भावनाओं को बढ़ावा दें ।

पिछले कतिपय वर्षों से देश में धार्मिक सरगर्मी बढ़ती जा रही है । करोड़ों

---

1. एम. एस. गोल्वलकर - चिन्तनों का गुच्छा, अंग्रेज़ी, राष्ट्रोत्थान साहित्य, बेंगलोर - 1966 पृ. सं. 147-148
2. डॉ. मोयिन शकीर के लेख - मार्च, 1972 के अंक में सेमिनार पत्रिका में प्रकटित

रुपए खर्च करके नये-नये मंदिर, मसजिदें, गिरिजाघर, गुरुद्वारे बनाये जा रहे हैं। यह सब बात उस देश में हो रही हैं जहाँ गरीबों की, जिन्हें दो जून रोटी नहीं मिल रही है । पुराणों में बताई बातों का सत्य कथन होने का प्रचार किया जा रहा है। देवताओं की सजधज के लिए रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है । मेला, उत्सव, कुंभमेला आदि धार्मिक समाराहों में भीड़ इकट्टी होती है । धक्कमधक्के में अनेक लोग प्राणों से हाथ धो बैठते हैं (1985 की कुभमेला में करीब 60 लोग धक्कमधक्के में मरे थे) । इस साल इलाहाबाद रेलवे स्टेशन की भीड में भी अनेक लोग मारे गए दो कुंभमेला में शरीक होने आए थे । फिर भी उत्सवों की कमी नहीं होती है। मंदिरों के उत्सवों के दौरान सडकों पर भीड़ की वजह आवागमन स्तब्ध हो जाते हैं । लाऊडस्पीकरों की चिलाहट से कान फट जाते हैं । लेकिन कोई हर्ज नहीं ।

सरकार भी इसे उकसी रही है । धर्म के प्रभुत्व को राजनीति से दूर रखना चाहिए। सब धर्मों को प्रोत्साहन देने के बदले सरकार को वह अलिप्त रखना चाहिए। सरकारी कामों का धार्मिक रस्मों के साथ उद्‌घाटन करना अथवा मंत्रियों और बड़े अधिकारियों का धार्मिक समारोह में भाग लेकर धार्मिक गुरुओं की आसीस माँगने की बुरी आदत छोड़ देनी चाहिए। धर्माचरण को व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित रखना चाहिए और सार्वजनिक जीवन में उसका कोई स्थान नहीं होना चाहिए । लेकिन आज राजनीति तो धर्म से इतनी मिलजुल गयी है कि सत्ता को पाने के लिए धर्म के नाम पर जनता को विभाजित करना बहुत ज़रूरी हो गया है ।

❖ ❖ ❖

दूसरा अध्याय

कहानी के औपनिवेशिक प्रतिरोधी आयाम का ऐतिहासिक विवेचन

प्रेमचन्द और यशपाल की कहानियों में अभिव्यक्त उपनिवेशिक विरोध

सामाजिक समस्याओं को साहित्य के ज़रिए ज़ाहिर करनेवाले साहित्यकार अपने को प्रेमचन्द की परंपरा से जोड़ते हैं, प्रेमचन्द द्वारा निर्णीत साहित्यिक मान्यताओं को विरासत के रूप में स्वीकार करते हैं, इसलिए उपनिवेश विरोधी स्वरों के विवेचन के संदर्भ में प्रेमचन्द की मान्यताओं और कहानियों का विहग अवलोकन ज़रूरी है । यह सर्वविदित बात है कि प्रेमचन्द हिन्दी कहानी के शलाका पूरुष है । साहित्य संबन्धी उनके विचार, नज़रिया गंभीर एवं अगाध रहे थे । उनके अनुसार "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसीक तृप्ति न मिले, हम में शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हम में सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहने का अधिकारी नहीं।"[1]

दरअसल जनवादी कहानी की नींव प्रेमचन्द ने ही डाली है । उन्होंने ऐलान किया था कि "अब तो हमें उस कला की आवश्यकता है जिसमें कर्म का सन्देश हो।"[2] उन्होंने अपनी कहानियों के ज़रिए समाज को बदलने की तीव्र आस्था प्रकट की थी। "उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है जिससे हम में दृढ़ता और कर्मशक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमे अपनी दुखावस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन अन्तर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गये उन्हें दूर करने की कोशिश करे।"[3]

---

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ. 9
2. वही - पृ. 5
3. वही - पृ. 20

प्रेमचन्द ने अवाम की आर्थिक समस्याओं को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया था । व्यवस्थागत विसंगतियों का पर्दाफाश करते हुए उन्होंने समाज को बदलने की बात की थी । उन्होंने समाजिक यथार्थ के जिन आयामों को हमारे सामने रखा, उन्हे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद नाम से हम अभिहित करते हैं । लेकिन घोषित कला सिद्धान्त यही है कि कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। सामाजिक यथार्थ कहानीकार की अनुभूति से गुज़रते हुए नई भंगिमा व रूप हासिल करते हैं । प्रेमचन्द के अनुसार "हमारा ख्याल है कि क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करे, जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभाता रहे ? कला के लिए कला का समय वह होता है, जब देश संपन्न और सुखी हो । जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं जिधर निगाह उठती है, दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे ।"[1]

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज़ उठायी । सच कहे तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद प्रेमचन्द से डरता था । प्रेमचन्द की 'सोज़ेवतन' को तत्कालीन ब्रिटिश सरकार, ने खतरनाक समझकर पाबन्दी लगा दी । उनकी मौजूदगी में संग्रह की सारी प्रतियों को आग के सुपुर्द कर दिया गया । उन्हे चेतावनी भी दी गई कि आगे ऐसा कुछ भी करने की जुर्रत न करे । सोजेवतन की पाँच कहानियों में से चार कहानियाँ 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'रोख मखमूर', 'यही मेरा वतन है, 'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम'

---

1. प्रेमचन्द के चिन्तन - प्रेमचन्द पृ. 35

भावात्मक स्तर पर राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित हैं और सारी सांसारिक चीज़ों की अपेक्षा देश भक्ति को असाधारण गौरव एवं गरिमा देने की दिशा में लिखी गई हैं । यहाँ साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ते प्रेमचन्द के गरिमामय व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक देख सकते हैं।

देश-प्रेम की काफी कुछ स्पष्ट भावनाऐं उनकी कहानियों में हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता के मन में विद्रोह उत्पन्न करना इनका लक्ष्य था । उदाहरण स्वरूप कुछ कहानियों पर हम विचार करेंगे । 'यही मेरा वतन है" का नायक लंबे अरसे बाद अमरीका से अपने देश हिन्दुस्तान को लौटता है, अपना वर्षों से जमे रोज़गार और परिवार को अमेरिका में ही छोड़कर । अपने देश की मिट्टी का आकर्षण बडे भावुकतापूर्ण ढंग से उसे अपनी ओर खींचता है । अपने रोज़गार और परिवार की चिन्ता किए बिना ही वह अपने देश में रुक जाता है ताकि अंतिम समय अपने देश की मिट्टी में मिल सके । देश के सामने अपने निजी परिवेश और परिवार से कटने का कोई दुख उसको नहीं है । यहाँ प्रेमचन्द ने हिन्दुस्तान की मिट्टी में विलीन भावनाएँ और शक्ति के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहा है ।

आज के जनवादी कहानीकार अपने आपको प्रेमचन्द की परंपरा से जोड़ते हैं5। कर्ण सिंह चौहान के अनुसार "…..पिछले दो दशक में कहानी फिर से व्यापक यथार्थ के बीच गयी है और अपना जनवादी स्वरूप गढ़ रही है । उसने पुनः अपने को प्रेमचन्द की परंपरा से जोड़ा है । और प्रेमचन्द की कहानी में लौट आना नहीं, बल्कि प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ाना है ।"[1]

---

1. डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ - हिन्दी कहानी एक अन्तर्यात्रा, पृ. 60

प्रेमचन्द की कहानियों में दो चीज़े प्रमुख हैं पूँजीवादी आतंक और जनप्रतिरोध । उस दृष्टि से देखे जाये तो प्रेमचन्द, महान जनवादी कहानीकार है। सुरेन्द्र सुकुमार का कथन है, जनवादी दृष्टिकोण को करीब से समझने का मौका हमे दे रहे हैं । उनके अनुसार "....... आज समाजवाद के लिए पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करनेवाला वर्ग ही जनवादी है । और यह वर्ग उत्पादन-प्रक्रिया से जुड़ा हुआ शोषित सर्वहारा वर्ग है । जनवादी कहानी इसी वर्ग की और इसी वर्ग के लिए है । लेकिन इस वर्ग केलिए कहानी लिखना तभी संभव होगा, जब हम उसके बीच रहकर उसके जीवन के अनुभव प्राप्त करे।"[1] सर्वहारा वर्ग का अनुभव प्रेमचन्द की कहानियों में पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

जहाँ देश की सामान्य आज़ादी के लिए अपना सब कुछ होम कर देने को कृतसंकल्प थी, वहाँ इसी देश में अमीरों, ज़मीन्दारों और रियासतों के राजा महाराजाओं का एक ऐसा वर्ग भी था जो कभी सक्रिय होकर और कभी निष्क्रिय होकर इस राष्ट्रीय उभार को दबाने और कुचलने में ब्रिटिश साम्राज्य की मदद कर रहा था ।

"शातरंज के खिलाड़ी" में मिर्ज़ सज्जाद अली और मीर रोशन अली इस वर्ग के प्रतिनिधि हैं । देश के सवालों, समस्याओं और परिवर्तनों से किसी किस्म का कोई सरोकार न रहकर अपनी जायदाद के सहारे पलते और ऐश करने के लिए ही वे लोग जी रहे थे । ये लोग आज की नेताओं का भी प्रतिरूप है । ब्रिटिश सेना के लखनऊ में प्रवेश और अली शा की गिरफ्तारी, इन बातों में उन्हें

---

1. रमेश उपाध्याय - जनवादी कहानी - पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक - पृ. 168

कोई फर्क नज़र नही आ रहा है । वे लोग तो सुखी से बेपरवाह होकर शतरंज खेलते रहते हैं । शतरंज की एक बाज़ी की मामूली - सी हार जीत को लेकर, तलवारें खींच लेते हैं और वीर योद्धाओं की तरह एक-दूसरे को ज़ख्मी करके मर जाते हैं। जातीय और राष्ट्रीय महत्व के सवालों से बेखबर अपने छोटे-छोटे हितों और स्वार्थों को सब कुछ समझने वाले लोगों पर इससे ज़्यादा सटीक व्यग्य की कल्पना मुश्किल है ।

'समरयात्रा' कहानी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़नेवालों की है । बूढ़ी नोहरी तो दोपहरी धूप की तरह काँपकर दारोगा के विरुद्ध आवाज़ उठाती है । कोदई दूसरे लोगों के साथ अपना गिरफ्तार देता है । आगे के लिए नोहरी के निर्देशानुसार बाकायदा जत्था बनता है और वालेण्टियर की सूची तैयार की जाती है जिसमें हिन्दू भी है और मुसलमाल भी । जुलूस का नेतृत्व बूढे इब्राहीम खाँ के हाथ में है । जुलूस पर हुए लाठी चार्ज के फलस्वरूप वह बुरी तरह जख्मी हो जाता है और वसीयत करता है कि उनकी लाश को गंगा में नहलाकर दफ़न किया जाए । साम्राज्यवाद के विरुद्ध आन्दोलन के संदर्भ में जातीय एकता और सांप्रदायिक सद्भाव प्रेमचन्द की कहानियों की खास विशेषता है ।

साम्राज्यवाद की सबसे बड़ी हथियार है साप्रदायिकता। जाति व धर्म पर आज भी भारतीय जनता में अगाध आस्था है, 'देवी' कहानी में एक स्त्री एक अंधे भिखारी को दस रुपये का नोट भीख में देने के कारण सहज ही कौतूहल और आदर का पात्र बन जाती है । बाद में मालूम होता है कि वह एक विधवा है और वह नोट उसे पड़े मिला था इसलिए वह उसे भिखारी को दे देती है । यह वस्तुतः

---

1. दलीप. एस स्वामी - द वर्ल्ड बैंक एण्ड ग्लोबलाइज़ेशन ऑफ इण्डियन इकॉनामी, पब्लिक इंटरेस्ट रिसर्च ग्रूप - दिल्ली 1994 - पृ. 5
2. वही - पृ. 17

रूढ़िवादी हिन्दू सोच का समर्थन है जो पडे हुए धन के उपयोग को लेकर भाँति भाँति के भय दिखाती है और उसे दान में देना ही श्रेयस्कर समझा जाता है । यहाँ मन की विशालता के बजाय धर्म पर आस्था मनुष्य को त्यागी बनता है ।

जातियता पर लिखी गयी उनकी एक और कहानी है सद्गति'। दुक्खी चमार जो ईश्वर के परम भक्त पंड़ित घासीराम की गाय का घास डालने से लेकर भूसा ढोने और लकड़ी काटने तक का काम भूख सहते हुए करता है और अंत में अंतिम सांस लेता है । यानी सद्गति प्राप्त होता है । सारी सेवा के बावजूद ये लोग नीच, कमीने और अस्पृश्य हैं। 'ठाकूर का कुँआ' कहानी में अस्पृश्य होने के कारण दलित पानी तक ठाकूर के कुए से नहीं ले पा रहे हैं।

'कफन' में भूख और गरीबी का आलम एक अलग कलात्मक धरातल ग्रहण करता है । भूख मानवीय संवेदना को चरमराती जाती है । गरीबी तो मानव के मोह, ममता को गायब कर देती है । यों आवाम के संघर्ष को गरीबी के ज़रिए बहुत ही असरदार ढंग से उन्होंने ज़ाहिर किया है । प्रेमचन्द सिर्फ सिद्धान्त के पैरवीकार नहीं थे । उन्होंने कर्म पर भी बल दिया था । 'मंगल सूत्र' में प्रेमचन्द ने लिखा भी था "नहीं मनुष्यों में मनुष्य बनना पडेगा । दरिन्दों के बीच में उन से लड़ने के लिए हथियार बाँधना पडेगा । उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।"[1]

प्रेमचन्द की दृष्टि व्यक्ति के द्वन्द्वों की उपेक्षा समष्टि के मूल्यों की ओर अधिक रही है । हम कह सकते है कि उन्होंने ज़मीन्दारी व पूंजीवादी व्यवस्था से भिन्न इन्सान की गरिमा और इन्सानियत पर आधारित एक बेहतर समाज की

1. प्रेमचन्द - मंगलसूत्र - पृ. 15

संकल्पना की और अपनी रचनाओं में प्रस्तुत भी किया । इसलिए वर्तमान जनवादी कहानीकार अपने को प्रेमचन्द के वारिस मानने के लिए कटिबद्ध रहते हैं ।

प्रेमचन्द की इस जनवादी सोच और कर्म को तहे दिल से यशपाल ने आगे बढ़ाया है। वे सचमुच हिन्दी कथा साहित्य के युग प्रर्वतकों में से एक थे । वे एक सच्चे ईमानदार जनवादी साहित्यकार रहे । यशपाल ने लिखा है कि "जब मनुष्य आपस में एक दूसरे के विरुद्ध अपनी शक्ति का प्रयोग करने लगते हैं, वह शक्ति किस प्रकार की हो सकती है - बुद्धि की हो या किसी और तरह की, तब कमज़ोर और बलवान, साधन संपन्न और साधन हीन होने का प्रश्न उठने लगता है और उसमें एक प्रकार की असमानता और विशेषता पैदा हो जाती है।"[1]

यशपाल ने साम्यवादी दर्शन के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को गहराई से आत्मसात किया है । उनके मुताबिक - "मैं सब साधारण जनता को शोषित और अन्याय पीड़ित समझता हूँ । इस अन्याय से जनता की मुक्ति का उपाय कम्यूनिज़्म की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा को मानता हूँ ।"[2] जनवादी मान्यताओं पर उनका अटूट विश्वास था । उनकी दृष्टि में यह दृष्टिकोण युग की आवश्यक माँग है । यशपाल के विचार और जीवन दोनों यथार्थ की ठोस और खुरदरे भूमि पर अधिष्ठित है । यशपाल प्राचीन आदर्शवादी विचारधारा में विश्वास नहीं करते थे, न ही गाँधीवादी अस्त्र हृदय परिवर्तन में । उन्हें क्रान्ति में अटूट विश्वास था । दादा कॉमरेड़ में हरीश के माध्यम क्रान्ति के स्वरूप को व्यक्त करते हुए यशपाल ने लिखा है कि "क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल

---

1. यशपाल - मार्क्सवाद - पृ. 12
2. यशपाल - देखा, सोचा और समझा - पृ. 108

जनता और विदेशी सरकार में सशक्त संघर्ष ही नहीं है, हमारी क्रान्ति का लक्ष्य नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है।"[1]

पाश्चात्य संस्कृति की झलक उनकी कुछ कहानियों में देखने को मिलती है । आज की उपनिवेशवादी संस्कृति का एक पहलू है पाश्चात्य संस्कृति । यशपाल की कहानी 'धर्मयुद्ध' में कन्हैयालाल अपने कमरे में अपने मित्रों-जिनमें दो स्त्रियाँ भी शामिल हैं - के साथ काकटेल पार्टी में व्यस्त है । कन्हैयालाल की बहन विद्या सारी स्थिति की सूचना अपनी माँ को दे देती है । विद्या से सबकुछ सुनकर माँ वहाँ पहूँचती है और बहुत स्वाभाविक परन्तु बेहद नाटकीय स्थिति सामने आती है । वह चिल्ला उठती है। अपमानित होकर सारे अतिथि चले जाते हैं । कन्हैयालाल परेशान होकर ज़िद करता है कि जब तक उनके सारे अपमानित अतिथियों को बुलाकर उनसे क्षमा माँगी नहीं जाती वह घर के अन्दर कदम नहीं रखेगा । पुनः सारे अतिथियों को बुलाना पड़ा और अगले दिन शाम को कन्हैयालाल के यहाँ डिनर और काकटेल का निमन्त्रण भी दिया जाता है । यहाँ यशपाल ने बदलती भारतीय संस्कृति को हमारे सामने रखा है जो आजकल उपभोगवादी संस्कृति का रूप ले रही है ।

'परदा' कहानी में मध्यवर्गीय लोगों की ज़िन्दगी पर प्रकाश डाला गया है । परदा कहानी को आज की भारतीय अर्थ व्यवस्था के प्रतीक के रूप में हम देख सकते हैं। साम्राज्य शक्तियों के सामने अपने आपको गुलाम बनाकर हम कर्ज़ लेकर देश की आर्थिक समस्याओं के आगे 'परदा' डाल रहे है जिससे दूसरों को यह महसूस होता है कि सब कुछ ठीक चल रहा है । लेकिन सच यह

---

1. यशपाल - दादा कॉमरेड़ - पृ. 127

है कि उपनिवेशवादी अर्थ व्यवस्था हमे गरीबी और विकास हीन रास्ते की ओर ले जा रही है ।

यशपाल श्रेष्ठ साहित्यकार रहे हैं, उनका साहित्य मनोरंजन का साधन ही नहीं, वर्तमान जीवन की विकट परिस्थितियों, असमंजस तथ्यों और समस्याओं को भी प्रस्तुत करता है । कलम के साथ उन्होंने पिस्तौल भी संभाल लिया था। सन् 1931 में हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के अध्यक्ष चन्द्रशेखर आज़ाद के अंग्रेज़ों की गोली का शिकार हो जाने पर यशपाल उस सेना के कमाण्डर नियुक्त हुए । बाद में उनपर मुकदमे चलाये गये । 1932 को इलाहाबाद में, अंग्रेज़ पुलिस से लड़ते हुए, पिस्तौल खाली होने पर वह पकड़े गये। उसे जेल में बंद किया गया । क्रान्तिकारी यशपाल के साहित्य में यह क्रान्तिकारी अनुभव ज्वलंत रूप में ज़ाहिर है । उनके साहित्य के कथ्य और चरित्र काल्पनिक नहीं है ।जीवन में घटित सच्चाइयाँ उस में हूबहू उभर आई है। उन्होंने साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपना कलम के साथ ज़िन्दगी के ज़रिए भी विद्रोह प्रकट किया है । यानी कथ्य के साथ कर्म को भी महत्व देने की जद्दोजहद की है ।

अपने जनवादी दृष्टिकोण को जनता तक पहूँचाने के लिए उन्होंने ‘विप्लव’ पत्रिका का सही ढंग से इस्तेमाल किया था । यशपाल ने रचना की प्रयोजनधर्मिता पर बल दिया है - “अपनी चेतना और विश्वास में सदा सप्रयोजन ही लिखता रहा हूँ । इसलिए मैं जीवन की प्रतिक्रिया और जीवन के मार्ग में अनुभव होनेवाली अडचनों और उचित तथा विकासशील जीवन की संभावनाओं

के संबन्ध में अपना दृष्टिकोण अपनी रचनाओं द्वारा समाज के सम्मुख रखने का आग्रह करता रहता हूँ ।"[1] यों यशपाल ने प्रेमचन्द की जनवादी परंपरा को विकसित किया है जो सन् 63 में गोदान के साथ एक हद तक विच्छिन्न हो गयी थी ।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने शासन काल में भारतीय जनता में अज्ञान, अन्धकार, अन्धविश्वास और पाखण्डों का जल-सा बिछा दिया था । साम्राज्यवादियों ने अपने औपनिवेशिक शोषण के नीचे सामन्तवादी शोषण को बदस्तूर कायम रखा । लेकिन प्रेमचन्द और यशपाल के साहित्य में अंकीत हिन्दुस्तानी जनता साम्राज्यवादी - सामन्तवादी-पूँजीवादी सब प्रकार के झूठे प्रचार और लाँछनों को करारा उत्तर देती है ।

यशपाल तो क्रान्ति पर विश्वास रखनेवाले साहित्यकार थे । यशपाल गाँधीवादी आचार और दर्शन के प्रति असहिष्णुता हमेशा दिखाते थे । उन्हें जब भी मौका मिलता है वह उनके समर्थकों के सिद्धान्त और आचारगत वैषम्य को अंकित करते हैं । ऐसे अवसर पर वह खासतौर से व्यंग्य का सहारा लेते हैं और कभी हल्के उपहास के साथ तो कभी किंचित् आक्रोश के साथ वह अपनी प्रतिशोध प्रकट करते हैं । 'धर्म युद्ध' में वह सत्याग्रह की समूची पद्धति का ही मज़ाक उड़ाते हैं।

साप्रदायिकता पर टिप्पणी करते हुए यशपाल लिखते है कि "हमारे देश में मौजूद सांप्रदायिक मजहबी और साँस्कृतिक भेद हमारे समाज में मेड़ों की तरह खडे होकर हमे एक होने से रोके हुए हैं । परन्तु इसके साथ ही, उतने ही बल से

1. यशपाल - आलोचना - जुलाई 1957 - पृ. 43

शायद इससे भी अधिक ज़ोर से हम अपने समाज को छिन्न-भिन्न किए रहनेवाली इन मेड़ों को मज़बूत बनाए रखने की भी पुकार बुलंद किए रहते हैं ।"[1] सांप्रदायिकता पर प्रहर करते हुए यशपाल यह भी लिखते है कि "अपना सब कुछ खोकर भी आदमी मानवीय विवेक एवं सदाशयता से भलाई में अपने विश्वास टूटने से बचा सकता है।"[2]

यहाँ हर भारतीय को एक होकर, सभी, भेदभाव भूलकर जीने का सन्देश यशपाल दे रहे हैं । मुस्लिम समस्याओं पर उन्होंने प्रेम का सार, परदा, गमी की खुशी जैसी महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखी भी हैं ।

प्रेमचन्द और यशपाल की कहानियाँ वैचारिक एकरूपता, निषेधों, और वर्जनाओं से मुक्त होकर सहज जीवन की ललक और सामाजिक विसंगतियों की तीखी पहचान के साथ आगे चलती हैं । प्रेमचन्द के प्रभाव पर टिप्पणी करते हुए यशपाल ने लिखा है ...."मैंने सचेत रूप में कभी प्रेमचन्द की परंपरा निभाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया । प्रेमचन्द की सप्रयोजन लिखने की प्रवृत्ति और कथा-कौशल का मेरे मन में बहुत आदर है ।.... हो सकता है उनकी सशक्त शैली ने अचेतन रूप से मुझे प्रभावित किया हो । उनके और मेरे आदर्शों में भेद स्पष्ट हैं । मेरे विचार में वह पाठक की सहृदयता को छूना चाहते हैं और मैं न्याय वृत्ति को।"[3] यह बात स्पष्ट है कि कतिपय बातों में अलग वैचारिक दृष्टिकोण रखते हुए भी हिन्दी की प्रगतिशील साहित्य को गरिमा प्रदान करने में दोनों साहित्यकारों ने भूमिका निभाई है ।

---

1. यशपाल - न्याय का संघर्ष - पृ. 23-24
2. आजपल - मई - जून 1974
3. यशपाल के पत्र - मधुरेश - पृ. 48

नई कहानी, सक्रिय कहानी, समान्तर कहानी व जनवादी कहानी में जाहिर साम्राज्यवादी व साप्रदायिक विरोधी आयाम ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय परिवेश के साथ लेखकों की मानसिकता में पर्याप्त अन्तर आया । अतः उन्हें नए परिवेश की अभिव्यक्ति के लिए पुराने आधार अपर्याप्त प्रतीत हुए । यों हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विविध आन्दोलन प्रारंभ हो गये और कभी-कभी ये आन्दोलन एक-दूसरे के समानान्तर भी चलते रहे । नयी कहानी में यथार्थ की प्रामाणिकता पर विशेष बल दिया गया था । परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता, अनुभूति की प्रामाणिकता, भोगा हुआ यथार्थ जैसे अनेक मानक शब्द नई कहानी की आलोचना के क्षेत्र में प्रचलित हुए । नई कहानी ने राजनीति के प्रति उदासीनता और उपेक्षा का रूख अपनाया । कहानी में राजनीति का जो स्वरूप सामने आया उसमें नेताओं और विश्वास की कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई थी - “नयी कहानी के कहानीकारों की मानसिकता में एक ओर, निकट अतीत में भोगी गयी परन्तत्रता की पीड़ा थी, तो दूसरी ओर आज़ादी मिलते ही साम्प्रदायिक दंगों की पीड़ा । अतः कहानीकार ने यथार्थ को वैयक्तिक स्तर पर अनुभव किया। ..... परम्परागत दृष्टि को छोड़ना उसका आग्रह था । जिस कारण प्रत्येक स्थिति को उसने नयी दृष्टि से देखा । आर्थिक दबावों तथा बदलते सामाजिक परिवेश के रहते पारिवारिक सम्बन्धों में बदलाव आना निश्चित था।”[1] व्यक्ति और परिवेश के प्रति विशेष सजग रहनेवाली नई कहानी में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की बदलती हुई सामाजिक स्थितियाँ, राजनीतिक विसंगतियाँ, विभाजन की विभीषिका, मूल्यों में आये बदलाव, नयी आस्था की आकाँक्षा, व्यक्ति की अस्मिता की तलाश की चिन्ताएँ आदि दिखाई पड़ती हैं ।

1. डॉ. अशोक भाटिया - समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास -पृ. 28

सांप्रदायिकता और साम्राज्यवाद से जुड़ी हुई अनेक कहानियाँ नई कहानी के दौर में लिखी गयी हैं । जिन पर हम विस्तार से बाद में विचार करेंगे ।

सचेतन कहानी आन्दोलन के संदर्भ में महीप सिंह लिखते है कि "सचेतन एक दृष्टि है । वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया जाता है और जाना भी जाता है।"[1] दूसरे शब्दों में सचेतन कहानी जीवन को जोड़कर चलती है और जीवन को जानने की चेष्टा करती है । वह व्यक्ति और समाज की टूटती आस्थाओं के बीच नये मूल्यों के निर्माण का स्वर मुखरित करती है । सचेतन कहानी - आन्दोलन बहुत जल्दी ही समाप्त हो गया । ऐसा भी प्रतीत होता है कि यह आन्दोलन नयी कहानी की प्रतिक्रिया से उपजा था, इसे हिन्दी कहानीकारों का व्यापक समर्थन नहीं मिला । इसका कारण यह है कि सचेतन कहानी की मूल स्थापनाओं में कोई नवीनता नहीं थी । जीवन को जिये और जाने बिना किसी भी प्रकार के उच्च कोटि के साहित्य की रचना संभव नहीं है । सचेतन कहानी द्वारा स्थापित यह सूत्र तो बहुत प्राचीन है । फिर भी हमारी आज की बदलती हुई संस्कृति की छवि सचेतन कहानियों में विद्यमान है ।

मसलन महीपसिंह की 'स्वाघात' कहानी का लाला दुनीचंद की बेटी विमला दिल के दौरे से मर जाती है । पति कलकत्ता में है । आने के बाद वह तुरन्त लौट जाता है क्योंकि इनकम टैक्स के कुछ काम निपटना है दोस्तों में ताश को शौकीन दुनीचन्द आने जाने और मातमपुर्सी करने वाले लोगों से बुरी तरह ऊब जाता है । उनकी औपचारिक बातें, न आ पाने या देर से आ पाने की घिसी-पिटी सफाई और फिर शुरू हो जाने पर सब कुछ भूलकर देश-जहान की बातें

---

1. सचेतन कहानी विशेषांक - सन् 64, संपादकीय- पृ. 12

। इस बीच कभी ठीक से अखबार पढ़ने का मौका भी उसे नहीं मिलता है । ऊबकर वह क्रिया तेरहवें दिन के बदले ग्यारहवें दिन ही कर लेने का निर्णय करता हैं । पत्नी को वह यह कहकर समझा देता है कि ग्यारहवें दिन रविवार पड़ने से उनके लड़कों को छुट्टी नहीं लेनी होगी । आज हम अपने सभी रिश्तों को मुनाफा व फायदे की दृष्टि से देखते हैं । बाज़ारवाद की इस नवीन दुनिया की झलक महीप सिंह की कहानियों में नज़र आती है ।

मनहर चौहान की कहानी 'बीस सुबहों के बाद' का नायक दिल्ली से बंबई जाता है और एक अतिथि गृह में रहने की व्यवस्था करता है । उस कमरे में दो लोग-स्वामीनाथ और कापड़िया पहले से ही हैं । बीस दिन रहने के बाद भी काम में व्यस्त होने के कारण स्वामीनाथ से उसकी भेंट कभी नहीं हो पाती । एक दिन कापड़िया से उसे सूचना मिलती है कि उसे स्वामीनाथन की बर्थ डे पार्टी में जाना है । लेकिन किसी कारण से कापड़िया नहीं पहूँच पाता है । अब नायक की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह स्वामिनाथन को पहचानेगा कैसे ? महानगर की खोखली औपचारिकता, व्यस्तता, संकोच और कुँठाएँ किसी दार्शनिक मुखौटे के बिना सहज रूप में अंकित करके ये कहानियाँ यह साबित करती हैं कि वर्तमान संस्कृति एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ उपनिवेशवाद विशेष रूप से सक्रिय है ।

"अकहानी आन्दोलन सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार करती हैं तथा इसके पीछे अस्तित्ववादियों का विश्वबोध है, कामू का दर्शन है तथा एब्सर्ड भाव-बोध भी है..... अकहानी में कथा रचना का स्पष्ट विधान न होकर मूड या क्षण को ही अभिव्यक्त किया जाता है । ऐसी स्थिति में उसका रचना विधान जटिल ही नहीं, अपितु अस्पष्ट भी हो जाता है।"[1] अ-कहानी तक आते-आते राजनीति के प्रति मोहभंग और हताशा का भाव और भी सघन होता दिखाई देता

---

1. डॉ. हेतु भारद्वाज - हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास - पृ. 86-87

है । फैंटेसी के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण भी अ-कहानी में दिखाई पड़ता है । साम्राज्यवाद व सांप्रदायिकता विरोधी तत्व अ-कहानी में नहीं के बराबर है ।

सक्रिय कहानी वर्तमान-सामाजिक शोषण के विरोध को अपनी मूल संवेदना मानती है । इस दृष्टि से वह समान्तर कहानी तथा जनवादी कहानी के निकट ही है । इन तीनों आन्दोलनों की दृष्टि वामपंथी है । सक्रिय कहानी आम आदमी के संगठित होकर जूझने, उसके आत्मविश्वास, समाज के जनसमर्थक मूल्यों तथा समानता की स्थापना को रेखांकित करती है । सक्रिय कहानी की पृष्ठभूमि पर चर्चा करते हुए राकेश वत्स ने स्पष्ट किया है कि "साधारण आदमी को पस्त, नपुंसक, विचारशून्य और संवेदनहीन बनाने के लिए विदेशी ताकतों जिन हथकंडों और हथियारों का इस्तेमाल कर रही थीं, आज भी इन्हीं से काम लिया जा रहा है।"[1] राकेश वत्स की कहानियों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की छवि देखने को मिलती है । "सैलाब' कहानी में नारी की स्वतंत्रता पर आवाज़ उठायी गई है । उनके अनुसार पढ़ी-लिखी औरत सिर्फ रसोईघर के लिए बनायी नहीं गयी है । 'एक बुद्ध और' नामक कहानी के नायक लंका नगरी के रूप में 'नगर' को देखता है और एक श्रीराम की प्रतीक्षा में है, इसमें वर्तमान व्यवस्था पर व्यग्य कसा गया है । उपेक्षित बूढ़े पिता की समस्याएँ 'गुलाम' कहानी में चित्रित है । 'छुट्टी का एक दिन' कहानी में मज़दूरों की गरीबी का प्रभावपूर्ण चित्रण है । यों सक्रिय कहानी आन्दोलन के प्रतिनिधि कहानीकार राकेश वत्स ने सामाजिक, आर्थिक रूप से शोषित समाज के हर क्षेत्र के लोगों की कहानी लिखी है ।

---

1. राकेश वत्स - मंच विशेषांक - 1973

कमलेश्वर ने 'सारिका' के अपने संपादन काल में, आठवें दशक के शुरू में, समांतर कहानी आन्दोलन की शुरूआत की।"[1] कमलेश्वर के ही शब्दों में "इतिहास जब नंगा हो जाता है, तो संपूर्ण संघर्ष के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता.... यह पूरा देश अब एक भयंकर दलदल बन चुका है और इसे दलदल बनाने वाले लोग प्राचीरों-परकोटों पर जाकर बैठ गए हैं और दलदल में फँसते, दम तोडते आम आदमी के मरण का उत्सव मना रहे हैं।"[2] समान्तर कहानी जीवन के स्पंदन के साथ चलनेवाली रचनात्मक विधा है और वह पूरी रचनात्मक शक्ति के साथ आम आदमी के नायकत्व को स्थापित कर, भ्रष्ट राजनीतिक और चतुर पूँजीवादी व्यवस्था से संघर्ष कर, सामने आ गयी है । यही संघर्ष समान्तर कहानी की मूल संवेदना है । आगे कतिपय कहानियों पर नज़र डालेंगे । जितेन्द्र भाटिया की कहानी 'शहादतनामा' का नायक यूनियन के एक साहसी और ईमानदार नेता को व्यवस्था और संस्थान के दलालों द्वारा कॉस्टिक टैंक में धकेले जाते हुए देखता है । हत्या का साक्षी बनकर भी, अपने प्रमोशन के कारण, अपनी नौकरी की खातिर, जो हो गया है उसे अनदेखा करके कथानायक अपने को कोई और कदम उठाने से रोकता है । इस तरह आम आदमी के हक की इस समूची लड़ाई को वह अपने टुच्च स्वार्थों के लिए, पराजय और लाचारी में बदलकर रख देता है । सत्ता किस तरह आम आदमी की ईमानदारी और दिमाग को अपने बस में कर लेती है, इसकेलिए 'शहादतनामा' उत्तम उदाहरण है ।

इब्राहिम शरीफ की कहानी 'गणित' में नायक वेतन के रूप में मिले नब्बे रुपयों का बंडल, गुस्से की हालत में, कमरे की दीवार से पटक कर भले ही मार ले, मालिक के विरुद्ध कुछ करने के बदले वह गाली महंगाई को ही देता है ।

---

1. मधुरेश - हिन्दी कहानी का विकास - पृ. 135
2. कमलेश्वर - सारिका - अक्तूबर 74, पृ. 9

फिर घर जाने के उद्देश्य से जोडे गए रुपयों के गणित में बुरी तरह हार जाता है। फिर वह आठ रुपये बीस पैसे की शराब पीकर, मालिक का गला फिर कभी घोंटने के लिए मुल्तबी करके सो जाता है । इस बाज़ारवाद की दुनिया में आम आदमी किस तरह महंगाई से लड़ते हैं इसका सही चित्रण 'गणित' कहानी में हुआ है ।

"समान्तर कहानी में जुलूस, भीड और दिशाहीन आन्दोलनों की भरमार की है । लेकिन सिर्फ इन चीज़ों के सहारे आम आदमी की सच्ची और प्रामाणिक कहानी नहीं लिखी जा सकती।"[1] बाद में जनवादी कहानी आन्दोलन का उदय हुआ । हिन्दी साहित्य में 'जनवाद' की अवधारणा नई नहीं है । प्रकाशचन्द्र गुप्त ने सन् 53 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परंपरा' में कबीर से शुरू करके सारे मध्यकालीन कवियों साहित प्रेमचन्द तक के साहित्य में इस जनवाद की खोज और रेखांकन का कार्य किया था ।"[2] जनवादी कहानी में वर्ग संघर्ष की चेतना को साफ रूपायित किया गया है । टूटे, थके, हारे पात्रों की जगह इसने संघर्षशील, जीवन्त और जुझारू पात्रों की सर्जना की । आनन्द प्रकाश के अनुसार, "जनवाद का स्वर आज की कहानी का मुख्य स्वर है और उसमें यह अहसास स्पष्ट दिखाई देता है कि सामाजिक विषमताएँ कहानी के केन्द्र में होनी चाहिए तथा पाठकों को राजनीतिक दृष्टि से सचेत बनाने की कोशिश की जानी चाहिए।"[3]

जनवादी कहानी आम आदमी के अधिकारों के लिए लड़ती है । धर्म, न्याय आदि के नाम पर जनता के शोषकों के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करती है। जन संघर्ष को कमज़ोर बनानेवाली ताकतों को उजागर भी करती है । जनवादी

1. मधुरेश - हिन्दी कहानी का विकास - पृ. 149
2. मधुरेश - हिन्दी कहानी का विकास - पृ. 150
3. रमेश उपाध्याय - जनवादी कहानी पृष्ठबूमि से पुनर्विचार तक - पृ. 176

कहानीकार अपने को प्रेमचन्द की परंपरा से जोड़ते है । कर्ण सिंह के अनुसार "......पिछले दो दशक में कहानी फिर से व्यापक यथार्थ के बीच गयी और अपना जनवादी स्वरूप गढ़ रही है । उसने पुनः अपने को प्रेमचन्द की परंपरा से जोड़ा है । और प्रेमचन्द की कहानी में लौट आना नहीं, बल्कि प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढाना है।"[1] प्रेमचन्द की यह परंपरा यशपाल, मुक्तिबोध से गुज़रती हुई समकालीन कहानीकार जैसे इसराइल, सूरज पालीवाल, नमिता सिंह, श्री हर्ष, हेतु भारद्वाज, प्रदीप मांडव, रमेश उपाध्याय, विजय कान्त, विजेन्द्र अनिल, उदय प्रकाश, राजेश कुमार, उदय शंकर, रमा कान्त अशफाक, अरविन्द कुमार, रमेश बतरा, सुरेश कंटक, सुरेन्द्र मेनन, रामेश्वर उपाध्याय, असगर वज़ाहत तक से आगे बढ़ रहे है । धीरे-धीरे प्रगतिशील और जनवादी साहित्यकारों ने शोषित पीड़ित समाज के प्रति पक्षधरता का आह्वान कर लघु पत्रिकाओं को एक सार्थक हथियार बना दिया । 'पहल', 'वाम', 'उत्तरार्द्ध', और 'क्यों' जैसी पत्रिकाऐं जनवादी लेखन के लिए सकारात्मक सिद्ध हुईं ।

जनवादी कहानी व्यवसायी साहित्य के विरुद्ध आवाज़ उठाती है । कहानीकार बाह्य और आन्तरिक दोनों तरह के संघर्ष अनुभव करते हैं । कभी कलात्मकता से बढ़कर कला की उपयोगिता पर बल देने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। साहित्य के कला पक्ष को नज़र अन्दाज़ न करने की अपील करते हुए माओ त्से दुङ ने लिखा है कि "हम जिस चीज़ की माँग करते है, वह है राजनीति और कला की एकता, विषय वस्तु और रूप की एकता, क्रान्तिकारी विषय वस्तु और यथा संभव कलात्मक पूर्णता।"[2] इन सभी तत्वों का सम्मेलन जनवादी कहानियों में हुआ है ।

---

1. डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ - हिन्दी कहानी एक अन्तर्यात्रा, पृ. 60
2. माओ से तुड़ग - माओ चुनी हुई कृतिया भाग - 3 चेतान की कला साहित्य गोष्ठी के समक्ष भाषण में संकलित - पृ. 19

जनवादी कहानी में दो चीज़ें प्रमुख हैं - पूँजीवादी आतंक और उसके खिलाफ अवाम का प्रतिरोध । प्रचंड के अनुसार आज की हिन्दी कहानी में जन-पक्ष का विकास तेज़ी से हो रहा है । आज की पीढ़ी के लोग अधिकतर जनवाद से प्रभावित है।"[1] जनवादी कहानियों की बढ़ती हुई लोकप्रियता इन वाक्यों में झलकती है । सुरेन्द्र सुकुमार के अनुसार "आजकल जनवाद के अनेक अर्थ प्रचलित हैं ।.... आज समाजवाद के लिए पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करनेवाला वर्ग ही जनवादी है । और यह वर्ग उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ा हुआ शोषित सर्वहारा वर्ग है । जनवादी कहानी इसी वर्ग की, और इसी वर्ग के लिए है । लेकिन इस वर्ग के लिए कहानी लिखना तभी संभव होगा जब हम उसके बीच रहकर उसके जीवन के अनुभव प्राप्त करे । जनवादी लेखक समाज के मुख्य अंतर्विरोध तो समझते हैं, लेकिन हमारी कहानी को स्थानीय स्तर के गौण अन्तर्विरोधों की और देखना चाहिए और शोषण के तमाम रूपों को कहानी का विषय बनाना चाहिए । इसी से हमारा पाठक सचेत और संगठित हो सकता है।"[2]

अब हम कतिपय जनवादी कहानियों पर नज़र डालेंगें । अमरकान्त की कहानी 'दोपहर का भोजन' में निर्मम तटस्थता के साथ, एक परिवार के माध्यम से, समूचे निम्नमध्यवर्ग के त्रासद अभावों को अंकित किया गया है । एक बेहतर समाज के निर्माण में लेखक की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं "..... समाज में अच्छाई-बुराई की शक्तियाँ सदा विद्यमान रहती हैं । जब अच्छाई निर्बल एवं निष्क्रिय रहती है तो बुराई प्रबल, उग्र एवं हिंसात्मक रूप

1. रमेश उपाध्याय - जनवादी कहानी - पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक - पृ. 181
2. रमेश उपाध्याय - जनवादी कहानी - पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक - पृ. 168

धारण कर लेती है । लेखक ऐसी स्थितियों के प्रति कैसे उदासीन रह सकता है?...”[1]

मार्कण्डेय की ‘भूदान’ कहानी में भूदान आन्दोलन और सरकारी योजनाओं की पोल खोली गई है । जिन अछूतों और पिछडे वर्गों के नाम पर सरकार भूदान देने की बात कर रहा है, वस्तुतः वे ही लोग निरन्तर और पीड़ित रहने के लिए अभिशत होते गए हैं ।.... ‘भूदान कमेटी के मंत्री जी ने तो कब का रामजतन को समझा-बुझा दिया है कि ठाकुर के जिस दान में भूमि मिली थी, वह केवल पटवारी के कागज़ पर थी । असल में तो वह कब की गोमती नदी के पेट में चली गई है...”[2] मतलब लोकतंत्र के नाम पर गरीबों को आज भी बेवकूफ बनाए जा रहे हैं ।

शेखर जोशी की कहानियाँ अपने आस पास के परिचित जीवन की कहानियाँ हैं । ‘दाज्यू’ एक भोले-भाले पहाड़ी लड़के की कहानी है, जो मैदान में आकर एक होटल में नौकरी करता है । मशीनी सभ्यता के आडंबर और मध्यवर्गीय संस्कारों का समीकरण आदमी को किस सीमा तक समस्याओं में डालता है, इसका उत्तम चित्रण इस कहानी में है । ‘बदबू’ कहानी वर्ग-संघर्ष का सही चित्रण के साथ सर्वहारा वर्ग की अदम्य जीवनी शक्ती का भी परिचय देती है । औद्योगिक संस्थानों से संबन्धित शेखर जोशी की ये कहानियाँ उस जीवन से उनके निजी और आत्मीय परिचय का परिणाम है ।

ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में धारणाओं, संस्कारों और सामाजिक संस्थाओं में घटित परिवर्तन को रेखांकित किया है । बहिर्गमन’ कहानी में ऐसे दो

---

1. नई धारा कहानी अंक - पृ. 166
2. भुदान - मार्कण्डेय- पृ. 64

बुद्धिजीवियों पर प्रकाश डाला गया है जिनके लिए अपने देश रहने लायक नहीं लगता है । जिनका चरम लक्ष्य यह है कि जैसे भी हो इस देश की गन्दगी और बू-बास से दूर भाग जाना । इन बुद्धिजीवी की भी कई श्रेणियाँ हैं । कहानी का 'मैं' एक औसत आदमी है और बुद्धिजीवियों की सारी क्रिया कलापों को देखकर अकेले खडा है । "मैं" तो साधनहीन युवा वर्ग का प्रतीक है । वह क्रूर और अमानवीय स्थितियों के आगे जड़ और लगभग संज्ञाहीन-सा है । वह आम आदमी है, जो पूर्ण रूप से हाशिये पर पडा है ।

इसराइल की कहानी 'रोजनामचा' में एक मज़दूर कार्यकर्ता केदार की डायरी के रूप में मज़दूरों के मालिकों और पुलिस से हुए संघर्ष का अंकन है । इस डायरी में अंकित काल कुल चौदह महीने का है । कहानी में मालिकों की चाटुकार तिरंगे झंडे वाली यूनियन, पुलिस और छोटे बड़े दूसरे अधिकारी आदि मिलकर मज़दूरों के विरुद्ध काम कर रहे हैं। मज़दूरों के नेता राजन को उन्हीं लोगों ने कारखाने के बॉयलर में जलाकर नदी में फेंक दिया था । पानी में बहती लाश जल जाने के कारण यह अनुमान लगाना मुश्किल था कि वह किसकी लाश है ? लेकिन मज़दूरों की चेतना हारती नहीं है । पुलिस द्वारा बेरिकोट, लाठी चार्ज, आँसूगैस और गोलियों के बावजूद मज़दूरों का जुलूस आगे निकलता है।

आगे हमें इस बात का विश्लेषण करना है कि इन कहानियों में साम्राज्यवादी और साप्रदायिक विरोधी आयाम किस प्रकार अंतर निहित है । भारत के लिए वैश्वीकरण परतन्त्रता का पैगाम है । अमेरिका, जापान एवं जर्मनी के लिए इसमें उत्तेजक संभावनाऐं हो सकती हैं, लेकिन विश्व के कमज़ोर राष्ट्रों के लिए जैसे

भारत, बंगलादेश, तथा अफ्रीका एवं लातिन अमेरिका के पूर्व-औपनिवेशिक राष्ट्रों के लिए ऐसी ही अपेक्षा रखना ख्याली पुलाव साबित होगा । इनके लिए भौगोलीकरण स्वतन्त्रता एवं प्रगति का सूचक नहीं है बल्कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों पर प्रभुत्व एवं आधिपत्य के माहौल बनायेगा । और उसका लाभ दुनिया के पूँजीवादी राष्ट्रों के गठबन्धन को मिलेगा । अतः यह आवश्यक है कि वैश्ववीकरण की अवधारणा को ही कटघरे में खड़ा कर दिया जाए तथा उससे प्रगतिशीलता का नकाब हटा दिया जाए । फिलहाल इस पर आदर्शों-सिद्धान्तों का मुलम्मा चढ़ा हुआ है । तीसरी दुनिया के देश इसकी वास्तविकता नहीं समझ पा रहे है।

आज तीसरी दुनिया के देश जो सांस्कृतिक मार झेल रहे हैं, वे भी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद स्थापित करने की दिशा का प्रयास कर रहे है । संस्कृति के संदर्भ में साम्राज्यवाद को, भविष्य में सब तरह से हावी होनेवाली प्रभुता का अग्रदूत कहा जा सकता है । पूँजीवाद की संस्कृति थोपकर तीसरी दुनिया की देशों को एक प्रशासित प्रदेश की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है । मामला चाहे भोजन, परिधान, मनोरंजन या हाव-भाव का हो अर्थात् दैनिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं का, जीवन्त संस्कृति की उत्कृष्ट धरोहर साफ नज़र आ जाती है । नई सांस्कृतिक दृष्टिकोण के कारण देशी समझ और संस्कृति हाशिए पर आ गई हैं ।

बाज़ारवाद हमारे सामने सपनों की दुनिया को प्रस्तुत करता है और विज्ञापनों के माध्यम से उसे खरीदने के लिए हमें मज़बूर किया जाता है । हमारी आर्थिक स्थिति के अनुसार हम उसे खरीद नहीं पायेगें, इसलिए आम आदमी को

हमेशा ऋण लेना पड़ता है । इसी तरह हमारा सरल जीवन जटिल बन जाएगा और हमारी सरल संस्कृति बिगड़ने लगेगी । धीरे धीरे आदमी अपनी मानसिक संतुलन खो बैठेगा और शान्ति पाने के लिए उन लोगों के पास जायेगा जो धर्म के नाम पर आदमी को बकरी बनाते हैं ।

कठमुल्लावाद हमारे सारे देश को घेर चुका है । पूँजीवादी व्यवस्था के अंतरविरोधों की वजह ज्यादादर लोगों में धर्म का नशा चढ़ रहा है। मंहगाई, बेकारी, गरीबी, बीमारी से पीड़ित अवाम के लिए यह एक प्रकार की नशा है । भारतीय जनता की एकता को ब्रिटिश शासक अपनी सत्ता के लिए खतरा मानते थे । उन्होंने हिन्दु-मुसलमानों की एकता को तोड़ने की नीति को कार्यान्वित किया था। अंग्रेज़ों ने 'फुट डालो, राज्य करो' की नीति के आधार पर ही शासन संभाला था, मतलब सत्ता को बरकरार रखने के वास्ते साप्रदायिक भावना को शासक वर्ग ने सही सलामत इस्तेमाल किया । कहानियों में इसका सही अंकन हुआ भी है । आज भी यही बदहालत भारत में मौजूद है ।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में कवि मुक्तिबोध का भी सशक्त स्थान है । मुक्तिबोध नई कहानी के दौर के सबसे जागरूक साहित्यकार रहा है । उनकी कहानियाँ तत्कालीन राजनीतिक परिवेश और साँस्कृतिक स्थिति का गहरा विश्लेषण करती हैं । उनके अनुसार "हमारे हिन्दुस्तान की जनता अपने दुख-दर्द की कराह के अलावा निर्णायक रूप से कुछ नहीं कर पा रही है ।"[1] देशी शासकों के आचरणों से उनका दिल पूर्णतः उचट गया था, उन्होंने लिखा - "जो समाज और राज्य नौजवानों को सतत उन्नतिशील पेशा नहीं दे सकता, वह राज्य

1. मुक्तिबोध - नया खून - दिपावली विशेषाँक 1957, पृ. 5

और वह समाज टिक नहीं सकता । इतिहास के विशाल हाथ उसकी कब्र खोदने के लिए बड़ा भारी गड्ढा तैयार कर रहे है।"[1] इसी तरह साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के विरुद्ध मुक्तिबोध ने आवाज़ उठायी । धीरे-धीरे अमरीकी साम्राज्यवाद भारत सरकार से सुविधाऐं प्राप्त कर अर्थतंत्र, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में जो कब्जा कर रहा है, उसका सही चित्रण 'क्लॉड ईथरली' कहानी में हुआ है ।

क्लॉड ईथरली आधुनिक समाज के भीतरी तनावों, उलझनों की सार्थक समझ देनेवाली कहानी है । कहानी की रचना फंतासी शैली में हुई है, फिर भी बिलकुल यथार्थ का एहसास देता है । क्लॉड ईथरली, वह विमान-चालक था, जिन्होंने हिरोशिमा पर बम डाला था, जिसे बाद में पागल खाने भेज दिया जाता है । आत्मा की आवाज़ को सुननेवाले जागरूक समाजचेता व्यक्ति को पागल करार कर दिया जाता है । मुक्तिबोध ने हमारे सामने एक ऐसे ऐतिहासिक पात्र को प्रस्तुत किया है जो अपराध बोध से पीड़ित एवं संत्रस्त है । क्लॉड ईथरली को सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण पागलखाने में डाल दिया जाता है। मुक्तिबोध साम्राज्यवाद के भयानक चेहरा और उससे मानसीक और शरीरीक रूप से पीड़ित जनता को साम्राज्यवादी संस्कृति के सही रूप को समझाने की कोशिश कर रहे है । 'क्लाड ईथरली अणु युद्ध का विरोध करनेवाली आत्मा की आवाज़ का दूसरा नाम है । वह मानसिक रोगी नहीं, अध्यात्मिक अशान्ति का, अध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलन्त प्रतीक है ।"[2] इस प्रकार क्लाड ईथरली की मुक्तिबोधीय कल्पना किसी देश-विशेष की दर्द-भरी कहानी से बढ़कर हम सबकी ज्वलंत समस्या बन जाती हैं ।

---

1. मुक्तिबोध - नया खून (मासिक) नौजवान अंक 1952, पृ. 7
2. गजानन माधव मुक्तिबोध - काठ का सपना - पृ. 13

मुक्तिबोध ने अपनी कहानियों में कुछ ऐसे प्रतीकों का प्रयोग किया है जिससे साम्राज्यवाद और शोषक वर्ग के अमानवीय रूप का पता चलता है । 'ज़िन्दगी की कतरन' कहानी के प्रारंभ में एक तालाब का चित्रण है, जिसमें कूदकर कई लोगों ने आत्महत्या की थी- "यह तालाब नगर के बीचोबीच है । चारों और सड़कें और रौनक होते हुए भी उसकी रौशनी और रवानगी उस सियाह पानी के भयानक विस्तार को छु नहीं पाती है । आधुनिक नगर की सभ्यता की दुखान्त कहानियों का वातावरण अपने वश पर तैरती हवा में उपस्थित करता हुआ यह तालाब बहुत ही अजीब भाव में डूबा रहता है...... इस तालाब में सामाजिक और आर्थिक उत्पीड़न से ग्रस्त लोगों ने जानें दी है ।"[1] यह तालाब भूमण्डलीकरण का प्रतीक है, जिसमें लाखों लोग हर रोज़ डूब मर रहे है ।

'जलना' कहानी की पत्नी घर की गरीबी से विक्षुब्ध है । प्रारंभ में वह पति से नाराज़ है । परन्तु आवेश के उतर जाने पर वह अपनी चूड़ियों को माथे से लगाती है । इस तरह की मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक समस्याओं के द्वारा मुक्तिबोध ने भारतीय आर्थिक स्तर की बिगड़ती हालत को हमारे सामने रखा है। मुक्तिबोध जानता था कि "धनी-निर्धन वर्ग के बीच की खाई गहरी होती जा रही है, उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच की दीवार बढ़ती जा रही है ।"[2]

पूँजीवादी सभ्यता के विरुद्ध भी मुक्तिबोध ने आवाज़ उठायी है । पूँजीवादी व्यवस्था की असंगतियाँ भीतरी और बाहरी संकट पैदा करती हैं। "समझौता' कहानी मनुष्य को पशु बनाए जाने की प्रक्रिया को सारे संदर्भों के साथ सामने रखती है । इस कहानी में उन विशेषताओं का भी प्रभावी चित्रण है

---

1. मुक्तिबोध - रचनावली - 3, पृ. 72
2. मुक्तिबोध - नया खून (मासिक) नौजवान अंक 1952, पृ. 6

जिनके तहत एक आत्मसजग मनुष्य समझौते के लिए मज़बूर हो जाता है । हर मोड़ पर समझौते के रास्ते पर चलने के लिए मज़बूर मानव की ज़िन्दगी को मुक्तिबोध ने हमारे सामने रखा है । आज हमारे देश ने भी साम्राज्यवादी शक्तियों के आगे सिर झुकाया है । समझौता परस्त होने के लिए हम विवश हो गये है ।

'पक्षी और दीमक' कहानी में भी प्रतीकों का सफल प्रयोग हुआ है । साम्राज्यवादी शक्तियों के आगे देश को सौंपकर विकास की प्रतीक्षा करनेवालों का चित्रण इस कहानी में हुआ है । उसकी परिणति उस पक्षी की तरह है जो 'पंख' बेचकर 'दीमक' खरीदता है और एक दिन उडने में असमर्थ हो जाता है। इसी तरह भारत भी अधीश शक्तियों के आगे हारकर ऊपर उठने में असमर्थ पा रहा है ।

कमलेश्वर ने कहानी को एक नई अर्थवत्ता दी थी । जैसे सुरेन्द्र सिन्हा ने सूचित किया है "घोर आत्मपरक्ता, कुण्ठा, घुटन एवं पालायनवादी प्रवृत्ति के घने जाल से हिन्दी कहानी को खुले वातावरण में लाकर नया अर्थ देने का श्रेय बहुत अंशों में कमलेश्वर को है।"[1] कमलेश्वर ने आधुनिकता को वर्तमान विसंगतियों के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है ।

भूमण्डलीकरण की गिरफ्त में पड़ी हमारी दुनिया में विज्ञापन की एक बहुत बड़ी भूमिका है जिसके द्वारा उपभोग संस्कृति को हमारे दिलो दिमाग में बहुराष्ट्र कंपनियाँ थोप रही हैं । कमलेश्वर की कहानी 'गर्मियों के दिन' एक छोटे वैद्य की कहानी है जो एक छोटे कस्बे में रहता है । बडे शहरों में दुकानों पर साइन बोर्ड लगाने की योजना का प्रचलन ज़ोरों पर चल रहा था । वैद्यजी भी

1. डॉ. सुरेन्द्र सिन्हा - नयी कहानी की मूल संवेदना, पृ. 107

अपना औकात बढ़ाना चाहता था । आर्थिक स्थिति पूरी तरह बिगड़ जाने पर भी वह अपनी दुकाननुमा आस्पताल पर साइन बोर्ड लगवाना चाहता है । साइनबोर्ड के महत्व को खूब समझाते हुए वह कहता है - "बगैर पोस्टर चिपकाए सिनेमावालों का भी काम नहीं चलता । बडे-बडे शहरों में जाइए, मिट्टी का तेल बेचने वालों की दुकान पर साइन बोर्ड मिल जायेगा।"[1] आज कल विज्ञापन, विज्ञान की प्रगति, शिक्षा की नयी सुविधाएँ और शहरीकरण के कारण देहात के प्राचीन और परंपरागत व्यवसायों से सम्बन्धित व्यक्तियों की दशा दयनीय हो गयी है । विज्ञापन की नकारात्मक भूमिका पर ही कहानी ज़ोर दे रही है ।

कमलेश्वर की एक और कहानी है 'दिल्ली में एक मौत' । उसमें भी उन्होंने शहरीकरण के कारण लोगों की मानसीकता में आए बदलाव को चित्रित किया है । इस मौत के समाचार सुनकर उनसे परिचित विभिन्न व्यक्तियों की प्रति क्रियाओं इस कहानी में शब्द बद्ध किया गया है । मेक-अप करके साड़ी का चुनाव करनेवाली मिसेज वासवानी, कपड़े आयरन करके तैयार होनेवाला अतुल भवानी, सुट और टाई पहनकर तैयार मिस्टर वासवानी, बूटों को चमकाकर, नास्ता करके दुपहर के भोजन की हिदायतें देकर निकलनेवाले सरदारजी, इन सबको देखकर ऐसा नहीं लगा था कि वे लोग शवयात्रा में शरीक होने जा रहे हैं। आज हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहाँ मानवीयता पूरी तरह सोख गई है और उसकी जगह कृत्रिम ज़िन्दगी की परतें धर चुकी है । कमलेश्वर की कहानी 'नागमणी' में हिन्दी प्रचारक विश्वनाथ का चित्रण है । जीते वक्त अपनी भाषा के प्रति उसने कभी भी, न आर्थिक लाभ देखा न व्यक्तिगत सुख । लेकिन धीरे-धीरे उसे एहसास होने लगता है कि वह आज उस पीढ़ी के साथ जी रहा है जो बिना

---

1. कमलेश्वर - मेरी प्रिय कहानियां -पृ. 58

कारण अंग्रेज़ी बोलने लगता है । अंग्रेज़ी के प्रति लोगों की बढ़ती रुचि देखकर उसे जबरदस्त धक्का लगती है । अपनी भाषा, देश, भोजन आदि अब किताबों में ही रह गये है । भारत की दुरवस्था से बैचेन होकर वह 'हिन्दी मंदिर' बनाने का निर्णय लेता है । 'हिन्दी मंदिर' में लगवाने के लिए उसे गाँधीजी की तस्वीर की ज़रूरत थी । परन्तु आज बाज़ार में गाँधीजी की तस्वीर कहीं नहीं मिलती लेकिन फिल्म अभिनेत्रियों और तीर्थ स्थानों की ढेर सारी तस्वीरें बाज़ार में उपलब्ध हैं । ये बढती उपभोग-संस्कृति और आस्था की प्रतीक है ।

'बयान' कमलेश्वर की एक और प्रसिद्ध चर्चित कहानी है । यह कहानी 'यातनाओं के जंगल से गुज़रते मनुष्य के साथ समान्तर चलनेवाली है।"[1] समाजिक और राजनीतिक विडंबनाओं व नृशंसता की वजह आत्महत्या करने के लिए मज़बूर एक फोटो ग्राफर की कहानी है यह। भ्रष्टाचार का साथ न देने के कारण उसे काम से निकाल दिया जाता है । आज हमारी ऐ.टी क्षेत्र में भी ऐसे ही अत्याचार हो रहा है । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ चाहे तो एक ही क्षण में हमे बेरोज़गार बना सकती हैं । आर्थिक कठिनाईयों का सामना करने के लिए अक्षम आज की पीढ़ी या तो आत्महत्या करती है या गैर कानूनी काम करने लगती है। फोटो ग्राफर ने भी कुछ ऐसा ही किया । उसने अपनी पत्नी की अधनंगी, आर्कषक, उद्दीपक तस्वीरें खींची और एक सस्ते पत्रिका को भेज दी, केवल जीने के लिए । यहाँ कमलेश्वर ने नारी को सिर्फ एक माल या उपभोग वस्तु के रूप में देखनेवाले समाज की बाज़ारीकृत नज़रिए को प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान वैश्वीकृत समाज की माँग है । वर्तमान माहौल ने आम आदमी को कितना पंगु और नपुंसक बना दिया है इसका प्रामाणिक दस्तावेज़ है यह कहानी ।

---

1. कमलेश्वर - मेरी प्रिय कहानियां -भूमिका -पृ. 7

काशीनाथ सिंह ने जब हिन्दी कहानी-क्षेत्र में कदम रखा था, तब अधिकांश कहानीकार अस्तित्ववादी दर्शन की गिरफ्त में फंस गए थे । लेकिन काशीनाथ सिंह ने चोखव, टॉलस्यॉय, प्रेमचन्द की कहानी से प्रेरणा ली । डॉ. पृष्पपाल सिंह के अनुसार "काशी की कहानियों में व्यवस्था द्वारा आदमी की शोषण को ही नहीं उद्यड़ा गया है, मनुष्य -मनुष्य के बीच के ओछे व्यवहार पर भी खूब खुलकर लिखा गया है।"[1] यद्यपि खुले तौर पर साम्राज्यवाद की समस्याएँ उनकी कहानियों में नहीं उभरी हैं, फिर भी कुछ कहानियों में इसकी झलक ज़रूर मिल जाती है ।

'मुसइचा' कहानी में उन्होंने ऐसे एक युवक का चित्रण किया है, जो गाँव के पढे लिखे युवकों में एक है और जिसे हज़ारों की तरह विश्वविद्यालय से निकलने के बाद नौकरी की तलाश करनी पड़ती है । एक दिन वह 'मंत्री' को रास्ते में रोकता है और अपना विद्रोह प्रकट करता है । बोलते बोलते वह रास्ते में है गिर जाता है । यह विद्रोही युवक देश के लाखों बेरोज़गारों का प्रतिनिधि है। बेरोज़गारी भूमण्डलीकृत वर्तमान दुनिया की दयनीय हकीकत है ।

भूमण्डलीकरण के कारण संस्कृति में जो बदलाव आ रहा है, वह समाज के लिए बहुत खतरनाक है । काशीनाथजी की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा' में गाँव से आए अपने बीमार पिता को शहर में बसता बेटा टालना चाहता है । लेकिन पिता पहुँच ही जाता है, शहर में । बीमार पिता अपने गाँव से ममता का रस और मिठाइयाँ ले आता है । लेकिन शहरी बच्चे इसका महत्व को न समझते हुए उसे नाली में फेंक देते हैं । पत्नी पिताजी को सड़ी मिठाइयाँ परोस देती है।

---

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन हिन्दी कहानी - पृ. 184

बेटा पिता को अपने मित्र डॉक्टर को दिखाकर सस्ती दवाएँ खरीदकर व झूठी दिलासा देकर गाँव लौटा देता है । शहर की व्यस्त एवं स्वार्थ परिवेश में लोग पूरी तरह अपने माँ-बाप को भूलने लगे हैं । पहले ऐसी हालत नहीं थी । अब रिश्तों में बदलाव आया है । इसका कारण पाश्चात्य संस्कृति का ही प्रभाव है। काशीनाथ जी की कहानी 'सुख' में भी उपेक्षित वृद्ध जनों की वेदना व पीड़ा का ही चित्रण हुआ है ।

भीष्म साहनी को शुरू से ही प्रेमचन्द और सुदर्शन की कहानियों ने प्रभावित किया है । यानी साहनी की मानसिकता प्रारंभ से ही समाजधर्मी और यथार्थपरक रही है । डॉ. अश्वघोष के इस दावे में पर्याप्त दम है कि "भीष्म आज के कहानीकारों में एकमात्र कहानीकार हैं जो लेखन में सादगी और सहजता से सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं"[1] इसका मतलब यह नहीं है कि वे प्रेमचन्द को एकदम स्थूल रूप में स्वीकारने और आगे बढ़ाने की कोशिश करते है । उनका कथन है कि 'मक्खी पर मक्खी मारने से काम नहीं चलेगा । उनकी सुधार दृष्टि आज हमारी मदद नहीं कर सकती । समस्याओं के जो समाधान उन्होंने दिये हैं, वे आज संगत नहीं रह गए हैं । आज प्रेमचन्द की परंपरा को अधिक वैज्ञानिक और कलात्मक आधार देकर आगे बढ़ाने की ज़रूरत है।"[2]

उनकी एक सुन्दर कहानी है, 'तमग़े । यह कहानी दूसरे विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में युद्ध की मानव विरोधी फ़ासिस्ट प्रवृत्ति का प्रात्याख्यान करती है और सामान्य जनता पर उसके प्रभाव को उद्‌घाटित करती है । इस कहानी का महत्व इसलिए भी है कि यह मुस्लिम पात्रों और उनके परिवेश को बहुत आत्मीयता से

---

1. हिन्दी कहानी : सामाजिक संदर्भ - पृ. 88
2. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना - सं. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकूर - पृ. 12

प्रस्तुत करती है । आज भी साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा प्रायोजित युद्ध की नृशंसता सहने के लिए दुनिया भर की जनता अभिशप्त है । ये हमेशा अपने अधिकार को जमाये रखने के लिए युद्ध का इस्तेमाल करती आई हैं । इराक युद्ध इसका मज़बूत सबूत रहा है । भीष्म साहनी ने इस हकीकत ही कहानी में ज़ाहिर किया है ।

उनकी एक और कहानी है 'मूर्गी का कीमत', जो अहमद नामक युवक की कहानी है । वह वर्तमान भूमण्डलीकृत दुनिया में जीनेवाले व्यक्ति जैसा ही है । अहमद आर्थिक समस्याओं से गुज़र रहा है । वह अपनी बच्ची की खुशी के लिए मुर्गी खरीद लेता है । रास्ते में 'महसूल' के रूप में उसे मुर्गी की कीमत फिर चुकाना पड़ रहा है । आज हमें न चाहते हुए भी चीज़ें खरीदनी पड़ रही हैं। मतलब ऐसी एक 'उपभोक्ता संस्कृति' की गिरक्त में हम फंस गए हैं जिससे बचना असंभव बन गया है ।

भीष्म साहनी की बहुचर्चित प्रसिद्ध कहानी है 'चीफ की दावत। कहानी की शुरूआत में 'माँ' छिपाने की चीज़ के रूप में चित्रित है । बाद में जब कहानी के बेटे को पता चला कि माँ की सिलाई का काम चीफ पसन्द करते है तो वह माँ की बूढ़ी आँखों की परवाह न करके उससे काम करवाने की कोशिश करता है । यहाँ माँ रूपी संस्कृति को अपने फायदे के लिए उपभोग वस्तु बनानेवाले युवा पीढ़ी के हिकमत पर भीष्म ने व्यंग्य किया है ।

हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों में भैरव प्रसाद गुप्त का महत्वपूर्ण स्थान है। 'चाय का प्याला' पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में व्याप्त शोषण की भयावह तस्वीर

उपस्थित करती है और इससे भी महत्वपूर्ण उसका वह अंतर्भूत स्वर है जिससे रह-रहकर संघर्ष और निर्माण की अनुगूँज निकलती है । 'चाय का प्याला' में एक पूँजीपति मालिक के यहाँ लेखक, संपादक, और कलाकार जैसे लोग नौकर हैं जो उसकी चार पत्रिकाऐं निकालते हैं और स्वभाविक ही उसका सारा लाभ मालिक को पहूँचाता है । नौकरों को दोपहर के बाद चाय बनाकर पीने की स्वतंत्रता भी नहीं देते थे क्योंकि मालिक समझता था कि इसमें नौकर बहुत अधिक समय बर्बाद कर देते है । आज की बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नारा भी इस तरह है "ज़्यादा काम करो, और मुनाफा कमाओ।" कहानी में एक ऐसा आदमी का चित्रण है जो मालिक की नज़रों में चढ़े रहने की कोशिश कर रहे हैं और मालिक के काम की, मालिक से भी अधिक चिन्ता खुद उसे है । वह अपनी मालिक को ईश्वर से ज़्यादा चाहता है । वह एक दिन बीमार पड़ जाता है । वह मालिक से पचास रुपया माँगता है तो दस रुपया देकर मालिक बात को टाल देता है । जब मालिक को पता चलता है कि उसे टी.बी है तब चाय के प्याले को हैंडिल से इस तरह फेंकता है जैसे मरे हुए चूहे के पूँछ पकड़कर फेंक रहा हो । आज की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी युवा पीढ़ी को यंत्रों की तरह काम करवाती हैं नहीं तो काम से 'हायर-फायर' करती हैं । उनका नज़रिया मुनाफे पर अधिष्ठित है। मानवीयता पर नहीं ।

'सतीश जमाली' की कहानी 'पुल' में एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर लेखक हमारा ध्यान खींचता है कि बड़ी बड़ी ईमारतें और नई-नई कॉलेनियाँ बन रही हैं । लेकिन उनके निर्माता मज़दूरों को अपना कोई ठिकाना नहीं है । उन्हें तो नगर के बाहर जाना पडता है । अपनी झोपड़ियों में से फिर से उन्हें भिखारी

और अपाहिज बनकर उन्हीं कॉलोनियों और बड़ी-बड़ी इमारतों में माँगना जाना पड़ता है । यहाँ पुल पूरे मज़दूर वर्ग का प्रतीक बन जाता है, जिसकी एकमात्र सार्थकता झोंपड़ियों से महानगर को जोडकर स्वयं अपने रहने की सुविधा औरअधिकार को खो देना है । दरअसल हकीकत यह है कि पूँजीवाद व्यवस्था जब भारतीय जनता के बीस प्रतिशत की ज़िन्दगी बना रही है तो अस्सी प्रतिशत लोगों की ज़िन्दगी को उजाड़ देती है ।

पूँजीवादी व्यवस्था से क्या दलितों की ज़िन्दगी में कुछ बदलाव आया है ? शोषित और दलित वर्ग की समस्या सैकड़ों वर्षों तक सामाजिक स्तर की समस्या रही है । किन्तु अनेक बरसे बीतने के बाद भी दलितों की दोयम दर्जे की समस्या अहं सामाजिक समस्या बनी रहती है । जनसत्ता (20 जुलाई 1996) में पृ. 5 पर “बिहार में दलित महिलाएँ सामन्तों की यौन हिंसा का शिकार’ शीर्षक की खबर से पता चलता है कि कई ग्रामीण इलाकों में तो यह यौन शोषण एक प्रथा का रूप ले चुका है । किसी दलित या गरीब युवती का विवाह तय होने के बाद डोली चढ़ने से पहले उसे इलाके के ज़मीन्दार की हवस का शिकार बनना पड़ता है ।

दलित-जीवन पर लिखी गयी कहानियाँ दलितों की दबे-शोषित जीवन पर प्रकाश डालती है । प्रेमचन्द की कहानी ‘सद्‌गति’ में दुखी चमार अपनी पुत्री की सगाई के लिए पण्डितजी के पास मुहूर्त निकलने जाता है । पण्डितजी शाम तक उससे झाड़ू, लिपाई, लकड़ी चीरने, भूसा दोने आदि काम करवाते हैं, वह भूखे पेट काम करते-करते मर जाता है । कोई उसकी लाश उठाने के लिए तैयार नहीं होता है और पण्डितजी सुबह-सुबह उस लाश को बाहर फेंकते है । ‘ठाकुर का

कुआँ' में गाँव में हर जाति के अलग कुएँ होने की बात को बेहूदा सिद्ध किया गया है । कुएँ में गन्दगी पड़ने से चमार लोग विवशता में आकर गन्दा पानी पी रहे है । दलितों को अपनी कुएँ से वे लोग पानी नहीं देगे क्योंकि उनका विश्वास है कि उससे पानी अशुद्ध बन जायेगा । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों द्वारा दलितों की व्यथा की प्रभावपूर्ण चित्रण किया है ।

तथाकथिक उच्च जातियों की तरफ से दलितों का आर्थिक शोषण एक लम्बी परम्परा रहा है । रामदरश मिश्र की रचना 'सर्पदंश' में प्रधान, खेती करने खेत गोकुल को दे देता है । गोकुल के श्रम से जब खेत उभरता है, तो प्रधान का मन ललचा जाता है। वह अपना खेत वापस लेता है । गोकुल भूख में उसी खेत से रात में मकई की बालियाँ लेने जाता है । प्रधान द्वारा उसे चोर कहने पर वह फसल पर अधिकार व्यक्त करता है, तो प्रधान के गुण्डे उसे मार डालते हैं।

दलित जीवन पर लिखी गयी अधिकांश कहानियाँ ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखित हैं । जाति-पाँत की श्रृंखलाओं के बन्धन गाँवों में ही अधिक कठोर है । ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बिरम की बहू' में सन्तानोत्पत्ति में अक्षम ठाकुर बिरम की बहू एक अछूत युवक से सहवास करके गर्भ धारण करती है । किन्तु बाद में ऐसा व्यवहार करती है, जैसे उसे जानती-पहचानती न हो । दलित शोषण को व्यक्त करनेवाली अब्दुल बिस्मिल्लाह की एक प्रमुख कहानी है "खाल खीचने वाले"। मृत बैल की खाल खींचकर बेचने के लिए कई मील तक सिर तक ढोकर ले जानेवाले भूनेसर चमार को चमड़े का व्यापारी बडे मियाँ केवल पन्द्रह रुपये थमाता है; जो बाज़ार मूल्य से लगभग आधा है । भूनेसर

कड़कड़ाते नोटों को मुट्‌ठी में क्रोधवश कस लेता है, किन्तु विरोध नहीं कर पाता। वैश्वीकरण की इस विकसीत दुनिया में दलितों की ज़िन्दगी ज़रूर दयनीय ही हो सकती है ।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों का संसार भारतीय ग्राम जीवन के प्रति एक हद तक रोमानी मोह से ग्रस्त हैं । उनकी कहानियाँ गाँवों के सांस्कृतिक एवं लोक जीवन को गहराई से छूती और बाँधती हैं । कहानियों में एक ओर रेणु आधुनिकीकरण की विडंबना के रूप में शहर की ओर पलायन करते ग्रामीण युवकों को अंकित करते हैं, तो दूसरी ओर ग्राम संस्कृति के प्रति उनकी गहरी ललक व्यक्त करते है । आज भारत की सरकार ने उद्योगों की नियति को पूरी तरह बाज़ार की ताकतों पर छोड़ दिया है, इसका फायदा सिर्फ पूँजीपतियों को ही मिलता है । मज़दूर सिर्फ शहर की बाहरी चमक दमक में इस बात को भूल रहे हैं कि मज़दूर समाज आज मुसीबत में है । रेणु, की कहानी 'विघटन के क्षण' में शहर आकर रिक्शा खींचने और दरबानी करनेवाले लोग हैं, जो गाँव लौटकर शहरी विकास और समृद्धि की कहानियाँ खूब अकड़ के साथ सुनाते है, लेकिन उन लोगों के बीच चुरमुनियाँ और विजया जैसे लोग भी हैं, जो विघटन के विकल्प के रूप में अपने गाँव के रंगा-रंग आकर्षण को गहरी ललक के साथ देखती है और याद करती है । शहर की औद्योगिक हवा से निकलकर गाँव की सादगी और करुणा की पृष्ठभूमि में वापस चलने की प्रेरणा रेणु की कहानियों में है ।

नई कहानी का ज़माना राजनैतिक मोहभंग का दौर भी रहा है । उस समय अवसरवादी तत्व और ढोंग राजनीति पर हावी होते गए । वामपंथी राजनीति के

आपसी मतभेदों ने लोगों को दूर तक निराश किया । रेणु की कहानियों में अनेक ऐसे पात्र हैं जो यह महसूस करते हैं कि दुनिया अब रहने लायक नहीं रह गई है। 'रेखाएँ: वृत्तचक्र' का शिवनाथ सोचता है"...... इस दुनिया अर्थात् इस विराट् वेश्यालय में मैं ही सबसे बड़ा पुण्यात्मा हूँ क्योंकि मैं ही इसे समाप्त करना चाहता हूँ..."[1] इसी तरह राजनीति के बिखराव और विघटन रेणु की कहानियों में है । मधुरेश के अनुसार "परसाई के बाद कदाचित् इस दौर में रेणु अकेले लेखक है जो व्यंग्य की सर्जनात्मक संभावनाओं का उपयोग करते है ।"[2]

नई कहानी में हरिशंकर परसाई की भूमिका विशेष महत्व रखती है । "भोलाराम का जीव' देश की समूची व्यवस्था पर एक रनिंग-कमेंट्र जैसी है । भोलाराम एक ऐसे देश का वासी है जहाँ दोस्तों को भेजी गई चीज़ें रेलवे वाले उड़ा लेते हैं और पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं । यहाँ राजनीतिक दलों के लोग विरोधी नेता को उठकर बंद कर देते हैं ताकि विरोधी आवाज़ को दबाया जा सके । प्रस्तुत कहानी में परसाई ने दफ्तरी-तंत्र का बेनकाब किया है। रिटायर होने के पाँच वर्ष बाद भी भोलाराम की पेंशन नहीं खुलती है । उनकी अर्जियाँ उडती फिरती हैं क्योंकि उनपर 'वजन' रूपी रिश्वत नहीं रखी गयी है । अपना नाम सुनकर पाँच दिन पूर्व मरे भोलाराम का जीव उस फाइल से बोलने लगता है ।

आज की दुनिया की ज़िन्दगी सिर्फ पैसे पर आधारित है । रिटायर होने के बाद जब कमाई बन्द हो जाती है तब आदमी फालतू चीज़ बन जाते हैं । उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' इस तथ्य पर प्रकाश डालती है । रिटायर होने के

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - अग्निखोर - पृ. 33
2. मधुरेश - हिन्दी कहानी का विकास - पृ. 92

बाद जब गजाधर बाबू वापस घर आ जाता है, तब उसके प्रति लड़कों, बहुओं और जवान बेटी की असहिष्णुता और उपेक्षा बढ़ जाती है । कमरे में पडी, जगह को घेरती गजाधर बाबू की चारपाई को उसकी पत्नी बाहर निकलवाती है, इसी तरह अपने पति के साथ उसके पैंतीस साल का नाता फालतू और बैकार बन जाता है ।

साधारण नौकरी से असन्तुष्ट कतिपय लोगों के मन में यह विचार आता है कि बंबई जाकर फिल्म-जगत में अपना भाग्य अजमाएं । कुल भूषण की कहानी 'पहली सीढ़ी' में मीरा सोचती है कि बंबई में अपनी कला-प्रिय व्यक्तित्व और अभिरुचियों के लिए अपार संभावनाएँ हैं । महेश भी लेखक और निर्देशक के तौर पर एक सुखी और समृद्ध जीवन के सपने देखता है । बंबई में इधर-उधर भटकने के बाद वे लोग कांतिभाई के चंगुल में फँस जाते हैं । काम के सिलसिले में प्रभावशाली लोगों से मिलवाने के बहाने कांतिभाई मीरा को लेकर घूमता है और महेश गहरे मानसिक क्लेश और संताप की स्थिति में उसकी प्रतीक्षा करता है । कांतिभाई मीरा को आश्वासन देता है कि वह खुद एक फिल्म बनायेगा जिसमें बुरी औरत की एक महत्वपूर्ण भूमिका उसे देगा । एक पति निष्ठ पत्नी से बुरी औरत तक की मीरा की यात्रा से कुलभूषण ने वर्तमान दुनिया की चमक-दमक में ज़िन्दगी और ज़िन्दगी की सादगी को भूलनेवालों की त्रासदी पर प्रकाश डाला है ।

से.रा. यात्री की कहानी 'अँधेरे का सैलाब' में आज की दुनिया की अमीर और गरीब की रेखा को गहराई से हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है । एक ओर

उद्योग विभाग के इंजीनियर की कोठी पर मिठाइयों के बेहिसाब डिब्बों और दूसरी चीज़ों, उपहार के रूप में आई हैं, यानी एक ओर चमक-दमक की दीवाली है । तो दूसरी ओर भयानक की बीस रुपए की दीवाली है; जिसमें से बारह रुपये की मिठाई दीवाली के पहले ही खरीद कर बच्चों से छिपाकर रखा गयी है । बाहर की चका चौंध और भेंट-सौगात वाली दीवाली की तुलना में 'मैं' के घर की दीवाली अंधेरे का सैलाब बनकर रह जाती है । दीवारों पर दीए रखने के बाद, रोशनी दिखाने के ख्याल से जब 'कथानायक बच्चों को पुकारता है तो अंदर से कोई निकल कर नहीं आता "…. अंदर जाकर देखा तो पापा के दोनों बच्चे फर्श पर टेढे-बेंगे होकर पडे थे और पसीजी हुई मिठाई के टुकड़े उनकी मुट्ठियों में जकड़े हुए थे….. नए कपडों में सजी उस नन्हीं-सी मासूम बच्ची को गोद में उठाकर उसने लाख जगाने की कोशिश की पर उसने आँखें एक क्षण के लिए मुलमुलाकर फिर बन्द कर ली"[1] लगता है शायद वह बच्ची उसके भविष्य रूपी अन्धेरे को अपना चुकी है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सबसे निचले स्तर पर रहनेवाले मज़दूर वर्ग की दयनीय स्थिति मेहरुन्निसा परवेज़ ने कहानी 'आतंक भरा सुख' में प्रस्तुत की है। प्रस्तुत कहानी में छोटे छोटे बच्चोंवाली नारी चित्रित है जो शराबी और नाकारा पति से दुखी और परेशान है । वह नाबालिग लड़के को नौकरी या मज़दूरी करने के लिए डांटती-डपटती है, क्योंकि उसका बाप कोई काम करता नहीं कहीं अद्धा चढाए पड़ा होगा । भूख से रोते-बिलखते बच्चे हैं जो मारकर भगाए जाने पर किसी दूसरे के दरवाजे पर खडे ललचाते होंगे । वह ज़िन्दगी इतनी हार चुकी है कि एक दिन जब उसे खबर मिलती है कि भौंसो वाला मारवाड़ी मर गया है ।

1. सारिका - अक्तूबर - 74, पृ. 23

तब वह डरती-डरती अर्थी के पीछे जाती है, अर्थी उठानेवाले जो पैसे नीचे फेंकते है तो उसे छुपके से उठाती है । "... अर्थी पर एक भी फूल नहीं था । पीछे के लोग आपस में बातें करते सायंकल पकड़े जा रहे थे । काफी दूर जब अर्थी चली गई तो उसने प्रसन्नता की मीठी ललक से भरकर जेब को थपथपाया और हाथ डालकर सिक्के निकाल दिये । उसने गिनना शुरू किय़ा, पूरा डेढ़ रूपया था । सारा दिन मेहनत करने पर इतना ही उसे मिलता..."[1] भूमण्डलीकरण की वर्तमान दुनिया में मुनाफे और विकास की बातें बार-बार कही जाती हैं, लेकिन बेचारे गरीबों को पूरी तरह भूली जाती है । जिन्हें विकास की नहीं दो जून रोटी की ज़रूरत है ।

जनवादी कहानीकार ज्ञानरंजन की कहानी 'यात्रा' में नायक मतलबी दुनिया की एक सच्चाई को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है कि आज के मानव को ज़्यादा भावुक नहीं होना चाहिए। यात्रा कहानी के नायक को पिता की मृत्यु का सच्चा कारण बताकर छुट्टी लेने में शर्म लगती है, वह बहन की शादी का बहाना बनाकर छुट्टी लेता है । उसके बाद घर तक की उसकी लंबी यात्रा में वह आपसी रिश्तों को तौल-परखकर नया संदर्भ देने की कोशिश करता है । उसे लगता है कि दूसरों के साथ अपने दुख की चर्चा का एक ही अर्थ है, उससे सहानुभूति की माँग । पहले एक बार जब डाक्टरों ने उसकी माँ को टी.बी बताई थी, वह भावुक और परेशान हुआ था, "बाद में मैंने जाना कि उस समय दुख ने मुझे कितना भावुक यानी बेहूदा कर दिया था ..."।[2] और अब उसे इस बात से पर्याप्त संतोष मिलता है कि स्थितियों में बुनियादी परिवर्तन घटित हुआ है - "मैं समझता हूँ अब कहीं भी लोग फालतू भावुक नहीं है ....।"[3] आज की बाज़ारी

1. सारिका - नवंबर - 74, पृ. 33
2. ज्ञानरंजन - यात्रा - पृ. 62
3. वही - पृ. 56

दुनिया में भावुक होना सबसे बड़ी कमज़ोरी है ।

अखिलेश की कहानी 'शाप-ग्रस्त' के प्रमोद वर्मा का सबसे बड़ा दुख उसकी आत्मा का खो जाना है । जितना वह सुख की चाह में भटकता है, उतना ही दुखी होता है । व्यवस्था के मकड़जाल, रिश्वत, हिस्सा और कमीशन, से बाहर निकलकर ईमानदारी और सादगी के साथ जीवन जीने की उसकी आकांक्षा उसके लिए शाप बन जाती है । अच्छा खासा, अर्थ में व्यवस्थित और सुखी परिवार की धुरी से हटकर शाश्वत अस्वस्थता के शाप से ग्रस्त हो जाता है ।

ज्ञान प्रकाश की कहानी 'दिनचर्या' का नायक अपने बच्चे को मुंह से फुलाने वाले और गैस के गुब्बारे का अंतर समझाने की कोशिश में सोचता है "मैं सोचता हूँ इसे कैसे समझाऊ कि ये रंग-बिरंगे गुब्बारे, ज्यों-ज्यों समय बीतता है, पिचकते जाते हैं - या कठोर वस्तुओं का स्पर्श पाकर फूट जाते हैं .....जो गैस के गुब्बारे होते हैं - ज़रा सी ढील पाते ही बहुत ऊँचाई तक उड जाते हैं और उनकी ओर केवल हसरत भरी निगाहों से देखा जा सकते है ।"[1] विडंबना यह नहीं कि स्वयं गैस का गुब्बारा नहीं बना जा सकता, बिडंबना यह है कि गैस भर जाने के बाद वह अपने से नीचे वाले 'गुब्बारों' के प्रति क्रमशः निर्मम और 'क्लास' होता जाता है । यहाँ मुंह से फुलाने वाले गुब्बारे मज़दूर वर्ग के प्रतीक है और गैस के गुब्बारे पूँजीवादियों के, गैस उपनिवेशवादी दुनिया का सूचक है। उपनिवेशवादी दुनिया की ताकत के साथ ऊपर उड़नेवाले पूँजीपतियों के मन में नीचे दिखनेवाले गुब्बारों रूपी मज़दूरों के प्रति निर्ममता ही है । मज़दूर वर्ग, ऊपर उडनेवाले गैस की गुब्बारों के सिर्फ देख सकते हैं, छू नहीं सकते । लोग

1. ज्ञान प्रकाश -अंधेरे का सिलसिला - पृ. 30

उपभोक्तावाद की बाढ़ को अपनी भावात्मक ढाल पर कब तक रोक सकते हैं ? आज बाज़ारवाद अपने समय का सच है । इस सच का परिणाम अमीर और गरीब का यह फर्क ही है।

पूँजीवाद और सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध पंकज विष्ट, उदय प्रकाश, स्वयं प्रकाश जैसे बहुत सारे श्रेष्ठ कहानिकारों ने आवाज़ उठायी है, जिसका विस्तार रूप से और प्रभावपूर्ण रूप से चर्चा तीसरे अध्याय में होगी ।

अब इन कहानियों में जाहिर साप्रदायिकता का विवेचन होगा । साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा हथियार है साप्रदायिकता । हिन्दुओं के धार्मिक एकीकरण के पीछे उपनिवेशवाद ने एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक का काम किया था । सामाजिक पुनर्रचना एवं सांस्कृतिक आधिपत्य के लिए उपनिवेशवाद ने जो प्रयास किए उसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं में एक सामुदायिक चेतना जागृत हो गई । सामाजिक एवं धार्मिक आचरणों में उपनिवेशवादियों के हस्तक्षेप से सांस्कृतिक असंतोष पनपने लगा । इसी तरह सांप्रदायिक शक्तियों में पुनः चेतना जागी । मुसलमानों के बीच भी सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया चल रही थी । मुसलमान बुद्धिजीवी वर्ग, अपने समुदाय के आर्थिक व सामाजिक पिछडेपन के प्रति सचेत था । इसके साथ ही साथ उन्हे इस संबन्ध में आशंकाएँ थीं कि अगर राजनीतिक सत्ता बहुसंख्यक के हाथ में आ जाती है तो उनके समुदाय के हितों पर प्रतिकूल असर पडेगा । इसी तरह एक दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता नफरत में तब्दील हो जाएगी ।

प्रेमचन्द के शब्दों में "साप्रदायिकता हमेशा संस्कृति की दुहाई दिया

करती है.... हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को भी । दोनों ही अपनी संस्कृति को अभी तक अछूती समझ रहे हैं । वे यह भूल गये हैं कि अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं अन्य संस्कृति।"[1] सामाजिक प्रतिबद्धता से लैस कहानिकारों ने साप्रदायिक दंगों के सभी पक्षों को कहानियों में उभारा है । आगे हम कुछ कहानियों पर नज़र डालेंगे ।

भीष्म साहनी की 'झुटपुटा' कहानी दिल्ली में 1984 में घटित दंगों की पृष्ठभूमि पर रचित है । सुबह कर्फ्यू में ढील के कारण लोग दूध की लाइन में खड़े हैं । काफी देर हो गयी है । दूध का टैंकर नहीं आता । कोई भी ड्राइवर अपनी जान जोखिम में डालने को तैयार नहीं है । आखिर एक सिख ड्राइवर टैंकर लेकर आता है । लाइन में खड़े उसके मित्र द्वारा पूछने पर वह कहता है कि बच्चे तो भूख से तड़प रहे होंगे, इसलिए वह अपनी जान दॉव पर लगाकर दूध देने के लिए आया। यहाँ नफरत की आग में भी मानवीयता को दर्शाने का प्रयास भीष्म साहनी ने किया है ।

'अमृतसर आ गया' कहानी में भीष्म साहनी साप्रदायिक उन्माद के उद्भव और विस्फोट की समूची प्रक्रिया को उद्घाटित करते हैं । रेल गाँडी जब स्टेशन से रवाना होती है तो डिब्बे में वैसी कोई बात नहीं है । हंसोड़ पठोनों द्वारा मरियल से दिखते हिन्दू बाबू की खिंचाई में कहीं कोई दुर्भावना नहीं है । पंजाबी जीवन का बेतकुल्लफ खुलापन उनके पोर-पोर में बसा है । पोटली खोलकर खाते समय वे मांस की बोटी और रोटी उसकी ओर बढ़ाकर खाने का आग्रह

---

1. डॉ. अशोक भाटिया - समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास -पृ

करते हैं ताकि वह अपनी बीवी को खुश कर सके और उसके न खाने पर हंसते हुए छिपकर खा लेने का सुझाव देते हैं ताकि किसी को पता न चले । इस सारी बातों में उनके व्यवहार का खुलापन ही प्रकट होता है । बाबू के लिए कई बार 'खंजीर का तुख्म' कहना गाली न होकर एक तकिया-कलाम जैसा है जिसका ताल्लुक दुर्भावना से न होकर आदत से है । माला जपनी बूढ़ी औरत और डिब्बे में चढ़नेवाले हिन्दू परिवार से शहर में हुए दंगे की बात सुनकर डिब्बे में जैसे एकाएक गर्म और संक्रामक हवा का पहला झोंका आता है । शहर में दंगे में लगाई गई आग की लपटें जो गाड़ी में भी दिखती हैं और जगह-जगह दंगाइयों की भीड़ का शोर डिब्बे में एक विशेष प्रकार का तनाव पैदा कर देता है । थोड़ी देर पहले का हंसी मज़ाक वाला माहौल एक बोझिल सन्नाटे में तब्दील हो जाता है । थुल थुल शरीर वाले सरदारजी पठानों के पास से उठकर हिन्दू मुसाफिर के पास बैठ जाते हैं और नीचे बैठा हुआ एक पठान ऊपर चढ़कर अपने सार्थियों में जा मिलता है । डिब्बा बाकायदा हिन्दू और मुसलमान में बंट जाता है । जैसे ही गाड़ी अमृतसर की ओर बढ़ती है, उस मरियल से बाबू में कोई जिन्न जाग जाता है । जब पठानों के लेकर उसकी कटुता अपनी प्रकृति में पूरी तरह 'हिन्दू' है । उसके चेहरे में एक बीभत्स मुसकान थी, जो साप्रदायिक उन्माद का प्रतीक बन जाता है ।

विभाजन ने सिर्फ देश में ही नहीं, दिलों में भी 'पाकिस्तान' बना दिया है इस तथ्य का चित्रण कमलेश्वर ने अपनी कहानी 'कितने पाकिस्तान' में किया है। जिसका विकास बाद में उपन्यास के रूप में हुआ है । मेंहदी के फुल-सी सुकुमार बन्नों, जिसकी असली नाम सलीमा है मंगल की प्रेमिका थी । पर धर्म दोनों को

अलग करता है । मजहब की अन्धीदीवारों के बीच कसमसाती अपनी इच्छाओं को दबाकर दोनों जीते हैं । कहानी के अन्त में वेश्या बनने के लिए बन्नो मज़बूर हो जाती है । धर्म किस तरह नृशंसता का साधन बन जाता है इसका चित्रण इस कहानी में है ।

सांप्रदायिकता के भयानक चेहरे को उजागर करनेवाली मोहन राकेश की एक सशक्त कहानी है 'मलबे का मालिक'। बँटवारे के सन्दर्भों को कहानी में अत्यन्त मार्मिकता से उठाया गया है और विसंगतियों के बीच उलझी मानवीयता के सवाल को पूरी शक्ति के साथ संवेदित किया गया है । मलबे पर गुर्रानेवाले कुत्ते और रक्खे पहलवान में कोई अन्तर महसूस नहीं होता है । 'गनी' तो मानवीयता का प्रतीक है । ज़िन्दगी और समाज से मिले त्रासद अनुभवों के बाद भी उसे रक्खे पहलवान पर विश्वास है । आज भी देश में पनपते अराजक और हिंसक शक्तियों के आतंक के बीच भी, हम 'गनी' जैसे लोगों में अन्तर्निहित मानवीयता की तलाश ही कर रहे है ।

महीप सिंह की कहानी 'सहमे हुए' में साप्रदायिक समस्या के लगभग सभी पहलूओं को हम एक साथ देख सकते है । साथ-साथ रहनेवाले लोग भी एक दूसरे को शंका से देखते है । आम आदमी की तो बात छोड़िए, पढ़े-लिखे, नौकरीपेशा, साथ-साथ रहनेवाले लोगों को भी सांप्रदायिकता के किटाणु किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं, इसका चित्र पाँच पात्रों के ज़रिए महीप सिंह दे रहे हैं। जनाब इकबाल हाशमी, सरदार हरजीत सिंह, मि. जॉन लोबो, पं. रधुनाथ शर्मा आदि के बीच आने जाने और खानपान की सारी उदारता के बावजूद, वे एक-

दूसरे से शंकित है। हरजीत का डर है कि हाशमी 'बीफ' न खिला दे तो हाशमी का यह डर है कि हरजीत 'पोर्क' न खिला दे । चारों तरफ से आने वाले दंगों के समाचारों से इनकी शंका और बढ़ जाती है । "लंच टाइम में खाना तो सबका साथ-साथ चल रहा है , जगह भी वही है, खाना भी पहले जैसा ही है, पर पता नहीं क्यों एक-दूसरे के लंच बाक्स से चीज़ लेना लगभग बन्द-सा हो जाता है । वर्मा अपना सलाद उसी तरह लाता है और कागज़ पर फैलाकर मेज के बीचों-बीच रख देता है । लोग बडे अनमने ढंग से उसमें से एकाध टुकड़ा उठा लेते हैं । पर खाना सभी लोग अपने-अपनो लंच बाक्स से ही खाते रहते हैं....। जैसे दूसरे के खाने में ज़हर मिला हुआ हो ।"[1]

एक हिन्दू के मन में मुसलमान के प्रति जो पूर्वाग्रह हैं, उसे पं. रघुनाथ शर्मा के कथन में देखा जा सकता है "पाकिस्तान बन गया पर पाकिस्तान ज़िन्दाबाद के नारे अब भी उसी तरह लग रहे हैं, जैसे अभी तक और पाकिस्तान बनना हो । मस्जिदें गोला-बारुद और चाकू-छूरों की भंडार बनी हुई हैं । पाकिस्तानी एजेण्ड सरेआम दंगे करवा रहे हैं । दुख की बात यह है कि पनाह उन्हें यहाँ के मुसलमानों से मिल रही है । दंगाई खुलकर पुलिस और फौज पर हमले कर रहे हैं और इसमें मशीनगनों और आटोमेटिक राइफलों का प्रयोग हो रहा है - यह हथियार इन्हें कहाँ से मिल रहे हैं।"[2] इस आपसी नफरत न केवल हिन्दुओं और मुसलमानों को ही नहीं बांटा है, हिन्दू धर्म के लोग भी आपस में बंटे हुए हैं । ऊँच-नीच, छूआ छूत आदि के विचार इसी के परिणाम हैं। यदि हिन्दुओं की इस भावना का शिकार हाशमी है तो उससे कम वर्मा भी नहीं । वर्मा के विचार में "जी हाँ, इसी सम्मान के लिए वह सामूहिक रूप से घृणा करता है -

---

1. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्‌भाव की कहानियाँ - पृ. 146
2. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्‌भाव की कहानियाँ - पृ. 146

व्यक्ति से नहीं, बल्कि एक पूरे समूह से.... उसे गाँव में बसने नहीं देता, कुंए से पानी नहीं भरने देता, मंदिर में नहीं जाने देता, उसकी छाया मात्र पड़ जाने से यह अशुद्ध हो जाता है ।"[1] हरजीत की समस्या भी इसी तरह की है । एक तो वह खुद माइनारिटी कम्युनिटी का है, ऊपर से उसका मकान मुसलमानों के इलाके में है । उसके परिवार के लोगों पर दोहरा खतरा है । एक तरफ तो वह हिन्दुओं से आशंकित है तो दूसरी तरफ मुसलमानों से । लेखक की मान्यता है कि सांप्रदायिक झगड़ों के बीज हमारी ज़मीन में पता नहीं कब और किसने बो दिए थे, जिसके परिणाम स्वरूप हम लगातार लडते जा रहे हैं, लेकिन सच बात यह है कि यह आम जनता की लड़ाई नहीं है - "मुझे लगता है सारी लड़ाई ताकत और दौलत की लड़ाई है । आदमी सत्ता हथियाना चाहता है । अब इस लड़ाई को चाहे धर्म के नाम पर लड़ो, चाहे देश के नाम पर लड़ो, चाहे किसी चमकदार वादे के नाम पर लड़ो...... बस लड़ो..... लड़ो... और लड़ते चले जाओ।"[2]

निश्तर खानकाही की कहानी "ज़लता हुआ सवाल' वर्तमान समाज में फैली हुई सांप्रदायिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में कुछ मूलभूत प्रश्न उठाती है । सौहार्द्रपूर्ण ढंग से साथ-साथ रहने वाले वामन टीकरी नामक कस्बे के हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई तनाव न था । हर्षौल्लास से एक-दूसरे के तीज-त्योहारों में सक्रिय हिस्सेदारी करते थे । पर अब स्थिति बदल गयी है । रामलीला की झांकियों के मार्ग को लेकर यहाँ पहली बार सांप्रदायिक दंगा हुआ । दूसरी बार मुहर्रम के जुलुस के मार्ग के कारण दंगा हुआ । बालक अब्दाल को उसके अब्बू रामलीला का जुलूस देखने जाने नहीं देता है । अब्दाल परेशान है कि वही अब्बू जो पहले खुद रामलीला के जुलूस में शरीक होते थे, राम के प्रति श्रद्धा रखते

---

1. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ - पृ. 143
3. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ - पृ. 143

थे, आज उसे क्यों रोक रहे हैं ? वह यह भी नहीं समझ पाता कि "राम और हुसैन को कुछ विशेष मार्गों तक सीमित कर दिए जाने का अर्थ क्या है ? क्या सत्य के लिए कर्बला के मैदान में जेहाद करनेवाले हुसैन और चौदह वर्ष के वनवास की कुर्बानी देनेवाले भगवान राम, मोहम्मद अली रोड और शिव मन्दिर मार्ग के बंटवारे पर एक-दूसरे के विरुद्ध भिड़ सकते हैं।"[1]

रात में जागकर अब्दाल अनेक बातें सोचता है । उसे माँ की बताई हुई बात याद आती है कि यह धरती गाय के सींग पर टिकी हुई है । रजनीश के बापू ने भी उसे यही बात बताई थी । वह सोचता है कि "जब रजनीश के बापू और अब्बू की गाय एक ही है तो राम और हुसैन के मार्ग अलग-अलग क्यों हैं?"[2] अब्दाल का बाल-मन इन प्रश्नों का उत्तर नहीं तलाश पाता है । वह चुपके से उठकर जुलूस में पहूँचता है और भक्त की मुद्रा में राम चरणों में झुक जाता है तो कोई उसका हाथ पकडकर पीछे की ओर खीचता है, वह और कोई नहीं उसके अब्बू ही थे । अब्दाल दुखी हो जाता है और ये दुख भविष्य की सांप्रदायिक एकता पर होनेवाले 'क्षीण' का प्रतीक है ।

नफीस आफरीदी की कहानी 'फसाद' में मुसलमान लड़के के साथ भागी हिन्दु लड़की की कहानी है, जिसके कारण साप्रदायिक दंगा फूट जाता है । खबरों और घटनाओं को अपने-अपने धर्म पर प्रहार मानते हुए लोग हिंसक हो उठते हैं। सुजान पंडित और मौलवी खुदाबख्श गहरे मित्र थे । दोनों को एक दूसरे पर पूरा विश्वास था । ससुराल से परित्यक्ता पण्डितजी की पुत्री गौरी तीन वर्ष से उसके साथ रह रही थी । एक दिन वह मौलवी के पुत्र अनवर के साथ भाग गयी । मौलवी और पंडित तक ही बात रहती तो शायद न बिगडती पर बात आगे बढ़

1. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्‌भाव की कहानियाँ - पृ. 108
2. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्‌भाव की कहानियाँ - पृ. 109

चुकी थी । दोनों धर्मों के लोगों ने इस घटना को अपना अपमान समझा - "भला मोहल्ले में इतनी बड़ी बात हो जाए और शरीफ लोग चुपचाप बेठेंगे.... एक मुसलमान, एक भलेमानुस हिन्दु की बेटी को भगा ले जाए और बात यू ही ठंडी हो जाए, इस बात पर लाशें बिछ जाती हैं, लोगों को अब भी शंका थी कि कुछ होकर रहेगा..."[1] दोनों धर्मों की तरफ से तैयारियाँ चल रही थीं । दोनों दल के बीच लड़ाई शुरू ही होनेवाले थे तब अनवर आ गया । वह पंडितजी की बेटी को उसके पति के पास पहुँचा कर आया था । सही समय पर अनवर न आता तो उत्तेजित भीड़ क्या करती, इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते है । सांप्रदायिक भावना मनुष्य को किस तरह अन्धा बनाती है, इसका सशक्त चित्रण इस कहानी में है ।

गोबिन्द मिश्र की कहानी 'दूसरी सुबह' साांप्रदायिकता के एक नए पक्ष को उभारकर सामने लाती है । पं. उमाशंकर दफ्तर में अनुशासनप्रिय थे । वे काम के मामले में मातहतों को किसी भी तरह की ढ़ील नहीं देते थे । उनका विरोध दफ्तर के सभी लोगों ने अपने-अपने ढंग से किया, पर रहीम ने उसे सांप्रदायिक रंग दे दिया "जब चाहे शोर मचाता कि उसे इसलिए परेशान किया जा रहा है कि वह मुसलमान है, जबकि उमाशंकरजी के दिमाग में यह बात कभी आई ही नहीं थी।"[2] उमाशंकर ने उसे अनेक तरह से समझाया पर रहीम अपने रवैये पर अड़ा रहा । अंत में सांप्रदायवाद की जीत हुई और उमाशंकर का तबादला हो गया । इसी कारण सरकारी दफ्तरों में मुसलमानों की कार्य-प्रणाली से उनके मन में कुछ पूर्वग्रह भी पलने लगे । मुसलमान सहकर्मियों में उन्हे रहीम की सूरत नज़र आती। आधुनिक विचारों के बावजूद वे मुसलमानों से कटकर

1. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्‌भाव की कहानियाँ - पृ. 87
2. संपादक गिरिराज शरण - साप्रदायिक सद्‌भाव की कहानियाँ - पृ. 54-55

रहने लगे । बात यहां तक बढ़ गयी कि उन्हे अपने बेटे रमेश और आलम की दोस्ती भी पसन्द नहीं आती। वह दोनों के झगड़े के इन्तज़ार में था । लेकिन बीमार उमाशंकर की सेवा करके आलम ने उनका द्वन्द्व अवश्य समाप्त कर दिया । कहानी के अंत में मानुषिकता को सभी धर्मों से ऊपर उठाने की सफल कोशिश लेखक ने की है ।

इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद दिल्ली में सिखों को जिस तरह की स्थिति का सामना करना पड़ा था, उसकी झलक महीप सिंह की कहानी 'एक मरता हुआ दिन' में देखी जा सकती है । प्रधान मंत्री की मृत्यु के तुरन्त बात सिखों पर अत्याचार शुरु हो गए थे । सिख लोग डरकर अपने घर में छुप गये थे । दूसरे दिन की सुबह हरनाम सिंह का विचार था कि अब तक मामला शान्त हो गया होगा । अपने इसी विश्वास के कारण वह गूरुद्वारे तक जाने निकल पड़ा । उसने सोचा कि अगर कुछ हुआ भी तो कर्फ्यू लग जाएगा और पुलिस मामला सम्भाल लेगी । पर उसका यह विश्वास भी स्थिर न रह सका । उसे दूर-दूर तक कहीं भी पुलिस का कोई सिपाही दिखाई न दे रहा था । घर जल्दी पहूँचने की चिन्ता में वह गुरुद्वारे में मात्था टेककर शीघ्र ही बस-स्टैड पर वापस आ गया तब माहौल बदल चुका था "एक नेता किस्म का आदमी फुटपाथ पर खड़ा जोर-जोर से बोल रहा था - सिखों ने इंदिरा की हत्या कर दी... इन्हें इसकी कीमत देनी पडेगी... इन्होंने हमारी माँ को मार डाला.... हम इसका बदला लेकर रहेंगे।"[1] भीड़ ने हरनाम सिंह को मारना शुरू किया । लहुलुहान हरनाम सिंह शाम तक सड़क पर बेहोश पड़ा रहा । अंधेरे में किसी तरह से घिसटते-घिसटते वह बस्ती तक पहुँचा। वहाँ भी उसी तरह के लोग थे । सिख होने के कारण कोई भी उसकी

1. महीप सिंह - धूप की उंगलियों के निशान - पृ. 71

मदद करने के लिए तैयार नहीं था । अन्त में उसे मज़दूरों के झोंपड़ों में शरण मिली । वहाँ उसे पानी के साथ-साथ सुरक्षा का विश्वास भी मिला । मज़दूरों की मानवीयता का चित्रण करते हुए महीप सिंह यह व्यक्त करना चाहता है कि यही वह वर्ग है, जिसकी मानवता अभी तक मिटी नहीं हैं ।

❖ ❖ ❖

तीसरा अध्याय

नव औपनिवेशिक व्यवस्था के खिलाफ उभर आए प्रतिरोधी आयाम - समकालीन कहानी में

भूमण्डलीकरण व उपभोग संस्कृति के खिलाफ रचित कहानियों का विश्लेषण

वैश्वीकरण के खिलाफ बढ़ती सोच और इस प्रक्रिया को खत्म करने की कोशिशें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं । इस के विरुद्ध वेश्विक तौर पर आवाज़ उठ रही है । जैसे फिडेल कास्त्रो का बयान है - "यह विशिष्ट इन अर्थों में है कि यह आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि बडे साम्राज्यवादी, धनी देशों द्वारा द्वितीय व तृतीय विश्व के आर्थिक संसाधनों को लूटने व उनकी सामुदायिक व सभ्यतागत उपलब्धियों को नष्ट करने की कोशिश है।"[1] वर्ग शोषण का विस्तृत स्वरूप साम्राज्यवाद है, जिसे लेनिन ने पूँजीवाद की सर्वोच्च अवस्था कहा है 'पूँजीपति अपने देश में पूँजी का संचय कर तथा अपने उत्पाद के विक्रय मात्र से सन्तुष्ट नहीं होते । वे बाहर जाकर अन्य देशों का दमन करना चाहते हैं । अपना उत्पाद उनकी धरती पर लादना चाहते हैं । विदेशों से सस्ती दर पर कच्चा माल खरीद कर उन्हीं देशों को अपना तैयार माल बेचना चाहते हैं । यह प्रक्रिया और आसान हो जाती है यदि देश राजनीतिक रूप से पूँजीधारक देश की दावेदारी में हो । देश के पूंजीपतियों और शासकों में वह राजा-महाराजा हो या कोई भी, एक प्रकार की मित्रता होती है । वे धरती पर कब्जा कर सकते हैं, सेना भेज सकते हैं । ....सस्ती दर पर अनाज खरीदेंगे और अपने उत्पाद बहुत ऊँची दर पर बेचेंगे । ऐसे है अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद की नैतिकता, जिसे हम साम्राज्यवाद कहते हैं ।"[2]

इस वैश्वीकरण प्रक्रीया के पीछे तीन प्रमुख कारण हैं । पहला कारण सोवियत गुट के देशों का अमेरिकी गुट के सामने आत्म समर्पण है और खुद

---

1. फ़िडेला कास्त्रो - साम्राज्यवादी वैश्वीकरण - (अनुवाद-जीतेन्द्र गुप्ता) पृ. 10 (आमुख)
2. गिरीश मिश्र, ब्रजकुमार पाण्डेय - भूमण्डलीकरण मिथक या यथार्थ - पृ. 155

सोवियत संघ का विघटन । विकास के समाजवादी रास्ते को छोड़ते हुए 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में चीन का पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था को अपनाना भी इस प्रक्रिया के पीछे है । अमेरिका की अगुआई में विकसित पश्चिमी देशों का गुट ऐसी मज़बूत स्थिति में आ गया कि विश्व अर्थव्यवस्था को अपने हिसाब से चलाने में कामयाब हो गया ।

तीसरी दुनिया के ज़्यादातर देशों की अर्थव्यवस्थाएँ भीषण संकट से गुज़र रही हैं। इनमें से अधिकतर देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के प्रथम दो दशकों के शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी उभारों की लहर के दौरान औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पायी थी । विकसित पूँजीवादी देशों ने अपनी औद्योगिक क्रान्ति को तीसरी दुनिया के देशों और अपने उपनिवेशों की लूट से मिले धन के ज़रिए मज़बूती प्रदान की थी । इसके विपरीत जब तीसरी दुनिया के देशों ने 20 वी सदी के मध्य में आकर पूंजीवादी विकास की राह पर बढ़ना शुरू किया तो उनके लिए कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा था, जिसे लूटकर वे अपने विकास प्रशस्त कर सके । पूँजीवादी व्यवस्था में विजेता इसलिए जीता है, हारने के लिए कोई दूसरे मौजूद रहता है । उरुग्वे के विख्यात लेखक एडुआर्डो गैलियेनो ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'ओपन वेन्स ऑफ लैटिन अमेरिका' में लातिन अमेरिका के पिछड़ेपन के सन्दर्भ में लिखा है "हमारी पराजय हमेशा दूसरों की विजय में अन्तर्निहित रही है । हमारी सम्पत्ति, दूसरों की-बड़े साम्राज्यों और उनके सहज उत्तराधिकारियों की समृद्धि को लगातार सिंचित करते हुए हमारे लिये गरीबी उपजाती रही है।"[1]

पूँजीवाद मूलतः मुनाफे के अतिसंचयन की प्रक्रिया है । मुनाफा कमाने

1. मन्थली रिव्यू प्रेस, न्यूयार्क 1974, पृष्ठ - 12

के लिए पूंजी का निवेश किया जाता है । इसके लिए बाज़ार की भी ज़रूरत होती है । जब निवेश की गई पूँजी से मुनाफा मिलता है तो आगे और निवेश करने की प्रेरणा मिलती है । जब बाज़ार की माँग से ज़्यादा उत्पादन होता है तो बाज़ार में मन्दी आ जाती है । यह समस्या सबसे पहले 1930 की भयानक मन्दी के रूप में सामने आयी थी । इस संकट का अन्त हुआ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद। 19 वीं सदी के पूँजीवाद की विशेषता मानी जाने वाली छोटी कम्पनियाँ खतम हो चुकी थीं । इसके स्थान पर बडे-बडे उद्यम खडे हो चुके थे । पूँजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था उन विशाल कम्पनियों के एकाधिकार से निर्दिष्ट होने लगी थी। ये कंपनियाँ न केवल उत्पादन बढ़ाने में क्षमता रखती थी, बल्कि कीमतें ऊँची रखकर अतिलाभ कमाने की स्थिति में भी थी । इस अवसर पर पूँजीवाद के सामने एक और समस्या खड़ी हो गयी थी कि लगातर बढ़ते लाभ से इकट्ठी गई पूँजी को दोबारा निवेश करने का अवसर कहाँ से निकाला जाये ? विकसित देशों के बहुराष्ट्रीय निगमों और अन्य निवेशकों द्वारा संचित विशाल पूँजी को वहीं दोबारा निवेश करने का कोई रास्ता नहीं रह गया है । तब हर विकसित देश ने व्यग्रतापूर्वक निवेश के अवसरों की तलाश शुरू कर दी थी । संयोगवश तीसरी दुनिया की आर्थिक व्यवस्था संकट ग्रस्त थी और पश्चिमी ऋणदाताओं की रहम से चल रही थी। यों विकसित देशों के लिए तीसरी दुनिया में पूँजी निवेश करने का अनुकूल माहौल तैयार हो गया । जैसे विभिन्न देश, व्यापार और पूंजी के प्रवाह के लिए प्रतिबन्ध हटा रहे हैं, वैसे ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों, कॉपर्रेशनों और कोष प्रबन्धकों को वैश्विक बाज़ार हथियाने के लिए नविनतम अवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं ।

नेहरू ने समाजवाद पर काफी लच्छेदार शब्दाडम्बरों का इस्तेमाल किया था, किन्तु उनके नेतृत्व में लागू किया गया विकास का मॉडल बुनियादी तौर पर पूँजीवादी विकास का मॉडल था । "नेहरूवादी मॉडल का उद्देश्य पूँजीवादी रास्ते पर देशी उद्योगों व कृषि के व्यापक विकास को बढ़ावा देना था । जबकि वास्तविकता यह है कि आज़ादी के समय पूँजीपति आधारभूत ढाँचे में निवेश करने को तैयार नहीं थे । इसकी पहली वजह तो यह थी कि उनके पास इस क्षेत्र में निवेश हेतु आवश्यक पूंजी की विशाल मात्रा नहीं थी । दूसरी यह कि इस क्षेत्र की परियोजनाओं में लगाने वाला समय बहुत अधिक था और मुनाफा कम । पूँजीपति उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण जैसे क्षेत्रों में निवेश करने में ज़्यादा दिलचस्पी रखते थे, जहाँ थोडे ही निवेश से जल्दी मुनाफा कमाया जा सकता था।"[1] नेहरुवादी मॉडल 1960 के दशक में संकटग्रस्त हो गया । 1980 के दशक में अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाते रहते के लिए भारत सरकार ने पुनः विदेशी ऋण में बढोत्तरी कर दी । अर्थ व्यवस्था को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए भी सीमित मात्रा में खोला गया । इन हालत में पश्चिमी ऋणदाताओं को यह एहसास हो चुका था कि भारत सरकार को अपनी अर्थव्यवस्था में मूलभूत बदलाव लाने और इसे विदेशी पूँजी के लिए खोलने का सही अवसर आ गया है । 1985 में विश्व बैंक ने भारत की औद्योगिक और व्यापार नीति का गहराई से अध्ययन करवाया । इसके परिणास्वरूप कई रिपोर्ट और शोध पत्र प्रकाशित हुए और अन्ततः तमाम अध्ययनों के निचोड़ के रूप में 'एण्डरसन मेमोरेण्डम' सामने आया जो 30 नवम्बर 1990 को भारत सरकार के सामने पेश कर दिया गया । इस मेमोरेण्डम या स्मरणपत्र में उल्लेखित सुझाव विश्व बैंक के 'ढाँचागत

1. नीरज जैन - वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण -पृ. 17

समायोजन कार्यक्रम' का ही सार हैं ।"[1] विकसित देशों ने इस समय अपने तार कसने गुरू किये । भारत सरकार को मिलने वाले नये ऋणों का भुगतान यह कहते हुए स्थगित कर दिया गया कि पहले भारत अपनी नीतियों में अवश्य सुधारों को लागू करे । नतीजा यह हुआ कि भारत को मिलने वाले अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक ऋणों के स्रोत जैसे रातों-रात सूख गये - "विदेशी ऋण मिलना बन्द हो जाने से भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार तेजी से घटने लगा । 31 दिसंम्बर 1990 को यह माल 1.2 अरब डॉलर रह गया था । अप्रवासी भारतीयों ने भी धबराहट में पैसा वापस लेना शुरू कर दिया ।"[2]

मई 1991 में लोकसभा चुनाव हुए और जून 1991 में पी.वी. नरसिंह राव के नेतृत्व में नयी सरकार गठित हुई जिसके वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह थे। विकसित पूँजीवादी देशों के इशारे पर तय की गई उदारीकरण नीतियों पर काँग्रेस की अल्पमत सरकार ने हस्ताक्षर कर लिए ।

आगे भारत और तीसरी दुनिया के अन्य देशों में आवाम पर पडे वैश्वीकरण के प्रभावों पर विचार करेंगे । यह दावा किया जाता है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ रोज़गार के अवसर पैदा कर रही हैं । वास्तविकता कुछ और है । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ रोज़गार के ज़्यादा अवसर पैदा नहीं करती है । नवीन तकनीक और प्रौद्योगिकी के गहरे ऐसी स्थिति हो गयी है कि कम कर्मचारियों की मदद से पूरी दुनिया को नियन्त्रित कर सकती हैं - "दुनिया की 200 सबसे बड़ी कम्पनियाँ विश्व की आर्थिक गतिविधियों के एक चौथाई से ज़्यादा हिस्से को नियन्त्रित करती हैं । लेकिन वे सब मिलाकर सिर्फ 1.88 करोड़ कर्मचारियों को

1. दलीप. एस स्वामी - द वर्ल्ड बैंक एण्ड ग्लोबलाइज़ेशन ऑफ इण्डियन इकॉनामी, पब्लिक इंटरेस्ट रिसर्च ग्रूप - दिल्ली 1994 - पृ. 5
2. वही - पृ. 17

रोज़गार देती हैं, जो विश्व की कुल श्रम शक्ति (260 करोड लोग) के 1% के तीन-चौथाई से भी कम है।"[1] आज ये कम्पनियाँ विश्व अर्थव्यवस्था में अपनी भागीदारी लगातार बढ़ाते हुए भी अपने कर्मचारियों की संख्या कम से कम कर सकती हैं । नतीजतन, हाल के वर्षों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ रोज़गार बढ़ाने के बजाय रोज़गार खत्म करने की भूमिका निभा रही हैं - "पिछले दशक के दौरान विश्व की 500 सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने संयुक्त राजस्व में लगातार बढोत्तरी के बावजूद प्रतिवर्ष 4,00,000 कर्मचारियों की छँटनी की।"[2] इसलिए यह बात सोचना ख्याली पुलाव पकाने जैसा होगा कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तीसरी दुनिया के देशों में बडे पैमाने पर रोज़गार लायेंगी । "बहुराष्ट्रीय निगमों (ट्रान्सनेशनल कारपोरेशन्स) ने विकासशील देशों में सक्रिय अपनी सहायक कम्पनियों की मदद से बडे पैमाने पर रोज़गार उत्पन्न किये बगैर भारी निवेश किया है । 1990 में कम से कम 35,000 बहुराष्ट्रीय निगम थे । जिनकी 1,50,000 विदेशी सहायक कम्पनियाँ थीं । ....विकासशील देशों में इनसे करीब 70 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोज़गार प्राप्त था जो इन देशों (विकासशील देशों) की आर्थिक रूप से सक्रिय आबादी के एक प्रतिशत से भी कम है । इसके अलावा लगभग उतने ही लोगों को इन बहुराष्ट्रीय निगमों के ज़रिए अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार (उदाहरणार्थ बतौर सप्लायर या कम्पनी सेवा) प्राप्त था । इन दोनों को जोड़कर जो संख्या मिलती है, वह भी काफी कम है, और दुनिया की आर्थिक रूप से सक्रिय आबादी का बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में रोज़गार प्राप्त हिस्सा भी घटता जा रहा है।"[3]

1. सराह एण्डरसन और जौन केवेनाग, टी. डब्ल्यू.आर, अंक 97, सितम्बर 1998, पृ. 38
2. फ्रेडरिक क्लेयरमोण्ट और जौन केवेनाग, ई.पी. डब्ल्यू, 5 फरवरी 1994 पृ. 284
3. ए. आई. ई. में उद्धृत - अंक 15, पृ. 8

दसियों लाख मछुआरे और मज़दूर भारतीय मत्स्य-अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार हैं । ये मछुआरे एक के बाद दूसरी सरकारों के विदेशी मछलीमार ज़हाज़ों को भारतीय सीमा के अन्दर मछली पकडने की अनुमति देने के प्रयासों के खिलाफ पहले से ही संघर्ष कर रहे हैं । अब उनकी आजीविका पर एक नया संकट आ गया है । 60 से ज्यादा मत्स्य उत्पाद मुक्त आयात की श्रेणी में आ गये हैं और इसलिए जल्दी ही बडे पैमाने पर आयात के चलते इन वस्तुओं की कीमतें लुढ़क जायेगी।"[1] आसीयान समझौने के आधार पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मत्स्य का आयात पहले से कम कीमत में करेंगी । भारत के मछुआरे इस स्थिति के साथ समझौता नहीं कर पायेगे और अपना रोज़गार छोड़ने में मज़बूर हो जायेंगे। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस स्थिति का फायदा उठाकर उनकी मत्स्य उत्पादनों की कीमत बढायेंगी । हमारी अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई कई क्षेत्र ऐसे हैं जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माल से प्रतियोगिता नहीं कर पायेंगे ।

कुछ उदाहरणों पर भी हम नज़र डालेंगे । राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड के प्रयासों से भारत दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में विश्व में पहले नम्बर पर आ गया है । भारत का डेयरी क्षेत्र आज गाँवों के 8 से 10 करोड़ लोगों की आजीविका का एक अतिरिक्त साधन है । मगर दुग्ध उत्पादों (मिल्क पाउडर आदि) का मुक्त आयात इस ऊर्जावान क्षेत्र की भी जडें खोदने पर उतारू हैं । परम्परागत उत्पादनों का सबसे बड़ा समूह है हथकरघा क्षेत्र । इसमें तकरीबन 60 लाख लोगों को रोज़गार मिला हुआ है । 'बडे पैमाने पर निर्यात के चलते सूत की कीमतों में हुई भारी बढ़ोत्तरी ने हथकरघा और पावरलूम क्षेत्र में इस कदर तबाही मचायी हैं कि बेकारों के सामने भुखमरी और आत्महत्या की नौबत आ गयी है"[2]

1. वी श्रीधर, एफ.एल, अप्रैल 28, 2000, पृ. 18
2. ए. आई. ई. में उद्धत - अंक 15, पृ. 4

भारतीय कृषि पर साम्राज्यवादी पूँजी के हमले ने मेहनती भारतीय किसानों की पहले से ही खराब स्थिति को और बढ़ावा दिया है । इन्द्रदेव की बेरूखी और कभी फसल पर कीडों के हमले से उनका धैर्य टूट रहा था । अलावा इसके भारत के ऋणदाताओं की ओर से भारतीय अर्थव्यवस्था पर थोपे गये आर्थिक सुधार के तहत भारतीय कृषि क्षेत्र पर विश्व-बैंक-मुद्रा कोष द्वारा लादी गयी अनेक-शर्तें की वजह भारत के लाखों छोटे किसानों की आर्थिक हालत इतनी बिगड़ चुकी है कि उनमें से बहुत लोगों को आत्महत्या का रास्ता चुनना पड़ा । आज कल जिन 714 वस्तुओं के आयात कर से प्रतिबन्ध हटाया गया उनमें 229 कृषि उत्पाद हैं ।"[1] मार्च 2001 में शेष वस्तुओं से प्रतिबन्ध हटा दिया गया, जिनमें चीनी, खाद्य-तेल, तिलहन, गेहूँ, दलहन, मोटे अनाज, कपास, चावल, मक्का और प्राकृतिक रबर शामिल हैं ।"[2] विकसित देशों ने अपने किसानों को सालाना अरबों डॉलर की सब्सिडी देना जारी रखा है । दूसरी तरफ यही देश अपनी चेरी वित्तीय संस्थाओं के साथ मिलकर भारत सहित तीसरी दुनिया के तमाम देशों पर उनकी पहले से ही कम कृषि सब्सिडी को भी समाप्त करने के लिए दबाव डाल रहे हैं । अंदाजा है कि खाली पड़े खेतों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा हो जायेगा जो अत्याधुनिक तरीके से खेती करेंगी । मशीनों का इस्तेमाल होने के कारण खेतिहर मज़दूरों के रोज़गार में भी बुरा प्रभाव पडेगा।

वैश्वीकरण न केवल संगठित क्षेत्र और लघु उद्योगों के लाखों रोज़गार कम कर रहा है बल्कि असंगठित क्षेत्र के करोड़ों लोगों की आजीविका भी नष्ट कर रहा है । सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इसके बावजूद सरकारें सभी

---

1. वी श्रीधर, एफ.एल, अप्रैल 28, 2000, पृ. 18
2. सम्पादकीय, टी.एच. बी.एल - 28.2.2000

अवश्यक वस्तुओं और सेवाओं जैसे पानी, बिजली, मिट्‌टी का तेल, बस-किराया, शिक्षा और स्वास्थ को महँगी करती जा रही हैं । यहाँ तक कि खाद्यान्नों को भी नहीं बख्शा रहा है । खाद्य सब्सिड़ी में भारी कटौती कर दी गयी है । नतीजा, अवाम अपनी आमदनी का सबसे बड़ा हिस्सा जिस पर खर्च करती है उस खाद्यान्न की कीमतों में 90 के दशक के दौरान काफी बढ़ोत्तरी हुई ।

नीरज जैन ने अपनी पुस्तक 'वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण' में भारतीय अर्थव्यवस्था और भारतीय जनता को भविष्य में पूँजीपति वर्ग के लाभ संचय प्रक्रिया से किन किन समस्याओं का सामना करना पडेगा, इसपर विस्तार से विचार किया है । भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से भारतीय अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन विकास की सम्भावना खत्म हो जायेगी । औद्योगिक, वित्तीय और कृषि क्षेत्रों सहित सम्पूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था का नियन्त्रण दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विदेशी सरकारों के कब्जे में चला जायेगा । देश की खाद्य सुरक्षा समाप्त हो जायेगी; महत्वपूर्ण ढाँचागत क्षेत्रों में घरेलू क्षमता नष्ट हो जायेगी; करोडों गरीब और मध्यवर्गीय भारतीयों की जीवन भर की बचत विदेशी सरकारों के हाथों में चली जायेगी । संगठित और लघु उद्योग क्षेत्र में बडे पैमाने पर बेरोज़गारी फैलेगी, असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत करोड़ों भारतीयों की आजीविका छिन जायेगी । देश में सूखा, अकाल और महामारी का प्रकोप फैलेगा ।"[1]

फरवरी 2000 में, बैंकाक में हुए 'अंकटाड' के 10 वें सम्मेलन के दौरान महासचिव रुबेंस रिक्युपेरों ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है विकासशील देशों को अपनी अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण का फायदा अब तक नहीं मिला है।

1. नीरज जैन -वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण - पृ. 145-146

वहाँ प्रतिकूल परिणाम ही देखने को मिल रहे हैं । आबादी के एक बडे हिस्से की वास्तविक आय में अत्याधिक गिरावट आ गयी है, बेरोजगारी बढ़ी है, गरीबी का प्रतिशत बढ़ा है, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ बदतर हुई हैं और स्कूल जाने वालों की संख्या में कमी हुई है ।"[1]

यह सिर्फ भारत की ही नहीं, तीसरी दुनिया के सभी देशों की हालत है । आफ्रीका को तो नींबू की तरह निचोड़ लिया गया । 90 के दशक में थोडा विकास तो अफ्रीका में दिखाई पड़ रहा था, लेकिन थोड़े बहुत विकास के बावजूद आम लोगों की हालत बिगड़ती रही । आज आफ्रीका 'भूख से मरते लोगों का महाद्वीप' बन गया है । पिछले तीन दशकों के दौरान 'अंकटाड' द्वारा सूचीबद्ध अल्पविकसित देशों की संख्या करीब-करीब दोगुनी हो गयी है । 1971 में यह 25 थी, जो अब 48 तक पहूँच गयी है।"[2] इनमें से दो-तिहाई देश अफ्रीका में है । 'द इकॉनामिक कमीशन फॉर अफ्रीका' का अनुमान है कि 'आफ्रीकी देशों की तकरीबन 50% आबादी पूर्ण गरीबी में गुज़ारा करती है । अगली शताब्दी की शुरूआत तक इस प्रतिशत में और वृद्धि की संभावनाऐं हैं।"[3] नाइजीरियाई अर्थशास्त्री बेड ओनीमोड ने अपनी पुस्तक 'ए फ्यूचर फॉर अफ्रीका : बियोण्ड द पॉलिटिक्स ऑफ एडजस्टमेंट' में कहा है; (अफ्रीकी) संकट और विश्वबैंक-मुद्राकोश के स्थिरीकरण और ढाँचागत समायोजन' संबन्धी कार्यक्रमों से अफ्रीकी अर्थव्यवस्था में तेज़ी से गिरावट तो आयी है, ग्रामीण और शहरी गरीबों, महिलाओं, बच्चों, मज़दूरों, किसानों और अन्य कमज़ोर वगों की तक्लीफों में बेइन्तहा बढ़ोत्तरी हुई।..... अफ्रीकियों की एक पीढ़ी बर्बाद हो गयी,

1. एस. डी नायक - टी.एच. बी. एल 15-2-2000
2. मि. रुबेन्स रिक्यूपेरो, महा सचिव, अंकटाड़, एम.डी नायक द्वारा उद्धत, टी.एच.बी.एल 15-2-2000
3. जॉन. एस. सॉल और कोलिन लेज द्वारा उद्धृत - एम.आर. जुलाई - अगस्त - 1999 पृ. 6

दूसरी पीढ़ी के सामने भी गम्भीर खतरा उपस्थित है । उधर अफ्रीका के ज़्यादातर क्षेत्रों को हाशिये पर धकेलने की प्रक्रिया और तेज़ हो गयी है।"[1]

साम्राज्यवादी पूँजी अल्पकालिक इंजेक्शन की तरह है जो तबीयत सुधारने का भ्रम ही पैदा कर देता है । साम्राज्य शक्तियाँ हालत सुधारने की घोषणा तो करती हैं लेकिन मात्र मुनाफा कमाना उनका लक्ष्य है । अफ्रीका की तरह लातिन अमेरिका के देशों के साथ भी यही घोखा हुआ है । 1990 के दशक में साम्राज्यवादी पूँजी लातिन अमेरिका में वापस आयी । लादे गये विश्व बैंक-मुद्राकोष के हरेक समाधान ने इन देशों में साम्राज्यवादी पैठ और नियन्त्रण को मज़बूत बना दिया । इसके साथ वहाँ की अर्थव्यवस्था बिगड़ गई और गरीबी बढ़ गई । पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों ने बढ़ती बेरोज़गारी का फायदा उठाते हुए वेतन स्तर कम कर दिया ।आई. एल. ओ की रिपोर्ट के मुताबिक मज़दूरों की क्रय शक्ति पिछले दशक में नाटकीय ढंग से कम हुई है । न्यूनतम वेतन पाने वालों की क्रय शक्ति 20 साल पहले 1980 में जितनी थी आज उससे 27% कम है।"[2] गरीबी का स्तर भी अपनी सीमा तोड़ चुका है । 'द इकॉनमिक कमीशन फॉर लैटिन अमेरिका एण्ड द कैरेबियन' के मुताबिक 80 के दशक में लागू ढाँचागत सुधार के दौरान क्षेत्र में सम्पूर्ण आबादी के अनुपात में गरीबी 35% से बढ़कर 41% तक पहूँच गयी थी । उसके बाद भी गरीबी का स्तर बढ़ता ही रहा है और अब तक इसके 60% हो जाने का अनुमान है"[3]

---

1. बदे ओनिमोद, ए फ्यूचर फॉर अफ्रीका; बियोन्ड द पॉलिटिक्स ऑफ एउजस्टमेंट, लंदन; अर्थस्केन, 1992, पृ. 1
2. रॉबर्ट इवान्स - टी.ओ. आई 23-8-1999
3. जेम्स पेत्रास और हैनरी वेल्तमेयर, एम.आर, जुलाई -अगस्त 1999 - पृ. 50

तीसरी दुनिया की सौ से ज़्यादा देशों में आज प्रति व्यक्ति आय 15 साल पहले की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम हो गयी है । मौजूदा समय में 160 करोड़ लोगों का जीवन स्तर 1980 के दशक की शुरुआती दौर की तुलना में गिर गया है । तीसरी दुनिया के 79 करोड़ से ज़्यादा लोग कुपोषण के शिकार है । अंदाजा है कि इन देशों के 50.7 करोड़ लोग अपना 40 वाँ जन्मदिन नहीं मनाएँगे । तीसरी दुनिया में जन्मे हर पाँच में से दो बच्चे मन्द विकास के शिकार हैं और हर तीसरा बच्चा कम वजन का होता है । 30 हज़ार बच्चे रोज़ मर रहे हैं । 20 लाख लड़कियाँ वेश्यावृत्ति में धकेली जा रही हैं । 13 करोड़ बच्चे प्राथमिक शिक्षा भी प्राप्त नहीं कर पाते है और पन्द्रह वर्ष से कम उम्र के 25 करोड़ बच्चों को दो जून भोजन के लिए काम करना पड़ता है ।"[1] हमे इस हकीकत को ठीक तरह से आत्मसात कर लेना चाहिए कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों की पूँजी से तीसरी दुनिया की देशों में कोई नींवाधार परिवर्तन नहीं आया है । यह भी सच है कि साम्राज्यवादी पूँजी की मदद से करोडों गरीबों के बीच, 10% लोग पहली दुनिया की जीवन शैली को अपना चुके हैं । वे अपने बच्चों को विदेशी विद्यालयों में पढ़ाते हैं; वे निजी क्लबों के सदस्य हैं, जहाँ वे तैरते हैं, टेनिस खेलते हैं और एरोबिक एक्सरसाइज़ करते है; प्राइवेट क्लीनिकों में चेहरा चिकना बनाते हैं और आधुनिकतम आरामदेह कॉरों में सड़कों पर घूमते है । उनके घर आधुनिकतम उपभोक्ता सामग्रियों से भरे होते हैं । वे कम्प्यूटर, फैक्स और निजी कूरियर सेवाओं के ज़रिए एक-दूसरे से संपर्क रखते हैं । वे निजी सुरक्षा से लैस आवासीय सोसायटियों में रहते हैं । अक्सर न्यूयॉर्क, मियामी, लन्दन या पेरिस की सैर पर जाते हैं और वहाँ खरीदारी करते हैं । उनके ज़्यादातर

1. जी 77 के सम्मेलन, हवाना में दिए गये फिदेल कास्त्रो के भाषण के आँकड़े - अप्रैल 2000, पृ. 30

बचत खाते विदेशी बैंकों में होते हैं । अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव के बावजूद वैश्वीकृत व्यवस्था में वे लाभान्वित ही होते हैं । अगर इसे विकास कह सकते है तो ज़रूर यह एकतरफा विकास है, जिसमें अभिजात्य वर्ग की ही प्रगति हुई है ।

फ़िडेल कास्त्रो के अनुसार "मैं नव-उदारवाद द्वारा आरोपित अराजकता, अतार्किकता और भ्रम की स्थितियों का ज़िक्र कर रहा हूँ । सैकड़ों लाख डॉलर का निवेश बशर्ते किया जाता है । टेलीविज़न-सेटं, कप्यूटर-पुर्जों और क्लिप या शायद चिप्स... वे इसे जो भी कहते हो, के निर्माण में सैकड़ों लाख श्रमिकों को लगा दिया गया है । विशाल संख्या में कारों का उत्पादन हो रहा है। .... इन कारों को कौन खरीदेगा ? खरीददार तो अफ्रीका, लातिन अमरीका और विश्व के अन्य क्षेत्रों में पाए जा सकते हैं । लेकिन उनके पास कार या गैस खरीदने के लिए एक भी पैसा नहीं है । तृतीय विश्व के देशों को पूर्णतया बर्बाद कर दिया गया है । सामाजिक-विकास के लिए आवश्यक संसाधनों से ज़्यादा संसाधनों का प्रयोग करके बाद में उनके पर्यावरण को भी बर्बाद कर देगा ।.... नव विकसित पूँजीवादी-व्यवस्था मानवता को सबसे अधिक चोट पहूँचाने का कारण है । इसने वातावरण को ज़हरीला बना दिया है और पुनः न उत्पन्न होने वाले कीमती प्राकृतिक संसाधनों को खत्म कर दिया गया है, जिसकी भविष्य में ज़रूरत पडेगी।"[1] फ़िडेल कास्त्रों उस क्यूबा का नेता है, जो अमेरिका के विरुद्ध हमेशा आवाज़ उठाता रहता है । क्यूबा एकमात्र देश है, जहाँ बच्चे भूखे नहीं रहते, उनकी चिकित्सा की पूरी व्यवस्था होती है, उन्हें स्कूलों में या गलियों में किसी

---

1. फ़िडेल कास्त्रो (अनुवाद जीतेन्द्र गुप्ता) - साम्राज्यवादी वैश्वीकरण - पृ. 45-46

तरह की हिंसा का सामना नहीं करना पड़ता और शिक्षा का स्तर दुनिया में सबसे अच्छा है । ऐसी विशेषताएँ जिसका दावा अमेरिका भी नहीं कर सकता।"[1]

चीन के तेजी से बढते विकास को पेश करते हुए यह दावा किया जाता है कि वैश्वीकरण सम्पूर्ण मानवता के लिए लाभकारी होगा । नये चीनी शासक वर्ग की नीति "कुछ लोग पहले अमीर होंगे" को इस अपरिहार्य निष्कर्ष से जोड़ देना चाहिए कि "फिर ज़्यादातर लोग गरीब होंगे ही।" अनुमान है कि चीनी शहरों की गलियों में 2,00,000 लावारिस बच्चे हैं"[2] अंदाजा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में तकरीबन 15 से 32 करोड के बीच ग्रामीण मज़दूरों को 'सरप्लस' घोषित किया जायेगा, क्योंकि अर्थव्यवस्था की ढाँचागत-रूपान्तरण प्रक्रिया आगे बढ़ रही है।"[3] तीन से पाँच करोड़ किसान पहले ही काम की तलाश में भटक रहे हैं और उनमें 80% युवा हैं ।"[4] अनुमान है कि वैश्वीकरण प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ेगी चीन के व्यापार और वित्तीय क्षेत्रों का उदारीकरण एक लाख से अधिक सार्वजनिक उद्यमों को बन्द करवायेगा । इन उद्यमों में करोड़ से अधिक लोग काम करते हैं । खुद चीनी श्रम मंत्री के मुताबिक इनमें से 30 लाख कर्मचारी 1999 में ही अपना रोज़गार खो गए थे ।"[5] अर्थात् भूमण्डलीकरण श्रमिकों से उनकी आज़ादी के नाम पर कामयाबी के साथ कुर्बानी भी माँगता है ।

यह सत्य है कि पूँजी के बिना दुनिया में कुछ भी संभव नहीं है । पर हमें इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि जो पूँजी आज हमारे पास है वह भगोड़ा

---

1. फ्रेडरिक क्लेयमोण्ट, ई. पी. डब्ल्यू. अंक 10, 4 मार्च 2000, पृ. 770
2. रोबर्ट वेल, एम.आर, जनवरी 1995, पृ. 14
3. सी.टी. कुरियन, एफ. एल. 25 सितम्बर 1998, पृ. 107
4. रोबर्ट वेल, एम.आर, जनवरी 1995, पृ. 15
5. सी.पी. चन्द्रशेखर एफ.एल. 10 दिसम्बर 1999, पृ. 100

पूँजी है । मुनाफे के लालच में वह पश्चिम से भागकर यहाँ आ रही है । वह विकसित देशों से आ रही है, जहाँ उत्पादन-खर्च ज्यादा है, मज़दूरी ज़्यादा देनी पड़ती है । पर्यावरण को प्रदूषित करने का मूल्य चुकाना पड़ता है । कारखानों के रखरखाव के लिए बने सख्त कानून-कायदों का पालन करना पड़ता है - जिससे उत्पादन पर आनेवाली लागत बढ़ जाती है - और मुनाफा कम हो जाता है । इसलिए कंपनियाँ तीसरी दुनिया में पूँजी निवेश करती हैं, जहाँ श्रम सस्ता है, कारखाना लगाना और चलाना सस्ता पड़ता है, प्रदूषण फैलाने पर कोई रोक-टोक नहीं है । यहाँ तक कि भोपाल गैस कांड जैसा कुछ हो जाने पर भी बचकर भाग सकता है, पीड़ितों को मुआवज़ा भी नाममात्र ही देना पड़ता है ।

जगह जगह पर होते विभिन्न किस्म के आन्दोलनों ने पूंजीपतियों की ताकत को कम कर दिया है । पहले साम्राज्यवादी ताकतें हमारे देश की प्राकृतिक संपदा पर आसानी से कब्जा जमा सकती थीं । लेकिन आज चाहे पानी खदान हो, व जंगल के नुक्सान के संदर्भ में आन्दोलन पूँजी के लिए संकट पैदा कर रहे है । बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इस समस्या का समाधान भी ढूढ निकला है। अब बड़ी कंपनियाँ उत्पादन बड़े कारखानों में नहीं करती, बल्कि अलग-अलग जगहों में छोटे-छोटे कारखानों में कराती हैं । जैसे 'नाइकी' ने पाँच-सात सौ कारखानों को अपना ठेका दे रखा है, जिनमें काम करनेवाले लोग 'नाइकी' के कर्मचारी नहीं, किसी और कारखाने के कर्मचारी हैं । इसलिए अब पुराने किस्म का ट्रैड-यूनियन प्रायोजित संघर्ष व हड़ताल संभव नहीं है ।[1]

1. रबर्ट वेल, एम.आर, जनवरी 1995, पृ. 15

बहु राष्ट्रीय कंपनियों की अंधाधुंध करतूतों से ग्लोबल वार्मिंग (भूमंडलीय तापवृद्धि) और क्लाइमेट चेंज (जलवायु परिवर्तन) जैसी तमाम समस्याऐं उभर आ रही हैं । पर्यावरण प्रदूषण दरअसल एक बुनियादी समस्या है । पर्यावरण प्रदूषण किस तरह साधारण जन जीवन को मुशकिल में डाल रहा है, इसके कई उदाहरण आजकल हम रोज़ देख रहे हैं । स्पंज आयरन के उत्पादन से पैदा होनेवाले धुएँ और कचरे के कारण होनेवाले प्रदूषण आजकल भयानक रूप ले रहे हैं । भारत में स्पंज आयरन के कारखानों में कोयले का उपयोग किया जाता है, जिससे गैसों का उत्सर्जन बहुत अधिक मात्रा में होता है । कारखानों से निकलनेवाले अवशिष्ट से ज़मीन और जल दोनों प्रदूषित होते हैं, जिससे ज़मीन खेती योग्य नहीं रहती और पानी पीने योग्य नहीं रहता । इसका प्रभाव इन पर आश्रित लोगों पर पड़ना स्वाभाविक है ।

ज़मीन से कम महत्वपूर्ण नहीं है पानी से जुडी समस्याएँ । बड़े-बड़े बाँधों को लेकर आरंभ से ही यह विवाद का विषय रहा है । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इन बाँधों के कारण विस्थापित होनेवाले लोगों को बसाने और उनको रोज़गार देने के मामले में सरकारों का रवैया हमेशा ढुलमुल रहा है। नर्मदा नदी पर बननेवाले बाँध को लेकर जन-संघर्ष की गूँजें अंतराष्ट्रीय मंचों तक पहूँची हैं । पूँजीवादी ताकतों ने पानी को भी आज एक उपभोक्ता वस्तु में बदल दिया है । गाँवों के किसानों और आदिवासियों का, पानी के प्राकृतिक स्रोतों पर स्वभाविक अधिकार होता था । वे इनसे अपनी आजीविका भी चलाते थे और इनकी रक्षा भी करते थे । लेकिन आज ये स्रोत इन हाथों से निकल गए है । पूँजीपतियों ने इनको मुनाफा कमाने का साधन मात्र बना दिया है

मछुआरों की ज़िन्दगी भी आज संघर्ष से गुज़र रहे है । कोस्टल रेगुलेशन कानून के द्वारा मछुआरों को सदियों से तटीय क्षेत्रों में स्वभाविक अधिकार मिला हुआ था । लेकिन भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूँजीवादी ताकतों ने इस क्षेत्र को भी हड़पना शुरू कर दिया है । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ समुद्र में मछली पकड़ने के अधिकार को इन मछुआरों से छीनना चाहती हैं । पर्यटन उद्योग में लगी कंपनियाँ समुद्री तटों पर होटल रिसॉर्ट और आधुनिक आरक्षित 'बीचों' के निर्माण के वास्ते मछुआरों को वहाँ से खदेड़ना चाहती हैं ।

प्लाचीमडा में 'कोककोला' कंपनी रोज़ 15 लाख लिटर तक का पानी ले रही थी । इस कारण प्राकृतिक स्रोतों में पानी कम होता गया और जल प्रदूषण भी आम बात बन गया था । इसके खिलाफ व्यापक स्तर पर आंदोलन चला और कंपनी को कारोबार बंद करके भागना पड़ा ।

1992 के पृथ्वी सम्मेलन में पर्यावरण से बढ़कर विकास की चिन्ता अधिक दिखायी पडी थी । सारी चर्चा 'दक्षिण' के गरीब देशों और उनके प्राकृतिक संसाधनों पर ही केन्द्रित रह गयी, जबकि ध्यान दिया जाना चाहिए था जैव-विविधता, जलवायु और जंगलों पर। इससे पता चलता है कि पृथ्वी सम्मेलन वास्तव में अमीर देशों की आर्थिक संवृद्धि के लिए गरीब देशों के प्राकृतिक संसाधन हथियाने और अमीर देशों का कूड़ा-कचरा गरीब देशों में डालने के तरीके सुनिश्चित करने के उद्देश्य से आयोजित था, न कि वे अपने उद्योंगों पर लगाम लगाये और दूसरे देशों के प्राकृतिक संसाधन लूटने के बजाय अपने स्थानीय संसाधनों को बचाये और बढ़ाये ।"[1] आफ्रीका का वर्तमान

1. कथन - अक्तूबर-दिसंबर - 2010

महासंकट वास्तव में यह बताता है कि पिछले पाँच सौ वर्षों से अमीर देशों ने उनकी प्राकृतिक संसाधनों को पूरी तरह लूटकर ले जा रहा है । विडंबना की बात है कि आफ्रीका के गरीब लोगों को अमीर देश, रोटी के स्थान पर आज भी बाइबिल ही दे रहे हैं।

क्यूबा जैसे कुछ ऐसे देश भी हैं जिन्होंने स्थानीय संसाधनों के लूट के विरुद्ध अपनी ढंग से जवाब दिया है । क्यूबा ने सोवियत संघ के गिरने के बाद और अमरीका द्वारा की गयी आर्थिक नाकेबंदी से पैदा हुई परिस्थितियों में एक नया रास्ता निकाला । एक तो अपनी खेती को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उसने उसे पूरी तरह 'जैविक' बना दिया जिससे उसे किसी तरह की रासायनिक खाद की या आयातित टेक्नोलॉजी की ज़रूरत नहीं रह गयी । दूसरे उसने बिजली की किफायत करने केलिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर ध्यान दिया ।"[1] ये तरीके पूँजीवाद के उस औद्योगीकरण वाले तरीके से कतई अलग हैं, जो पूँजीवादी सरकार सिर्फ मुनाफे के लिए कर रही है ।

गरीब देशों की जनता अमीर देशों के पर्यावरण शोषण को सिर्फ 'गरीबी' के कारण सहते है । अतः वैकल्पिक विकास की कोई ऐसी योजना बनायी जानी चाहिए, जिससे गरीबी मिटायी जा सके और पर्यावरण को बचाया जा सके । लातिन अमेरिका के अभागे देशों पर लादे गये विश्व-बैंक-मुद्रा कोष के हरेक समाधान ने जहाँ एक ओर इन देशों में साम्राज्यवादी पैठ और नियन्त्रण को मज़बूत किया है वही दूसरी और इनकी अर्थव्यवस्था को दुर्बल और लोगों को दरिद्र बनाया है । उदाहरण के रूप में पूँजीपतियों ने बढ़ती बेरोज़गारी का फायदा उठाते हुए वेतन स्तर कम कर दिया है । आई.एल ओ की रिपोर्ट के मुताबिक

1. कथन - अक्तूबर-दिसंबर - 2010, पृ. 69

मज़दूरों की क्रय शक्ति पिछले दशक में नाटकीय ढंग से कम हुई है । कुछ अन्य इतने ही विश्वसनीय अनुमानों के अनुसार अर्जेण्टीना और वेनेजुएला जैसे देशों में वेतन 70 के दशक के स्तर से भी नीचे चला गया है ।"[1]

विश्व बैंक जैसी संस्थाओं ने जितनी योजनाएँ गरीब देशों के लिए बनाई हैं, उसकी कीमत पूरी तरह से गरीब देशों को ही चुकानी पड़ रही है । सामाजिक खर्चों और खाद्य सब्सिडी की कटौती ने किसानों को कुपोषण और भूखमरी की कगार पर पहूँचा दिया है। जिन्दा रहने केलिए बड़ी संख्या में लोग सामुदायिक सेवा संस्थानों और सूप-किचनों पर निर्भर होते जा रहे है । बजट में सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा की लागत में भारी कटौती ने, इन सेवाओं को महँगा करने के साथ इनकी गुणवत्ता भी कम हो गई है । जल प्रबन्धन, सफाई और अन्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत में कमी के परिणामस्वरूप संक्रामक बीमारियों का प्रकोप बढ़ गया है । इन सच्चाईयों को हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं ।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डेवीसन एलबुधु ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश से 18 मई, 1988 को इस्तीफा दिया । अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के प्रबन्धक निदेशक माइकेल कैम्डेसस को भेजे गये अपने इस्तीफे में उन्होंने इस प्रकार लिखा था । "मैंने बारह वर्षों बाद और लगभग 1000 दिनों तक लैतिन अमेरिकी, कैरेबियन और अफ्रीकी सरकारों व वहाँ की जनता के पास आपकी दवाओं और दाँवपेंच से भरा बैग लेकर फेरी लगाने तथा अधिकारिक फण्ड सम्बन्धी कार्य करने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा मेरे लिए

---

1. जी.एस फीन्ड्स और ए.बी न्यूटन 'लेबर मार्केट्स इन लैटिन अमेरिका' एस. एडवर्ड्स और एन. लास्टिंग द्वारा सम्पादित, वाशिंगटन टी.सी. ब्रुकिंग्स इन्स्टिट्यूट 1997, जेम्स पेज्रास और हेनरी वेभमेयर द्वारा उद्धत, एम.आर. जुलाई-अगस्त 1999, पृ. 49-50

बेशकीमती आज़ादी के बराबर है, क्योंकि इसके साथ ही मैं ने उस स्थिति में पहूँचने के लिए पहला बड़ा कदम उठाया है, जहाँ मैं लाखों गरीब और भूखे लोगों के खून से सने अपने हाथों को धोये जाने की उम्मीद कर सकता हूँ । ... खून इतना अधिक है कि वह नदियों में बहता है । वह सूखता भी है, वह मेरे पूरे शरीर पर लिपेट जाता है.... उसका दाग धोने के लिए पूरी दुनिया का साबुन कम पड़ जायेगा ।"[1]

उरुग्वे के विख्यान लेखक एजुआर्डो गैलियेनो ठीक ही लिखा है कि "हमारी पराजय हमेशा दूसरों की विजय में अन्तर्निहित रही है । हमारी सम्पत्ति, दूसरों की बडे साम्राज्यों और उनके सहज उत्तराधिकारियों की समृद्धि को लगातार सिंचित करते हुए हमारे लिये गरीबी उपजाती रही है ।"[2]

आज का नव उदारवादी कदम ऊपर से चाहे जितना मज़बूत और सर्वव्यापी दिखता हो, अन्दर से कमज़ोर है, यह बात हम यकीन के साथ कह सकते हैं । पूँजीवाद संकटग्रस्त है । उसका सबसे बड़ा संकट यह है कि जितनी ज्यादा संपत्ति बाज़ार में आनी चाहिए और जितना ज़्यादा उसका प्रसार होना चाहिए, वह नहीं हो पा रहा है । उदाहरण के रूप में विश्व बैंक से लेकर दुनिया की सारी ताकतों की लगातार कोशिशों के बावजूद पूँजीवाद की राह सुगम नहीं हो रही हैं । भारत को, पश्चिमी देशों के बाद औद्योगिक रूप से सबसे ज़्यादा विकसित देश माना जाता है, लेकिन यहाँ भी यह हालत है कि पूँजीवादी ताकतों को अपने विकास के लिए ज़मीन नहीं मिल रही है । पूँजीवादी विकास संकल्पना के विरुद्ध जो संघर्ष चल रहा है वह आगे बढ़कर और तेज़ बनने की संभावना

1. डेविसन एल. बुधु- एनफ इज एनफ, द एपेक्स प्रेस न्यूयार्क : 1990
2. एडु आर्डो गैलियेनो - ओपन वेन्स ऑफ लैटिन अमेरिका - पृ. 12

है । पश्चिम बंगाल के सिंगूर का संघर्ष इसका ज्वलन्त सबूत है ।

पूँजीवादी व्यवस्था के पहले भी बाज़ार रहा है । लेकिन इस स्थिति में कभी नहीं थी कि सिर्फ बाज़ार के लिए उत्पादन करें । पहले उत्पादन उपभोग के अनुसार होता था । आज बाज़ार समाज से अलग हो गया है । जब उत्पादन बाज़ार के लिए होने लगता है और बाज़ार आम तौर पर भूमण्डलीय बाज़ार होता है, तब उसके उतार-चढ़ाव का कोई अंदाज़ा नहीं होता । मतलब भूमण्डलीय बाज़ार आज अनिश्चितता में ही है । पूँजीपति चिंतित हैं कि लोग उपभोग नहीं कर रहे है । आज हर जगह बाज़ार खोले जा रहे हैं, मॉल बनाये जा रहे हैं, क्रेडिट कार्ड वगैरह के ज़रिये लोगों को खरीदने की सुविधाएँ दी जा रही हैं, विज्ञापनों पर पैसे खर्च किया जा रहा है, फिर भी लोग उम्मीद के मुताबिक खरीद नहीं रहे है। कहा जाता है कि ज़्यादात्तर मॉल घाटे पर चल रहे हैं । इसलिए कभी-कभी पूँजीपतियों को जबर्दस्ती लोगों को चीज़े खरीदने के लिए मज़बूर करना पड़ता है ।

उदाहरण के तौर पर एक घटना जो 1920-30 के दशक की है । अमरीका के फोर्ड और जनरल मोटर्स कंपनियाँ कार उद्योग शुरू करके बीस साल हो चुके थे, यह देखा गया कि कारें उम्मीद के मुताबिक नहीं बिक रही हैं। शहरी लोग गाड़ी खरीदने के लिए तैयार ही नहीं थे । उद्योगपति सोच में पड़ गए कि शहरी लोगों को गाँडी खरीदने के लिए कैसे मज़बूर किया जाये । यह तरीका निकाला गया कि शहरी लोगों के रहने और काम करने की जगहों को दूर कर दिया जाये । इसके लिए अमरीकी शहरों का नये सिरे से निर्माण किया गया ।

इसे आधुनिकतावादी नगर नियोजन कहा जाता है । उसकी बुनियादी बात यह है कि रिहाइशी इलाके अलग होंगे, उद्योग-व्यापार के इलाके अलग होंगे । रिहायशी इलाका लोगों के कामकाज के इलाके से जितना ही दूर होगा, उतनी ही ज़्यादा ज़रूरत होगी आने-जाने के वाहनों की । इस प्रकार का नगर नियोजन कार उद्योग के लिए बहुत कारगर साबित हुआ । कार बनानेवाली कंपनियों ने दूसरा काम यह किया कि सार्वजनिक परिवहन को धीरे-धीरे खत्म किया । जब यह स्थिति आ गयी कि शहर के अंदर यातायात का कोई साधन नहीं रह गया, तो गाड़ियों की खपत शुरू हुई । यह प्रक्रिया हमारे यहाँ भी देखी जा सकती है । मसलन, दिल्ली में सिलिंग वगैरह के जरिये रिहाइशी जगहों को कामकाज की जगहों से दूर किया जा रहा है । दिल्ली के आसपास दूर-दूर तक शिहाइशी बस्तियाँ बसायी जा रही हैं, ताकि लोगों को ज़्यादा से ज़्यादा कारों पर निर्भर होना पडे ।"[1]

समय अब बदल रहा है । ब्राजील में भूमिहीन श्रमिक आन्दोलन ने 24 राज्यों में फैले हुए सैकड़ों पेशों को संगठित किया है और 5 लाख परिवारों को बसाया है । राष्ट्रीय राजनीतिक आन्दोलन के रूप में संगठित इस आन्दोलन ने शहरी और ग्रामीण श्रमिकों को एक साथ लाकर नवउदारवाद के खिलाफ साझा संघर्ष छेड़ दिया।"[2] इस आन्दोलन ने ब्राजील सरकार को इतना आतंकित किया कि उसने राजनीतिक नेताओं को जनता से बचाने के लिए संसद के चारों और खाई खोदने के लिए 8,00,000 डॉलर खर्च करने की योजना बनाई है ।"[3]

अफ्रीकी राष्ट्रीय काँग्रेस पूँजीवाद की वकालत करते हुए बडे पैमाने पर विदेशी निवेश आमन्त्रित कर रही है । इसके विरुद्ध 1999 में दस लाख से

1. कथन - अक्तूबर-दिसंबर - 2010
2. जेम्स पेत्रास और हेनरी वेल्तमेयर, एम.आर. जुलाई - अगस्त 1999, पृ. 54
3. विजय प्रसाद - एफ.एल. 24 सितम्बर 1999 पृ. 60

अधिक शिक्षक-कर्मचारी सड़क पर उतर आये; जिसका अन्त 25 आगस्त को हुई एक दिन की राष्ट्रव्यापी हड़ताल के रूप में हुआ । 2000 में भी विरोध प्रदर्शन जारी रहे । दक्षिण अफ्रीकी ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस ने 31 जानवरी को सामूहिक संघर्षों के अभियान की शुरुआत की और उसकी परिणति ।। मई 2000 को एक दिवसीय हड़ताल में हुई।"[1]

भारत में जनसंघर्ष के अनेक उदाहरण हैं । 2000 जनवरी में उत्तर प्रदेश के एक लाख विद्युतकर्मियों ने उ. प्र राज्य विद्युत बोर्ड के विभाजन और अन्ततः निजीकरण के विरोध में तीन हफ्ते की ऐतिहासिक हड़ताल की । राजस्थान में छः लाख से ज़्यादा सरकारी कर्मचारियों ने अपनी सुविधाओं में आयी कटौती के खिलाफ 64 दिन लंबी हड़ताल की । क्लिंटन की भारत यात्रा के दौरान अमेरिकी हितों के सामने भारत सरकार के समर्पण के खिलाफ देश भर के कर्मचारियों ने ।। मई को एक दिवसीय हड़ताल की । आन्ध्र प्रदेश में बिजली की दरों में बेतहाशा वृद्धि के खिलाफ जून में उग्र आन्दोलन आरंभ हुआ - करीब तीन महीने चला यह जनसंघर्ष 28 अगस्त को चरम पर पहुँच गया । दूर संचार कर्मचारियों ने दूरसंचार क्षेत्र का पहला निगमीकरण और अन्ततः निजीकरण करने की भारत सरकार की कोशिशों के खिलाफ कई बार हड़ताले कीं । उड़ीसा में जब सरकार ने शिक्षण संस्थानों के अनुदानों में भारी कटौती की घोषणा की तो हज़ारों शिक्षकों ने विधानसभा का घेराव किया । किसानों, मछुआरों और आदिवसियों की संघर्षों ने पूंजीवादी शक्तियों को संकट में डाल रहे है ।

मैक्सिकों में 20 अप्रैल 1999 को दक्षिण अमेरिका के सबसे बड़े शिक्षण संस्थान, नेशनल ऑटोनॉमस यूनिवर्सिटी के 2 लाख 70 हज़ार छात्रों ने शिक्षा के निजीकरण के सरकारी कदमों के विरोध की शुरूआत की । उन्होंने

1. एम.एस. प्रभाकर- एफ.एल 9 जून 2000 पृ. 60-62

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योंगों के निजीकरण तथा शासन वर्ग द्वारा युवाओं और मज़दूरों के जीवन स्तर पर किये जा रहे हमलों के खिलाफ हो रहे संघर्षो के साथ अपनी माँगों को भी जोड़ दिया ।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि पूँजीवादी व्यवस्था और शक्तियों के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध आजकल हो रहे हैं। साहित्य में भी यह प्रतिरोध दर्ज है । हिन्दी के जनवादी कहानीकारों ने 'भूमण्डलीकरण' के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठायी है । आगे हम ऐसे कहानीकार और उनकी कहानियों पर विचार करेंगे ।

भूमण्डलीकरण के खिलाफ रचित कहानियाँ

उदय प्रकाश की कहानियाँ

जनवादी कहानीकार उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर' और 'और अन्त में प्रार्थना' संकलन, समकालीन भारत के सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों की गलत धारणाओं पर लिखी, गयी सशक्त कहानियाँ है । 'पॉल गोमरा का स्कूटर' नव उपनिवेशवादी साँस्कृतिक हमले को गहराई से रेखांकित करती है । पश्चिमी साँस्कृतिक प्रभाव के कारण हमारी संस्कृति और परिवेश में हो रहे विनाशकारी परिवर्तन को व्यक्त करना उनकी कहानियों का लक्ष्य है । प्रस्तुत कहानियों के नायकों को आम आदमी की तरह परिस्थितियों से खुलकर विद्रोह या अपने विचारों को प्रस्तुत करने की उतनी क्षमता नहीं है ।

आज कल पूँजीवादी साम्राज्यवादी शक्तियों का हमला प्रत्यक्ष नहीं है । सैनिक कारवाई से ज़्यादा साँस्कृतिक दखलअन्दाज़ी ही होती है । वे हमारी भाषा,

संस्कृति सबको गायब कर रहे है । 'पाँल गोमरा' के पिता ने भारतीयता को सामने रखकर बेटे का नाम 'रामगोपाल' रखा था । लेकिन पश्चिमी संस्कृति के फल स्वरूप भारतीय युवा पीढ़ी इतनी बदल गयी है कि अपना नाम तक बदलने के लिए तैयार हो जाती है । इसीलिए रामगोपाल ने 'अपना नाम पॉल गोमरा कर दिया ।

उदय प्रकाश के शब्दों में 'युगान्तर के इस उथल-पुथल भरे सीमांत पर खडे हिन्दी पॉल गोमरा भौचक थे, यूगोस्लाविया, जर्मन जनवादी गणराज्य, सोवियत संघ जैसे विशाल राष्ट्र और सूपर पावर्स पृथ्वी के राजनैतिक नकशे से विलुप्त हो चुके थे । समाजवाद का यूरोप से सफाया हो चुका था और लोग बेसब्री से एशिया और तीसरी दुनिया से उसके गायब हो जाने का इन्तज़ार कर रहे है।"[1]

आज कल टी.वी. द्वारा प्रसारित उपभोग संस्कृति हमारी संस्कृति को निगल रही है । आज दर्शक मानसिक तौर पर गुलाम हैं और उपभोगवादी संस्कृति के शिकार बने है । हालांकि सूचना प्रौद्योगिकी की उपयोगिता आम आदमी तक पहूँची नहीं है फिर भी भारत में 'विश्व सुन्दरी' प्रतियोगिता का आयोजन होता है क्योकि भारत अब भूमण्डलीकरण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय अर्थतन्त्र का एक उभरता हुआ खुला मालगोदाम और उपभोक्ता बाज़ार बन गया है । आज कल विज्ञापनों के नाम कर नारी देह की नग्नता की प्रदर्शिनी की जाती है । विज्ञापनों में पैसे के लिए या सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में जीतने के लिए अपने जिस्म को प्रदर्शित करती स्त्रियाँ, विदेशी विचारों की आड़ में नवउपनिवोशवाद के साँस्कृतिक वैचारिक हमले में जाने-अनजाने भाग ले रही हैं ।

---

1. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर - पृ. 36

इस बाज़ारवाद की गिरफ्त से कोई मुक्त नहीं है - "यथार्थ, मशीन युग से निकलकर इलेक्ट्रॉनिक और उसके आगे के युग में जा रहा था । बच्चे जादुओं, परी कथाओं और डायनासोर जैसे प्रागैतिहासिक जन्तुओं के साथ गिल्ली डंडा या बेस बाँल खेल रहे थे । वे हनुमान जी, भीष्म पितामह और कृष्ण जी को कॉडबरीज के चॉक्लेट खिला रहे थे और मॉकडावेल का सोड़ा पिला रहे थे "[1]

'पॉल गोमरा का स्कूटर कहानी का नायक पॉल गोमरा स्कूटर खरीदने का फैसला करता है यद्यपि उसे स्कूटर चलाना नहीं आता है । यह तो उपभोगवादी चंगुल में पडे साधारण आदमी की विवशता है । हर कोई बाज़ार के पीछे भाग रहा है । "औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ का महान चकाचक युग आ गया है"[2] वैश्वीकरण आम आदमी की रोज़ाना ज़िन्दगी को कठिन बनाता जा रहा है ।

भाई का सत्याग्रह' कहानी में नायक सोचता है कि "तो यह थी उसकी औकात, बीस साल की मेहनत, लगन, सृजनात्मकता, ईमानदारी, संघर्ष सबकी असलियत । यह उत्तर आधुनिकता, यह बाज़ारवाद, यह भूमण्डलीकरण, यह आर्थिक उदारतावाद, किसके लिए है ? क्या इससे उसकी रायल्टी बढ़ जाएगी? क्या इससे दिल्ली के अस्पताल में भाई को एडमिट कराना और इलाज कराना आसान हो जाएगा ?"[3] इस कहानी के ज़रिए उदय प्रकाश हमे अवगत कराना चाहता है कि वैश्वीकरण से आम आदमी की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आनेवाला है ।

---

1. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर - पृ. 40
2. वही
3. वही - पृ 91

"वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड" कहानी तो उपनिवेशवादी परिवेश और प्रभाव का उत्तम उदाहरण है । इंग्लैंड से यहाँ आये लोग बर्बर, मूर्ख, असभ्य और बेहद लालची थे । दौलत कमाने की उसकी भूख, सम्पत्ति जमा करने की उनकी हवस कल्पनातीत थी । वे इस देश को लूटने आये थे । भोग, मज़ा, ऐयाशी और लूट-खसोट उनके चरित्र की खासियतें थीं। भारत को लूटकर संपत्ति के साथ वे लोग लौट चले । आज भी भूमण्डलीकरण के तहत हमारे देश को लूटने की कोशिश की जा रही है । वॉरेन हेस्टिंग्स को इंग्लैंड की अदालत के न्यायमूर्तियों ने गबन, जालसाज़ी, भ्रष्टाचार, बर्बरता, धोखाधड़ी ठगी और अपने अधिकारों के अनैतिक तथा मर्यादाहीन दुरुपयोग के आरोपों से पूरी तरह बरी कर दिया था । ऐसी ही वारदात बात आज भी हो रही है । पर नवउपनिवेशवाद को भारतीय अदालत गुनाह मानती नहीं है । वह तो एक नई आर्थिक व्यवस्था है । इस व्यवस्था में देश ही बिक्री वस्तु बन रहा है ।

संजीव की कहानियाँ

नव उपनिवेशवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाला एक और श्रेष्ठ कहानीकार है संजीव । संजीव की कहानियों का विषय भारतीय समाज की विविध समस्याएँ है । भूमण्डलीकरण और उपभोग संस्कृति के विरुद्ध उन्होंने कई बार आवाज़ उठायी है । सत्ता और उनकी नीतियों पर संजीव विश्वास नहीं रखते हैं । उनके अनुसार "यह काल काँग्रेसी, संस्कृति, उपनिवेशवादी सामंती, संप्रदायवादी, बाज़ार और उपभोक्तावादी हठधार्मिकता, हुड्डई, लुच्चई और बौद्धिक ऐयाशी के चैतन्य चूतियाने का भी काल रहा और इनके खिलाफ धीर-धीरे सिर उठानेवाली शक्तियों का काल भी।"[1]

1. सं गिरीश काशिद - कथाकार संजीव - पृ. 19

संजीव, विज्ञान और तकनालॉजी की संभावनाओं को स्वीकार करते है लेकिन विज्ञान की संभावनाऐं समाज के उच्च वर्ग के लिए मात्र है । संजीव के अनुसार "हमारे समय ने विज्ञान और तकनालॉजी की असीमित संभावनाओं के क्षितिज खोल दिये हैं ।...... यह युद्ध रूप से मानवीय मेधा और श्रम का अवदान है, मगर इस पर कब्जा पैसेवालों का है और यह सारी उपलब्धि उनकी सेवा में और हमें वधशाला की और धकेलने में लगती दिख रही है।"[1] उदाहरण स्वरूप टी.वी सेट को हम ले सकते है । आज बाज़ार में कई प्रकार की टी.वी सेट हैं, जिनका दाम हज़ारों से लेकर लाखों तक है । लेकिन गाँव में रहनेवाले उन लोगों के लिए इसकी क्या ज़रूरत है, जहाँ बिजली तक नहीं है ।

इसी तरह संजीव सूचना क्रान्ति पर भी प्रकाश डाल रहे हैं। उनके अनुसार "यह मनुष्य को हर अभिज्ञान से सुसज्जित कर, उसे और भी सही, और भी समर्थ मनुष्य बना सकती है मगर इसपर भी बाज़ारवाद का कब्जा है । यह भी वंचितों की मुक्ति के लिए नहीं, पूँजीपतियों और अपराधियों की शक्ति बढ़ाने के काम में आ रही है । साहित्य कला, संस्कृति के अब तक के विकासमान प्रतिमानों के चलते ही संवेदनाएँ मनुष्य और मनुष्य तथा, मनुष्य और प्रकृति में रागात्मकता बनाए हुए थीं, अब दिन काल ऐसे आने के संकेत हैं जहाँ संवेदनाओं की आगे कोई ज़रूरत नहीं रह जाएंगी । कारण, तब तक वे इन्सानी नस्ल की यन्त्र में बदल चुके होंगे । फिर साहित्य, कला, संस्कृति का यह ढाँचा फालतू के मनोविलास, 'वेस्टेज ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी' मानकर खारिज भी कर दिया जाए तो कोई आश्चर्य नहीं ।"[2]

---

1. सं गिरीश काशिद - कथाकार संजीव -पृ. 23
2. वही - पृ. 23-24

आगे संजीव की, भूमण्डलीकरण से जुडी कुछ कहानियों पर विचार करेंगे। विश्व पूँजीवाद के नए दौर, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद पर लिखी गई कहानियाँ प्रायः उनके प्रभावों को चित्रित करने का प्रयास करती हैं । इसके साथ मध्य वर्ग के आत्मकेन्द्रित उपभोगवादी दृष्टिकोण का संजीव ने तीव्र विरोध किया है । आज हम सुविधालोलुपता की उपज असामाजिकता के शिकार हैं । ज़्यादातर संवेदनहीन हो गए हैं ।

उनकी एक सशक्त कहानी है लिटरेचर'। इसमें एक दवा कंपनी, कहानी के नायक की साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग पहले से तैयार किए गए दवा के प्रचार-प्रसार के लिए करना चाहती है - "उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद पर लिखते वक्त संजीव ने इसका पर्याप्त ध्यान रखा है कि व्यक्ति की उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों की आलोचना कहीं बाज़ार के पक्ष में न चला जाए, जैसा इस दौर की कुछ कहानियों में नज़र आता है । हालाँकि बाज़ार का सर्वशक्तिमान स्वरूप संजीव की कहानियों में है । संजीव की खासियत यह है कि उनके नायक बाज़ारवादी प्रवृत्तियों के संदर्भ में गहरी आत्मालोचना से गुज़रते हैं और पाठकों को आत्मालोचना के लिए विविश करते हैं ।"[1] प्रस्तुत कहानी भूमण्डलीकरण से सीधे जुड़ी हुई है । जे. जे फॉमैटिकल्स की मशहूर दवा कंपनी भूमण्डलीकरण की चपेट में आकर दवा तो बना चुकी है पर उसके लिए रोग तैयार करने की और उसे एक सुन्दर नाम देने की जिम्मेदारी दीपक पर सौंपी जाती है । ख्याति प्राप्त साहित्यकार दीपक को जे. जे की कन्या ज्योति आकर्षित करती है ताकि दीपक, अपनी साहित्यिक प्रतिभा कंपनी की दवा का विज्ञापन करने केलिए बाध्य हो जाये । क्योंकि आज दुनिया मानती है कि "हकीकत और सपने या

1. सं गिरीश काशिद - कथाकार संजीव - पृ. 168

आग्रह के बीच रॉल आता है लिटरेचर का।"

इस तरह देश की औषधीय संपदा और बौद्धिकता के शोषण के बल पर 'सार्वजनिक स्वास्थ्य' के साथ खिलवाड करते स्वार्थी दल के पर्दाफाश का प्रयास इस कहानी में हुआ है । हम जानते हैं कि विदेशी कंपनियाँ हमारी स्वास्थ्य क्षेत्र में इस तरह फैल गया है कि जनता के शरीर उनकेलिए मुनाफा कमाने का माध्यम मात्र बन गये है । भारत की औषधीय संपदा आज पेंटट के सहारे विदेशी कंपनियों के हाथ में हैं । भूमण्डलीकरण के नाम पर बनानेवाली कुछ नीतियाँ ऐसी हैं, कि वे हमारी औषधीय संपदा को हम से दूर ले जा रही हैं ।

'कन्फेशन' कोलियारी उद्योग के निजीकरण पर लिखी गयी एक सशक्त कहानी है । सन् 1971 में जिस कोयला खदान का राष्ट्रीकरण किया गया, वही सरकार अब उसे निजी मालिकानों को बेच रही है । कोयला अब राष्ट्रीय संपत्ति न रहकर निजीकरण प्रक्रिया द्वारा विदेशी या देशी पूँजीपतियों की संपत्ति बन गया है । मज़दूरों के नेता साहा बाबू की हत्या और मज़दूरों का संघर्ष ही इस कहानी की मुख्य कथ्य है । मज़दूरों का साथ देनेवाली साहा की बेटी पल्लवी का विवाह निरन्तर बच्चे पैदा करनेवाली मशीन के रूप में तब्दील कर तोड़ देना, यह सब साज़िश के तहत होता है, फिर भी पल्लवी उन स्थितियों से विद्रोह कर एक क्रान्तिकारी की तरह फिर उठ खड़ी होती है । पल्लवी के अनुसार 'राष्ट्रीकरण होने के साथ ही क्षेत्र लूट और लिप्सा के चरागाह बनते चले गए । अघोषित निजीकरण की प्रक्रिया तो तभी से चल रही है । आज फर्क सिर्फ यह आ गया है कि राष्ट्रीयकरण की आड़ में इस घोषित निजीकरण की लड़ाई इस अघोषित

निजीकरण से शूद्र हो गई है । हमारी लड़ाई इस घोषित और अघोषित दोनों तरह के नियोजन के विरुद्ध जब तक नहीं होगी, राष्ट्रीकरण का कोई अर्थ नहीं रह जाता ।" पल्लवी की यह 'कन्फेशन' मज़दूरों की लड़ाई की एक सही दिशा तय करती है ।

आज की दुनिया प्रतिस्पर्धा की है । रिश्ते भी यहाँ बाज़ार में बिक दिये जाते हैं । इस यथार्थ को संजीव ने 'धावक' कहानी में प्रस्तुत किया है । 'भंबल दा' कहानी का नायक है । वह घर गृहस्थी समेटने और अपने दायित्वों को निभाने अपनी ज़िन्दगी को दाँव पर लगाता है । उसका भाई तो बौद्धिकता पर विश्वास रखनेवाला है । ज़िन्दगी आज दौड़ या रेस पर आधारित है । इस कहानी में प्रतिस्पर्धा की दौड़ में बडे भाई 'अशोक दा' शामिल होता है पर इसके विरुद्ध है 'भंबल दा'। कम से कम समय में ज़्यादा मुनाफा कमाना ही मानव का लक्ष्य बन गया है, जो इस तथ्य से दूर रहता है, वह हमेशा 'रेस' हार जाता है ।

'ब्लैक हॉल' कहानी का शीर्षक भौतिकी के एक सिद्धान्त पर आधारित है । इस कहानी में अलका उस उच्चमध्यवर्गीय आकांक्षा की शिकार है, जिसमे केवल प्रतिस्पर्धा, छीना झपटी, अन्धी दौड़, चरम उपभोक्तावाद, बाज़ार का प्रभुत्व और पद तथा धन को किसी तरह प्राप्त कर लेने की होड़ है । अलका के लिए मिस्टर मलहोत्रा और मिस्टर अग्रेवाल आदर्श पुरुष हैं । मिस्टर मलहोत्रा 'पार्ट टाइम' बिजनेस के बूते करोड़पति है । मिस्टर अग्रेवाल का लाख-लाख रुपयों का टर्न ओवर है । अलका की इसी सोच के कारण उनका छोटा-सा परिवार बिगड़ जाता है । उनका पति परमेश्वर प्रसाद, जिसे अलका ने पी.पी बना

दिया है, पुराने मान्यताओं का व्यक्ति है । वह अग्रेवाल के यहाँ आने-जाने से अलका को रोकता है और टी.वी. को फेंक देने का आदेश देता है । क्योंकि टी.वी आज कल हमे बेवकूफ घोषित कर रहा है । विज्ञापन के द्वारा हमे एक ऐसी दुनिया में ले जा रहा है, जहाँ सपनों के सामने आदमी अपने आपको गिरवी रखते है । पी.पी. तो बाज़ार के खेल से अवगत है । लेकिन अलका एक कृत्रिम जीवन जीने में मग्न है । वह अपने बेटे अंकुर को सफल बनते देखने के लिए उसपर कठोर अनुशासन लगाती है । उसके सामने चौहान साहब के बेटे का उदाहरण है, जो चौदह घंटे पढ़ता है । अलका अंकुर को 'अंक' कहकर उसे अंक (नंबर) में बदल देती है । 'ब्लैक हॉल' सृष्टि के नाश का अर्थ संकेतित करता है और उपभोगवाद आज समाज के लिए नाश का कारण बन गया है । संजीव ने ब्लैक होल को बाज़ारवाद के प्रतीक बनाकर नव उपनिवेशवाद की समस्या को पूरी सच्चाई के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।

असगर वज़ाहत की कहानियाँ

विषय की विविधता के बावजूद असगर की कहानियों में साम्प्रदायिकता की समस्या तथा सामाजिक अवमूल्यन का अपना अलग महत्व है । उनकी कहानियाँ दरअसल समाज के हाशिए पर पड़े लोगों की हैं । फिर भी सामाजिक संदर्भों से जुड़ने का जतन करती हैं । असगर की कहानियों में मार्क्सवादी चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट है "असगर वज़ाहत प्रगतिशील और मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित हुए । प्रगतिशील और मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित होने के कारण उन्होंने यह महसूस किया कि जीवन और समाज को समझना उतना कठिन नहीं

है ।...... यानी लेखक जो है वह प्रगतिशील शक्तियों के साथ है, हो सकता है कि अभी हम नहीं जीत पा रहे हैं अभी हमारा संघर्ष जो हैं कामयाब नहीं हो रहा है लेकिन इस बात पर विश्वास है कि हमारा संघर्ष जो है कामयाब होगा और यही रास्ता है इसी में सारे लोगों की भलाई है । तो विचारधारा से प्रभाव जो है वह यान्त्रिक नहीं है । असगर वजाहत इसे जीवन में घुला हुआ प्रभाव मानते है ।"[1]

असगर वज़ाहत ने अपनी कहानियों में वैश्वीकरण की प्रक्रिया पर व्यंग्य करता है, 'गिरफ्त' कहानी में वे लेखते है "हमारे देश में तिथियाँ भी महान हैं । जन्म-तिथि हो या पुण्य तिथि । कभी-कभी लगता है यदि तिथियाँ मतलब जन्म और पुण्य-तिथियाँ न होती तो हम भारतवासी क्या करते ? साल-भर बैठे मक्खियाँ मारते रहते । और इतनी अधिक मक्खियाँ मरने के कारण पर्यावरण असंतुलित हो जाता । तब पर्यावरण का संतुलन बनाये रखने के लिए अमेरिका से मक्खियाँ मँगवानी पड़तीं ।"[2]

वैश्वीकरण की इस दौर में साधारण व्यक्ति जीने के लिए कुछ भी बेचने के लिए तैयार हो जाते है । 'गिरफ्त' कहानी की इस वार्तालाप देखिए ।

डॉक्टर : गीताजी यह आदमी खून बेचता है ।

गीताजी : वेरी गुड..."

डॉक्टर : 'खून ही नहीं, यह आँख भी बेच सकता है ।"

मल्लू : "पचास हज़ार।"

डॉक्टर : 'किडनी भी बेचता है।"

1. आंबेकर बाबूराव -असगर वजाहत की कहानियों में व्यवस्था विरोधी स्वर- पृ. 52-53
2. असगर बजाहत - मैं. हिन्दु हूँ -पृ. 27

मल्लू : “एक लाख”।

डॉक्टर : दिल चाहें तो वह भी।”

मल्लू : “दो लाख”।

डॉक्टर : “मतलब यहाँ हर चीज़ बिकती है ।”[1] यह कहानी बाज़ार की संवेदनहीन बिकाऊ तेवर को असरदार ढंग से प्रस्तुत कर रही है ।

टी.वी. तो आज हमारी ज़िन्दगी की एक अभिन्न हिस्सा बन गया है । बाज़ार की हर धडकन को टी.वी, विज्ञापनों के ज़रिये हमारे सामने प्रस्तुत करता है - “श्री. टी.पी. देव की कहानियाँ” (दूसरी कहानी) में नायक श्री. टी.पी. देव 15 साल से रोज़ टी.वी. देखते आ रहे थे । एक शाम जब वह फ्लाट लौटा, तो सोचा, आज वह टी.वी नहीं देखेगा, वह टी.वी. के सामने बैठ गया, मगर उसे ऑन नहीं किया । अचानक टी.वी. अपने आप चल पड़ा । वह उछल पडा और जल्दी से उठकर टी.वी बन्द करना चाहा, मगर वह बन्द नहीं हुआ । उसकी आवाज़ तेज़ हो गई । वह घबराकर दूसरे कमरे चला गया । उसका पीछा करते टी.वी. भी आ गया । यह भाग दौड़ कुछ देर तक चली । अन्त में टी.वी से दो हाथ निकले । एक हाथ में दवा की गोली थी । दूसरे में पानी का गिलास । श्री देव ने गोली खा ली और पानी पी लिया । तब टी.वी बन्द हो गया । तब टी.पी देव ने उठकर टी.वी ऑन कर लिया ।

कहानीकार यही बताना चाहते हैं कि हम चाहकर भी बाज़ार की तिलस्मी दुनिया से बाहर नहीं निकल सकते हैं ।

1. असगर बजाहत -मैं. हिन्दु हूँ - पृ. 30

श्री टी.वी. देव की कहानियों की तीसरी कहानी में इसका चित्रण है कि एक शाम श्री. टी पी देव पार्क में कुछ देर आराम करने जाता है । वहाँ एक साथ दो खाली बेंचें पड़ी थीं । जल्दी से देव एक पर बैठ गया । फिर उठकर दूसरी पर बैठ गया । दो मिनट बाद फिर पहली पर आ गया । फिर एक पर बैठ गया, दूसरी पर पैर रख लिए । फिर दूसरी पर बैठकर पहली पर हाथ रख लिए । कुछ क्षण बाद दोनों बेंचों को मिलाया और उन पर लेट गया फिर दोनों बेंचों को अलग करके, एक पर चढ़कर दूसरे पर जस्त लगाई । यहाँ तो देव का पागलपन ही नज़र आता है । लेकिन इस पागलपन के ज़रिए असगर वज़ाहत इस तथ्य को अवगत कराना चाहते हैं कि नव औपनिवेशिक व्यवस्था में हर औसत भारतीय, बाज़ार में बिकनेवाली वस्तुओं में से ज़रूरी चीज़ों के चयन में असमर्थ हो जाते हैं। विज्ञापन और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की ताकत इतनी बढ़ चुकी है कि व्यक्ति के दिमाग काम करना बन्द कर देते हैं ।

श्री. टी.पी. देव की कहानियाँ की छठवीं कहानी में श्री. टी. पी. देव एक विज्ञापन पढ़ता है - यह कार खरीद कर आप अपने पड़ोसी के मन में ईर्ष्या पैदा कर सकते हैं । बात श्री. टी पी देव को जँच गई । वह एक कार खरीद लाया। मगर उसे यह मालूम नहीं था कि उसके पड़ोसी के पास कौन-सी कार है । उसे तो यह तक पता न था कि उसका पड़ोसी कौन है और कहाँ का है, लेकिन उसे यह मालूम था कि ईर्ष्या क्या होती है । इस लघु कहानी के ज़रिए असगर वज़ाहत ने वैश्वीकरण की दुनिया की प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या को बहुत ही कारगर ढंग से प्रस्तुत किया है ।

हमारी बदलती दुनिया और संस्कृति पर लिखी गयी श्री टी.पी. देव की कहानियों की नौवीं कहानी में ऐसा चित्रण है कि एक दिन देव के साथ एक अजूबा हुआ । श्री. टी.पी. देव को एक किताब मिली । उसकी समझ में नहीं आयी कि उसका क्या करें । इससे पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था । अब उसका क्या किया जाए । किसी दुश्मन और दोस्त को वह दे नहीं सकता, क्योंकि उसका कोई दोस्त या दुश्मन नहीं है । फिर सोचा कि कूडेदान में फेंक दे, मगर ध्यान आया कि किसी ने देख लिया तो ? आखिर तंग आकर उसने पुलिस को फोन किया । कुछ देर बाद पुलिस का विस्फोटक पदार्थों और बमों को 'फ्यूज' करनेवाला विशेष दस्ता आ गया । इमारत खाली करा ली गई । सर्तकता से किताब 'फ्यूज' कर दी गई । औद्योगिकरण की प्रवृत्ति आज इतनी बढ़ गयी है कि हमे आज किताब तक पढ़ने का समय नहीं है । किताब आज बेकार की वस्तु बन गयी है ।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक प्रगति एवं नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है । शहरों ने सभी प्राकृतिक संसाधनों को अपने कब्जे में कर लिया है । असगर वज़ाहत की कहानी 'बेनाम आदमी की कहानियाँ: तीन' में इसका सही चित्रण हुआ है । कहानी का लड़का गाँव से शहर जाकर फिर से गाँव वापस आया है । उसने खूब सोच विचार कर महानगर छोड़ा था । गाँव में पहली सुबह उसकी आँख खुली तो ऐसा लगा कि महाजनी सभ्यता की लानतों से मुक्ति मिल गई है । उसने एक गहरी साँस ली । लेकिन खाँसी का दौरा पड़ गया । तब ही उसके ताऊजी अन्दर आ

गए और उससे ऑक्सीजन का सिलेण्डर पहनने ने को कहा । तब उसकी खाँसी रूकी। लड़के ने कहा कि वह बाग देखना चाहता है । ताऊ ने उत्तर दिया कि बाग ? मतलब पेड़.... बेटा हमें तो जब देखने की इच्छा होती हैं तो महानगर के ग्रीन ग्लास हाउस में चले जाते हैं । आज पहाड़ तो कंकरीट बनकर चले गए और पानी तो महानगर से ही मिनरल वॉटर बनकर आता है । जानवर और चिड़िया तो महानगर के चिड़िया घर में देखने को मिलते है । मतलब आज गांव में कुछ भी नहीं है । तब लड़का पूछता है कि "ताऊजी महानगर के लिए बस कब मिलती है?" ताऊजी उत्तर देता है कि "हर सैंकेड पर जाती है बेटा।"[1] अन्त में लड़का वापस शहर चला जाता है ।

'विकसित देश की पहचान' में असगर वज़ाहत ने विकसित देश की रूपरेखा तैयार करके उसपर करारा व्यग्य करता है । कहानीकार के अनुसार विकसित देश में कपड़े बनाते नहीं है, वहाँ सिर्फ हथियार बनते है । विकसित देश में लोग खाना पकाते नहीं है, वे लोग 'फास्ट फूड़' खाते हैं । विकसित देश के लोग बच्चे पैदा नहीं करते है । जहाँ जवान लोग पैदा होते हैं, जो पैदा होते ही काम करना शुरू कर देते हैं । विकसित देश में आदमी सिर्फ जानवरों से प्यार करते हैं, क्योंकि आदमी और आदमी वहाँ आपस में मिलते ही नहीं हैं । विकसित देश विकासशील देश को कर्ज देते है, व्याज के साथ कर्ज देते है, अन्त में विकासशील देश को अपनी चाल में फँसाते है । विकसित देश में लोग मानसिक रोगी अधिक होते हैं, क्योंकि शरीर पर तो मानव ने अधिकार पा लिया है, मन पर कोई अधिकार नहीं पाया है । विकसित देश में सैन्य बल द्वारा ही मानव अधिकारों की रक्षा करते है । इस कहानी के ज़रिए असगर ने 'विकास'

1. असगर वज़ाहत -स्विमिंग पूल - पृ. 14

की संकल्पना और उसमें अंतर्निहित अमानवीयता की पोल खोल दी है ।

पंकज बिष्ट की कहानियाँ

सामाजिक विडंबनाओं को खुलासा करने में पंकज बिष्ट की कहानियाँ कारगर सिद्ध हुई हैं । जैसे अशोक भाटिया ने सूचित किया है - पंकज बिष्ट प्रायः हर कहानी में ऐसी घटना चुनते या गढ़ते हैं, जिसकी गतिशीलता समकालीन सामाजिक यथार्थ के किसी मुख्य अन्तर्विरोध का खुलासा करती जाती है । उनके पात्र इस अन्तर्विरोध ग्रस्त कथा-भूमि में विभिन्न वर्गों, जीवन-शौलियों और मूल्य-व्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं ।"[1] वर्तमान उदारीकरण के भीषण माहौल के बढते दबाव संदर्भ में भी, उससे उत्पन्न सामाजिक विसंगतियों को बहुत ही सफल ढंग से चित्रित करने में वे माहिर हैं ।

'बच्चे गवाह नहीं हो सकते ?' कहानी में निम्न मध्यवर्ग के अहं ग्रस्त मानस के साथ उपभोग संस्कृति को अपनाने की उनकी तीव्र लालसा को, और उसके भीषण परिणाम को दिखाया गया है । बिशन एक सरकारी क्लर्क है और राजरोग से पीड़ित है । वह निम्नवर्ग के कर्मचारियों की कॉलोनी में रहता है । जब पडोसियों द्वारा अपने बच्चों को टी.वी. देखने के लिए दुत्कारा जाता है तो पहले वह उनसे बिफर पड़ता है, फिर निश्चय करता है कि खुद टी वी सेट खरीदेगा, तथा अगले इतवार के फिल्म अपने घर पर देखेगे, नहीं तो वह अपने को कुत्ते का बच्चा समझेगा -"68 नंबरवाले सारे बच्चों समेत उसे अपने घर ज़बरदस्ती फिल्म दिखलाने ले गये थे और मध्यांतर में उसे एक पूरा कप चाय भी पिलवायी थी । चाय पीते-पीते ही उसने फैसला कर लिया कि अरे बिशनयां

---

1. डॉ. अशोक भाटिया - समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास - पृ. 79

तू आदमी का नहीं, कुत्ते का बच्चा होगा अगर अगले इतवार तक अपने ही घर पर फिल्म न देखें।"[1] मीड़िया ने किस तरह मध्यवर्गीय भारतीय समाज को अपनी गिरफ्त में ले लिया हैं, इसका उत्तम उदाहरण है बिशन का फैसला ।

बिशन कर्ज लेकर टी.वी. सेट खरीद लेता है । विशन को कर्ज चुकाने के लिए दूध, फल, हरी सब्जी आदि की कटौती करनी पड़ती है । एक तरफ वह बीमारी से तड़प रहा है तो दूसरी और वह दृश्य मीड़िया के जाल के खतरों से बेखबर भी है । टी.वी. से प्रसारित स्वप्न लोक उसे अपना लगता है । बिशन का बेटा रघुवा भी विज्ञापन को देखकर उछल जाता है । टी. वी पर चली गोली से बिशन इतना आतंकित हो उठता है, कि उसे लगता है, वह गोली अपनी छाती पर लगी है । वह अपने को रोक नहीं पाता तथा छाती दबाए थोड़ा उछलता है और ठप्प से फर्श पर औंधे मुँह जा गिरता है । रसोईघर की ओर खून की बहती हुई धारा उसके जीवन की असमय अन्त को सूचित करती है ।

पूँजीवादी सभ्यता हमारी आन्तरिक दुनिया में बदलाव ला रही है । हम एक नए प्रकार की मानसिक गुलामी में फँसता जा रहे हैं । कहानी में घटते सारे दृश्य का गवाह वह छोटा बच्चा रघुवा है, जो आदि से अन्त तक इस दृश्य मीड़िया के बढते प्रभाव का साक्षी है । रघुवा के माध्यम से यह दिखाया गया है कि यह दृश्य मीड़िया पूर्णतः एक गुलाम पीढ़ी को विकसित कर रहा है जो आनेवाले दिनों में पूँजीवादी सभ्यता का सबसे बड़ा प्रचारक सिद्ध होगा ।

उपभोक्तावाद के दुष्परिणामों पर लिखी गई पंकज बिष्ट की एक और कहानी है 'आखिर क्या हुआ'? इसमें पहाड़ी गाँव का लड़का मोहन राम सरदार

---

1. पंकज बिष्टि, चर्चित कहानियाँ - 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' पृ 71

जी के घर काम करने आता है । एक दिन शाम को घर की मालकिन और बच्चे शोपिंग के लिए बाज़ार निकलते है । बच्चे एक जूता खरीद लाते हैं । वह जूता 'एडिडास' कंपनी का है । मोहन भी उसी तरह का एक जूता खरीदना चाहता है। एक हज़ार पचानबे रुपया जूते के लिए खर्च करना मोहन केलिए अकल्पनीय था। वह अपने मन में जूता खरीदने की कल्पना करने लगता है । बाकी घटनाएँ सपने में होती हैं। सपने में जूता उड़नेवाला बन जाता है जैसे लोक कथाओं में उड़नेवाला घोड़ा होता है । मोहन मन में सोचता है क्या जूता इतना बड़ा भी हो सकता है ? उसके हाथ में जूते का फीता लग गया, उसने उसे लगाम बनाया और जूता उड़ने लगा । वह अपने गाँव की पहाड़ियों पर मंडराते हुए गाँव के बच्चों को चमत्कृत करता रहा । "अचानक उसने फीते के कोने को छोड़ दिया और दोनों हाथों से जूते की दीवार पकड़कर लटक गया"[1] ताकि वह भीड़ को बता सके कि "यह जूता उसकी चार महीने की कमाई की रकम का है।"[2] लेकिन अनियंत्रित जूता लड़खड़ा कर पलट जाता हैं, और मोहन गिर जाता है। सपने में गिरे मोहन की लाश छितरा जाती है । सबेरे उसके शरीर के टुकड़ों को देखकर सब चकित रह जाते हैं ।

यहाँ सपने उन लालसाओं के प्रतीक बन गए हैं जिन्हे उपभोक्तावाद ने अपने जाल फैलाने के लिए स्थायी भावों में बदल दिया है । कहानी के आरंभ में इसका ज़िक्र भी है कि - "ऐसे सपने देखे ही नहीं जाने चाहिए, जो किसी भी तरह की दुर्घटना की ओर ले जा सकते है । विशेषकर उन सपनों से तो बचना ही होगा, जो घातक की संभावना मात्र का आभास भी देते हो।"[3]

---

1. पंकज बिष्ट, चर्चित कहानियाँ - 'मोहन राम आखिर क्य हुआ?`' पृ. 157
2. वही - पृ. 157
3. वही - पृ. 144

यहाँ उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणामों को ही कहानीकार संकेत कर रहे हैं । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बाज़ार में चीज़ों को इतना विशिष्ट बनाकर पेश करती हैं कि उसकी गुणवत्ता और उपयोगिता का सवाल नगण्य होने लगता है । यहाँ जूते की विशेषता यह है कि वह एडिडास का है । बच्चों ने जब जूता खरीदा, तब उनकी नज़र सिर्फ 'एडिडास' पर थी, जूते पर नहीं । मोहन को भी विश्वास हो गया कि जिस समाज में वह आ गया है उसमें 'एडिडास' के जूतो ज़रिए वह विशिष्ट और सम्मानित बन सकता है । उपभोक्तावाद आदमी के अंदर सपना जगाता है । अपने जाल में फँसाता है । आखिर यही सपना उसके अंत की नींव भी बन जाता है । मतलब उपभोक्तावादी संस्कृति का यही दलील है कि वस्तुओं के बिना न व्यक्ति की अहमियत है, न अस्तित्व । कहानी उस दुर्घटना पर टिप्पणी पेश करते हुए समाप्त होती है कि - "कृपया अब प्रश्न न पूछें । इस तरह तो आप अपनी संस्कृति को ही झुठलाना चाह रहे लगते हैं । यह चमत्कारों का देश नहीं है?"[1] सच कहे तो यहाँ चमत्कार बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कर रही हैं । उस चमत्कार में चकित हर एक को लूटकर वे मुनाफा कमा रही हैं ।

उनकी एक और कहानी है 'मुकाम' जिसमे एक रिटायर्ड पिता की टूटन और बेचैनी को दर्ज किया गया है । नगरीकरण का प्रभाव किस तरह संबन्धों में पड़ते है, इसका सही चित्रण इस कहानी में हुई है । पत्नी की मृत्यु के बाद अकेलेपन से बचने पिता अपने बेटे के साथ शहर आता है । लेकिन बेटे, बहू और उनके बच्चों से उसे वह प्यार नहीं मिलता है जिसकी उसे प्रतीक्षा थी । आज आत्मीय संबन्धों को निभाने आदमी के पास बिलकुल समय नहीं है । पिता के अनुसार "यह एक अलग ही संसार था । उनके लिए बिलकुल अपरिचित और

1. पंकज बिष्ट, चर्चित कहानियाँ - 'मोहन राम आखिर क्य हुआ?`' पृ159

अनजान, जहाँ हर व्यक्ति की अपनी एक दुनिया थी । सुबह से जो अफरा - तफरी मचती, रात कहीं जाकर थमती और तब तक किसी के पास इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि दूसरे से दो शब्द भी बिना मतलब के बोल सके।"[1]

कहानी में वर्तमान ज़िन्दगी में टेलिविषन की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है । पिता कहता है "सुबह की कहानी का पटाक्षेप शाम को यथायोग्य होता, जब सब लौटे आते तो टेलिविज़न के चारों और जमा हो जाते जैसे जाड़ों में, पहाड़ में लोग आग के चारों और इकट्ठा होते हैं । उन्हें कई बार लगा है, संभवतः टेलिविज़न ही वह ऊर्जा है जो इन लोगों के दैनिक जीवन के ठंडेपन को तपाए रखने में सहायक हो रही है"[2] समय बिताने के लिए वह बच्चों को स्कूल छोड़ने जाता है । लेकिन दिल्ली शहर की आपाधापी और भीड़भाड़ से वह आतंकित हो जाता है । शहर के बदलाव देखकर वह सोचता है कि "क्या आज यहाँ किसी का लिहाज रह गया है ? क्या इस शहर की बसों में कोई बूढ़ा, बच्चा और औरत सम्मान से और सही सलामत चल सकते हैं? ड्राइवर-कंडक्टर की बात छोड़ो, क्या यहाँ का तथाकथित सूटेड़-बूटेड़ आदमी किसी तरह के संस्कार से परिचित है ?"[3] कहानी में शहरीय जीवन की असुरक्षा के साथ अपनी संस्कृति को भूलकर, पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात करते सभ्य समाज पर व्यंग्य कसा गया है ।

नागरीकरण और औद्योगिकरण, हमारे देश की समस्याओं को मिटाने में कामयाब नहीं हुए हैं । उनकी कहानी 'पन्द्रह जमा पच्चीस' इस सच्चाई को सही ढंग से रेखांकित करती है । दिल्ली देश की राजधानी है, वहाँ बडे बडे बिल्डिंग

1. पंकज बिष्ट,: चर्चित कहानियाँ - 'मुकाम' पृ 137
2. वही - पृ. 137
3. वही - पृ. 139

है, झोपडे हैं, बदबूदार गलियाँ है । सड़कों पर फैली गंदगी की तरह गरीबी और भूखमरी भी राजधानी की खासियत है । लेकिन बडे बडे मकानों के पीछे ये सारी असुन्दर बातें छिप जाती हैं । शर्माजी के शब्दों में ये बातें ज़ाहिर हैं - "अन्दर जाकर गली संकरी हो जाती है । किसी सुरंग-सी और फिर दो भागों में बंट जाती है । अगर नाक की सीध में चलें तो यह ऊँट की पीठ-सी चढ़ती उधर तुर्कमान गेट को निकल जाती है, जहाँ आकाश फिर चौड़ा हो जाता है, खुला-खुला, यहां ऊँची-ऊँची बिल्डिंगे हैं, लिफ्टों वाली । उनपर रात को रंग-बिरंगी रोशनियाँ जलती हैं । यह हद है । यहाँ से राजधानी शुरू होती है और इन बिल्डिंगों की ऊँचाई एक पर्दा है, जिसके पीछे छिप जाता है हिन्दुस्तान । हिन्दुस्तान की शर्म और बेबसी ।"[1]

भूमंडलीकरण के माहौल में बदतर होती किसानों की ज़िन्दगी पर लिखी गयी कहानी है कैलाश बनवासी की 'बाज़ार में रामधन' । कहानी मे रामधन का भाई मुन्ना जो नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि है, अपने पूर्खों की सम्पत्ति, दो बैलों को बेचकर कोई कारोबार शुरु करना चाहता है । वह पढ़ा लिखा नौजवान है । नौकरी न मिलने के कारण ही कोई छोटा-मोटा धन्धा शुरू करना चाहता है । इसके लिए वह बैलों को बेचने का ठान ले बैठा है । जब पिता इन बैलों को नीलामी में खरीद ले आये थे, तब बछडे ही थे । तब से रामधन की निगरानी में ही बैल पलने लगे थे । खेत जोतना, बेल गाड़ी में फाँदना, उनके दाना-भूसा का ख्याल रखना, उनको नहलाना-धुलाना, उनके बीमार पड़ने पर इलाज के लिये दौड-भाग करना आदि सब कुछ रामधन ही करता था ।

---

1. पंकज बिष्ट,: चर्चित कहानियाँ - 'पन्द्रह जमा पच्चीसे' पृ 13

बाज़ार में, रामधन के चंगे बैलों की बड़ी माँगा होती है । अच्छा दाम का वादा होता है । लेकिन रामधन चार हज़ार रुपया चाहता है । बात यह है कि वह अपने बैलों को बेचना ही नहीं चाहता है । किसान का जीवन तो खेत और बैलों से जुड़ा हुआ है जिसे नयी पीढ़ी समझ नहीं पाती है । कहानी में रामधन को अपने बैलों से बात करते हुए चित्रित है, मानो बैल भी इनसान हो "आखिर तुम हमे कब तक बचाओगे रामधन? कब तक ?"[1] अपने बैलों के सवाल का वह ठीक जवाब नहीं दे पाता । उसके मूँह से बस यों ही निकलता है कि अगले रोज़ शायद मुन्ना तुम्हें बाज़ार ले आ सकता है । आज बाज़ार सर्वव्यापी हो चुका है और बाज़ार संस्कृति से चाहते हुए भी कोई भी निकल नहीं पाता । आज बाज़ार की गिरफत से ज़मीन, ज़िन्दगी एवं उससे जुडे रिश्तों को कायम रखने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ रहा है ।

समकालीन कहानीकारों ने संस्कृति से दूर होती नयी पीढ़ी की मानसीकता के विरुद्ध सशक्त कहानियाँ लिखी है । संजीव की 'आरोहण' कहानी के भूप दा की राय में मिट्टी मिट्टी नहीं है, ज़िन्दगी है । पहाड़ी इलाके में अपनी पत्नी के साथ वह अकेला रहता है । कुछ साल पहले पहाड़ पर बहुत बर्फ गिरी थी । पहाड़ उसका बोझ न उठा पाया । बर्फ में भूप दा के खेत, मकान, माँ-बाप सब दब गये । रास्ते बदल गये, झरने बदल गये, नदियाँ बदल गयीं। लेकिन मेहनती भूप दा प्रकृति से जूझ लड़कर अपनी संपत्ति वापस बटोर लेता है, जिसमें उसकी आत्मा जुड़ी हुई है । भूप दा के अनुसार "कहाँ पडे हैं सब । यहाँ महीप है, बन्द है, मेरी घरवाली है, मौत के मूँह से निकाले गये खेत हैं, पेड है, झरना है । इन पहाडों में मेरे पुरखों, मेरे प्यारों की आत्मा भटकती रहती है । मैं उनसे बात

---

1. कैलाश बनवासी - बाज़ार में रामधन, हंस-आगस्त 2006, पृ. 71

करता हूँ । मैं अकेला कहाँ हूँ ?"[1] इस कहानी में संस्कृति से जुडे रहने की मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है जो उपभोगवादी संस्कृति के विरुद्ध दर्ज सशक्त विद्रोह है ।

भूमण्डलीकरण की समस्याओं पर हृषिकेश सुलभ की कहानी 'फ़ज़र की नमाज़' भी प्रकाश डालती है कहानी का नायक बदरू है । ब्याज की बढ़ती रकम ने उसका सब कुछ निगलना शुरू किया था । बिना कोई सूचना के एकाएक इलाके के सबसे बडा चीनी मिल बंद हो गया । दो सालों के गन्ने का पैसा मिल में रह गया । मिल के खुलने के इन्तज़ार में गन्ना खेत में ही सूख गया था । अगले साल इस उम्मीद में खेती लगायी गई कि शायद मिल खुल जायेगा । बदरू ने फिर कर्ज लेकर खेती की । लेकिन परिणाम और बुरा निकला । कर्ज से बचने का एकमात्र उपाय ज़मीन का एक चौथा हिस्सा बेचना ही था, सो बेच दिया गया। किसान को ज़मीन से अलग करने का मतलब उसे अपनी आत्मा से अलग करना है । बदरू की हालत इतनी बदतर है कि "जिन दिन कचहरी में बयनामे के दस्तावेज़ पर अंगूठा लगाकर वह घर लौटा, उस रात बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रोते रहे । उन्हें अपने अंगूठे पर घिन आने लगी थी । जी करता उसे काटकर फेंक दे ।"[2]

बदरू की ज़मीन का दूसरा टुकडा तब बिका था, जब उसका बेटा अरब जाकर पैसा कमाने का ठान ले बैठा था । लतीफ अरब गया, पैसा कमाया लेकिन बदरू के घर लौट नहीं आया । विदेशी संस्कृति को अपनाने से भारतीय युवा पीढ़ी में आए मानसीक बदलाव पर कहानीकार ने यहाँ प्रकाश डाला है। जब

---

1. संजीव - आरोहण - संजीव की कथायात्रा - दूसरा षड्यंत्र - पृ. 326
2. हृषिकेश सुलत्भ -फजर की नमाज़ - हंस आगस्त 2006- पृ. 145

टुकड़ों की ज़मीन से घर पालना मुशकिल हो गया था, तो थोडा और बेचकर बेटे महन्दी को भी अरब भेजता है। लेकिन उसकी लाशा ही घर लौटती है । ऐसे माहौल में किसान आत्महत्या ही कर सकता है लेकिन बूढा बदरू रातों रात अपने बचे हुए खेत में चटाई बिछाकर फज़र की नमाज़ अदा करता है, इस उम्मीद में कि अगर आसमान उमड आये, बादल बरसें तो बचा हुआ दल कट्‌टे का खेत पानी से तर जायेगा, तो उसमें रोपने-हल चलाने से मेहन्दी ज़रूर आयेगा। उसकी उम्मीद, जिन्दा है । बदरू के ज़रिए यद्यपि उम्मीद की किरण दिखाने की कोशिश कहानीकार ने की है । फिर भी पूँजीवादी शक्तियों के कारनामों से दूभर होती किसानी ज़िन्दगी पर ही कहानी केन्द्रित है ।

नव उपनिवेशवादी समाज में आम आदमी को जीने के लिए व्यवस्था के साथ समझौता ही करना पड़ता है । जितेन्द्र भाटिया की ‘अज्ञातवास’ कहानी में एक कार्यालयी कर्मचारी का चित्रण हुआ है जो हालातों से समझौता करता है। कार्यालय का उच्च अधिकारी उसका शोषण करता है । सरकारी क़ॉलनी का फ्लैट उसे किराये पर देता है । उसे सही नहीं लगता पर मज़बूरन चुप्पी साधता है । चीनी खरीदने लंबी कतार पर खडे होते वह काला बाज़ारी का शिकार बनता है । जब वह इसके खिलाफ आवाज़ उठाता है तो उसकी पिटाई होती है । घर लौटकर जब वह आईना देखता है तो आइने में, पिटा हुआ उसे अपना चेहरा किसी और का लगता है । “तभी अचानक उसकी नज़र आईने की तरफ चली गई और उसका दिल दहल गया । ठुड्‌डी से होंठ तक का हिस्सा सूजकर बदशक्ल हो गया था । दो तीन क्षणों तक उसे कुछ महसूस नहीं हुआ, फिर चेहरे की नसों में एक दर्दीला खिंचाव झेलते हुए उसे अचानक लगना शुरू हुआ कि

सिलवटोंवाले सस्ते शीशे के पीछे से झाँकता वह पिटा हुआ घिनौना चेहरा उसका नहीं किसी और का है।"[1] पिटे हुए चेहरा देख विद्रोह की भावना की जागृति सहज है । लेकिन यहाँ विद्रोह के स्थान पर अपने चेहरे को गैर का चेहरा समझना मनोहर को अधिक आसान लगता है । यह हालतों से समझौता करने का परिणाम है ।

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी कर्मचारियों के साथ 'हयर-फयर' की नीति अपनाती हैं । मज़दूरों की छंटनी जब चाहे ये लोग कर सकते हैं । इस समस्या पर लिखी गयी संजीव की कहानी 'चुनौती' का नायक कामतानाथ एक कारखाने का मौल्डिंग मिस्तरी है । वह होशियार है । अपनी क्षमता के लिए कंपनी से उसे 'विश्वकर्म' पुरस्कार प्राप्त है । फिलहाल उसकी नौकरी पर भी प्रश्न चिह्न लगा हुआ है । कंपनी में नई मशीनरी लगाने वाली है । इसलिए मज़दूरों की छंटनी होगी । कारखाना सरकार की देख-रेख में चलता है फिर भी सरकारी ऑर्डर प्राइवेट कंपनियाँ हडप लेती हैं । उसमें मैनेजमेन्ट की दखल है । मज़दूरों को एक प्लांट से दूसरी प्लांट में तबादला कर दिया जाता है । कामतानाथ राय को भी इस समस्या का सामना करना पड़ता है । छंटनी से वह डरता था । इसलिए कंपनी उसे जहाँ भेजते था वहाँ मन से काम करने लगता था । क्योंकि मज़दूरी उसकी मज़बूरी है । वह सोचता है - "रिटार्यर्ड बाप, अनब्याहे बेटे-बेटियाँ और बीमार पत्नी का बोझ, सर पर दिनों दिन भारी ही होता जा रहा है । जब तक उन सब केलिए अलग-अलग बिल तलाशकर अपनी ज़िम्मेदारी से बरी नहीं हो जाते, नाक, कान, आँख, मूँद सी लेने में ही भला है।"[2] कभी कभार उसके दिमाग में ऐसी चिन्ता आती है कि यदि काम करते-करते मर जाएँ, तो बाप की

1. जितेन्द्र भाटिया - अज्ञातवास - पृ.
2. संजीव - चुनौती - संजीव की कथायात्रा - पहला पडाव - पृ. 430

नौकरी बेटे को मिल जाएगा । लेकिन यह बात भी उतना आसान नहीं है । नयी मिशनरी की वजह से नई भरती नहीं होती है । ऐसे माहौल में मज़दूर मानेजमेन्ट के चेले बनना उचित समझते हैं, लतीफ की तरह । लतीफ़ खुलकर बताता है कि आज हराम की रोटी ही पचती है । आखिर बदहाली को झेलते-झेलते कामता नाथ अफसर के खिलाफ बोल उठता है "हर कोई बनियागिरी या दलाली नहीं कर सकता, आप लोगों की तरह । आप आदमी को छाँटकर मशीनें क्यों लगा रहे हैं ? इसलिए न कि आदमियों की तरह उन्हें भूख-प्यास, मान-सम्मान, छुट्टी, सिक का चक्कर नहीं होगा, न उसके बाल बच्चे होंगे । यह आप क्यों भूलते है कि आप का काम भी कोई मशीन संभाल सकती है । आप सोचिए आप को हटाकर एक सूपर कम्प्यूटर रखा जाए, आप और आपका परिवार बेरोज़गार हो जाए, को आप पर क्या गुज़रेगी।"[1] वह मैंनेजमेन्ट की खोखली राजनीति को समझता है । उनके खिलाफ आवाज़ उठाने में दोबारा सोचने की ज़रूरत नहीं पड़ती - "इस ख़र्चीले एक्स्पेरिमेन्ट की सफलता के बाद यह प्लेनिंग क्यों रद्द कर दी गई ? क्यों कम्पीट कर गये इससे इंफेरियर माल बनानेवाले भी । और क्यों हथिया लिये हमारे दूसरे ऑर्डर्स भी प्राइवेट कंपनियों ने, जबकि सरकार ही खरीददार है ? सरकार खुद हमें पूँजीपतियों के सामने घुटने टेकने को कहती है और विकास की बात करती है।"[2] वह अपने बनाए कास्टिंग पर लेटता है, जिसपर वह सम्मानित था और जिसे अब तोड़ने का आदेश दिया गया है । कहानी में सरकार की नई आर्थिक नीति के तहत काम करती कंपनियों की अमानवीयता और उसके खिलाफ उठती मज़दूरों की कमज़ोर आवाज़ को दर्ज करने की कोशिश हुई है ।

---

1. संजीव - चुनौती, संजीव की कथायात्रा - पहला पड़ाव - पृ. 430
2. वही - पृ. 430

संजीव की कहानी 'हलफनामा' में पूँजीपतियों के शोषण और मज़दूरों की त्रासद ज़िन्दगी की हकीकतें चित्रित हैं। हनीफ अदालत के सामने खड़ा है । उसपर अपने मालिक को मारने की कोशिश का इल्ज़ाम लगा हुआ है । उसका सेठ उसके बचपन का दोस्त है । बचपन में उसने सेठ की काफी मदद की थी। बदले में सेठ ने अपनी फैक्टरी में काम दिया और अपने बगीचे के सेर्वेन्ट क्वार्टर में रहने की जगह भी दी । दरअसल सेठ की नज़र हनीफ की बीवी पर पड़ी हुई थी । सेठ अपने घर के पुराने टी.वी. सेट, फ्रिज़, धुलाई मशीन, मसाला पीसने की मशीन आदि देकर हनीफ की बीवी को पटाता है । हनीफ की बीवी उसे 'नामर्द' समझती है और हनीफ से रूठकर कहीं चली जाती है । सेठ कारखाने में नए प्रदूषण नियंत्रण मशीन लगाने के नाम पर मज़दूरों की आधी तनख्वाह हड़प लेता है । हनीफ उसके खिलाफ बोलता है । उसे तेज़-दिमागी जानकर सेठ दूसरी चाल चलाता है । उसे नौकरी में तरक्की देने का वादा करता है । अन्य, मज़दूरों पर निगरानी रखनेवाले निरीक्षक के रूप में हनीफ को नियुक्त करते है लेकिन वह इस पद को टालता है, जिस पर बात बिगड़ता है और उसे सेवैट क्वार्टर से निकाल दिया जाता है, कत्ल की कोशिश का इल्ज़ाम लगाकर उसे फैक्टरी से भी निकाल देता है ।

हनीफ तो सेठ की उपभोगनीति को खूब समझता है - "वह नहीं चाहता था कि हमारी निजी सोच का एक तकरार भी रह जाए । हमारे दिमाग में हम सब वहीं, उतना ही और वैसा ही सोचे, या करें जो जितना और जैसा वह चाहा था। जबकि मैं चाहता था कि मैं कुछ अपनी दीन दुनिया' के बारे में सोचूँ..... उसने रहम खाकर मुझे रोज़ी रोटी और आश्रय दिया, उसने मुझे पूरा आदमी बनाने के

लिए फ्रिज, कूलर, मिक्सिग ग्राइंडिंग मशीन ही नहीं कलर्ड टी.वी. भी दिया कि वह अपने तमाम कामगारों का बौद्धिक धरातल ऊँचा उठाने के लिए स्वस्थ मनोरंजन मुहैया कराता है, मगर हमारी ज़रूरतें और प्राथमिकताएँ तय करने का अधिकार उसे क्यों है, और हमे क्यों नहीं है ।"[1] हनीफ की यह पहचान समूचे उपभोगवादी नैतिकता के खिलाफ विद्रोह है ।

पूँजीपतियों के शोषण पर लिखी गयी उदय प्रकाश की कहानी 'हीरालाल का भूत' में हीरालाल शोषित मज़दूरों का प्रतिनिधि है । फिर भी दुःख सहते हुए मालिकों की सेवा करने के लिए वह मज़बूर है । हीरालाल, हरपाल सिंह का नौकर है । ठाकूर हरपाल सिंह तथा पटवारी कुल भूषण सिंह हीरालाल की बीवी का बलात्कार करते हैं । सारी हवेली में सुबह से हीरा चक्कर काटता है- "बाहर बैठकी में पान तम्बाखू चाय लेकर खडा हुआ हीरालाल, कुए से बाल्टि खींचकर काँवर ढोता हीरालाल, आँगन में बैठकर सब्जी काटता हीरालाल, विमला माल्किन के छोटे बाबु को कंधे पर बिठाकर इधर उधर दौडाता हीरा लाल, वह एक ही पल में सारे घर में मौजूद रहता । सरला बेबी स्वेटर बुनती, धीरे से बोलती-हीरालाल पानी और ज़रा देर में हीरालाल लोटा गिलास लेकर खडा मिलता । छोटे बाबू पिंपियाते, छिछी आई और हीरालाल उसे उठा लेता । बैठक में ठाकुर हरपाल सिंह पान का डब्बा खोलते "लौंग नहीं है" हीरालाल लौंग लेकर खड़ा मिलता । वह जहाँ कभी भी प्रकट हो सकता था । पूरी हवेली में उसकी सासें गूंजती।"[2] इतना सबकुछ करने पर भी मालिक उसके साथ अन्याय करता है । हीरालाल के पिता सुधन्ना के पट्टे में डेढ एकड़ ज़मीन थी, जिसे ठाकुर

---

1. संजीव - हलफनामा - संजीव की कथायात्रा - तीसरा पडाव - पृ. 57
2. उदयप्रकाश - हीरा लाल का भूत - तिरिछ - पृ. 127

हरपाल सिंह, पटवारी से मिलकर अपने नाम कर लेता है । कहानी में हीरालाल के द्वेष और आत्मसंघर्ष का भी चित्रण है । वह रात को जागकर रोता है - "हीरालाल रो रहा था उसका पूरा शरीर सिकुडता, फिर फैलता और हिचकियों के साथ उसकी घूटी हुई रुलाई बाहर फूल पड़ती । यह ऐसा करुणा और दर्दनाक रोना था, जिसमें चेहरा ही नहीं, हीरालाल का समूचा शरीर, फेफडे और आत्मा तक शामिल थी।"[1] आखिर हीरालाल पागल कुत्ते के काटने से, ठाकुर के प्रति वफादारी का एलान करते-करते मर जाता है । अपनी हीन हालत के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए कतराते आवाम के चित्रण के ज़रिए संघर्ष करने की आवश्यकता की ओर भी कहानीकार इशारा कर रहा है ।

जितेन्द्र भाटिया 'ग्लोबलाइज़ेशन' शीर्षक कहानी में बदली के मज़दूरों की यातनाएँ एवं संत्रास चित्रित है । अस्थाई मज़दूर असंगठित हैं । वे कई प्रकार की यातनाओं के शिकार हैं । आर्थिक शोषण ही इसका मुख्य कारण है । एक ओर स्थाई मज़दूर इनका विरोध करते हैं तो दूसरी ओर ठेकेदार कम वेतन के ज़रिए आर्थिक शोषण करते हैं । इस कहानी का प्रमुख पात्र नारायण सदाशिव मोरे है। वह अपने परिवार के साथ अलसुबह ट्रेन में फैक्टरी पहूँचता है । गेट के बाहर बेरोज़गार लोगों की लंबी कतार एक रोज़ाना नज़ारा है । जब सात का भोंगा बना, ठेकेदार शिरके सेठ ने बाहर निकलकर ऐलान किया 'चार माणस' इसका अर्थ यह है कि आज सिर्फ चार लोगों को ही काम मिलेगा । शिरके सेठ ने तीन लोगों का नाम लिया तो नारायण बेचैन हो गया - "अब कोई चानस नहीं, नारायण ने सोचा और फिर आखिरी बदहवासी में अचानक बिजली की तेजी से अपनी दो

---

1. उदयप्रकाश - हीरा लाल का भूत - तिरिछ - पृ. 127

ऊँगलियाँ हवा में उठा दीं । दो ऊँगलियों का मतलब था दुगुनी, यानी बीस रुपये की कटौती । अपने वेतन से बीस रुपये काटने की इज़ाजत से नारायण को काम मिला । औरतों को काम देने की सेठ को ज़्यादा दिलचस्पी है क्योंकि उनमें से हर एक से वह दस की जगह बीस की कटौती वसूल करता है । वहाँ कोई उससे पूछनेवाला भी नहीं । जिन्हें काम नहीं मिला वे लोग सामने के बुच कंपनी की ओर भागते हैं जहाँ पगार दस रुपया कम है । कंपनी के स्थाई मज़दूर रोज़ाना नियमित रूप से गेट में आकार नारा लगाते हैं । वे भी बदली के इन मज़दूरों से सहानुभूति या रहम नहीं दिखाते है । मज़दूरों के बीच की दूरी और अनबन का फायदा पूँजीपति वर्ग उठाता है ।

भूमण्डलीकरण उदारवादी नीति के तहत बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कभी भारत में कंपनी शुरु करती है या यहाँ की किसी कंपनी का साझा बनती है या किसी कंपनी को निगलती भी हैं । कहानी में इसकी ओर भी प्रकाश डाला गया है । मालिक लोग कंपनी के साठ टक्का हिस्सा कोरिया की किसी बडी दवा की कंपनी को बेच रहे हैं । स्थाई मज़दूरों को निकाल दिया जा रहा है तो नारायण जैसे बदली के मज़दूरों की क्या हालत होगी ? इसका जवाब किसी पास भी नहीं है, पर पाँच साल की उम्र से बदबूदार झोंपड़ी में एक-एक दिन के हिसाब से जीनेवाले नारायण इतना तो समझ चुका है कि गरीबों और खस्ताहालों के तबकों के बीच भी तबके हैं, जिनमें लगातार कश्मकश चलती रहती है । इस जद्दोजहद में अवसरों की समानता जैसे फिज़ूल ख्याल के लिए कहीं कोई जगह नहीं है । इस कहानी में भूमण्डलीकरण की विभीषिकाओं की और गहरा संकेत मिलता है।

बदली के मज़दूरों की बदहालत, शोषित वर्ग के बीच संघर्ष, हमारी चुनी हुई सरकार के बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चपेट में आने की त्रासदी आदि अनेक दुर्निवार समस्याएँ कहानी में दर्ज हैं ।

जितेन्द्र भाटिया की 'चक्रव्यूह' भी पूँजीवाद के इस नव उपनिवेशवादी दौर में वर्ग-विभक्त समाज में पूँजीपतियों और उनके दुमछल्ला सरकार द्वारा रचित चक्रव्यूह में फंसे सर्वहारा वर्ग की कहानी है । निम्न श्रेणी के मज़दूरों की हालत बिलकुल गुलामों की तरह हो गई है । इस कहानी के ज़रिए कहानीकार साबित करते हैं कि भूमण्डलीकरण के नाम पर विकास का जो भ्रम फैलाया जाता है वह विकास नहीं बल्कि पूँजीपतियों द्वारा हमारी जनता के खून की अन्तिम बूँद को भी सबसे सस्ते भाव पर चूसने का षड्यंत्र है । 'चक्रव्यूह' एक फैक्टरी के निम्न स्तर के मज़दूरों के बहुत ही न्यायपूर्ण संघर्ष को कुचला देने की कहानी है । इसकी आवृत्तियाँ आज आम बात हो गई हैं । बोनस की माँग करने के लिए पिछले अठारह दिनों से मज़दूर मैनेजिंग डायरक्टर से मिलने का प्रयास कर रहे थे । कंपनी ने सत्रह प्रतिशत लाभ घोषित किया था और उसके दो दिन बाद ही फैक्टरी में काम की रफ्तार बढ़ाते वक्त सेठ ने उन लोगों को आश्वासन भी दिया था कि उन्हे एक-एक महीने की तनख्वाह बतौर इनाम मिलेगी । वह वादा झूठ साबित हो गया । मैनेजमेन्ट हमेशा किसी न किसी बहाना बनाकर उनको लगातार धोखा देता रहा । इसके विरुद्ध लड़ने के लिए उनका कोई यूनियन नहीं था क्योंकि यूनियन वगैरह से सेठ को सख्त चिढ़ थी और दफ्तर में काम करनेवाले सब क्लर्क जानते थे कि ऐसी किसी चीज़ का सहारा लेने का मतलब नौकरी से हाथ धोना है । मज़दूर एक दिन सेठ से बोनस के बारे में बोलने

के लिए जबरदस्त मिलते है । सेठ उसे कुचलने के लिए मज़दूरों के इस कदम को घेराव घोषित करता है । सेठ पुलिस को बुलाता है । मज़दूरों के नेता गिड़गिड़ाते हुए उनके पैर पकड़कर कहते हैं कि हमने आपका घेराव नहीं किया है । हमारी माँग सिर्फ बोनस पर तुरन्त ही फैसला करने का है । लेकिन पूँजी भरा दिल पिघलते नहीं है । सेठ का षड्यन्त्र सफल हुआ । नेता बाहर पहूँचते ही बाकी लोग अपनी बची नौकरी को भी नष्ट करने का इल्ज़ाम लगाकर उन्हे मारने लगा । साथ ने पुलिस ने भी उन्हे मार-पीटकर सत्ता के प्रति वफादारी प्रकट की। इस समय सेठ इनकम टैक्स बचाने की कोशिश में अपनी पत्नी की तनख्वाह का वाउचर का इन्तज़ाम करवा रहा था । संघर्ष की असफलता हमारी समकालीन वास्तविकता है । लाठी-गोली के बलबूते पर जनतांत्रिक संघर्षों को कुचलने की नीति औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के इतने सालों के बाद अब भी ज़ारी है। इसका प्रमुख कारण है मज़दूरों में एकता का अभाव । शोषितों को अलग-अलग व्यक्ति के रूप में बिखेरने में नवउपनिवेशी ताकतें विजय प्राप्त कर चुकी हैं ।

नव उपनिवेशवाद का वर्तमान दौर तो सर्वहारा-विरोधी समय है । भूमण्डलीकरण और निजीकरण के नाम पर विकास और मुक्ति का जो सपना हमारा शासक वर्ग दिखा रहा है उसकी असलियतों को पर्दाफाश करनेवाली कहानी है 'टेपचू'। शोषण और दमन के खिलाफ सर्वहारा वर्ग के समझौता विहीन संघर्ष इस कहानी में चित्रित है । टेपचू बचपन में ही सामंतवादी शोषण का शिकार हुआ था । एक दिन टेपचू को गुंडे मार कर सोन नदी में फेंक देते हैं । पर वह बच जाता है । एम.ए.ए किशनपाल सिंह के पुआल पर आग लगाकर

वह बैलाडिया पहुँच जाता है । कथावाचक की सिफारिश पर वह कारखाने का मज़दूर बनता है । फिर एक दिन मज़दूरों की छँटनी का सरकारी फरमान जारी होता है । इसलिए कि जापान ने उस कारखाने से लोहा खरीदना बन्द कर दिया है । यहाँ विदेशी कंपनियों पर निर्भर भारतीय हालत का दयनीय रूप ही उजागर होता है । मैनेजमेन्ट फौरन छँटनी शुरू करता है । टेपचू इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाता है । पहले संघर्ष में वह अकेला था, लेकिन बाद में तमाम मज़दूर वर्ग उसका साथ देता है । टेपचू की अगुवाई में चल रही हड़ताल को कुचलने के लिए पुलिस टेपचू को गिरफ्तार कर, गोली चलाती है, और फिर जंगल के पेड़ पर लटका देती है । मज़दूरों के आपसी संघर्ष में मारे जाने की झूठी खबर भी फैला देती है । पोस्टमार्टम टेबुल में आँखे खोलकर टेपचू डाक्टर से उसे बचाने का अनुरोध करता है । इसके पहले भी कई बार टेपचू के हमले से बचने का चित्रण कहानी में है । बचपन में पुरनिहा तालाब में कमलगट्टे बटोरने की कोशिश में पानी में डूबने पर परमेसुर द्वारा बचा जाना, ताड़ी लेते वक्त ताड़ से नीचे गिरने की घटना, किशन पाल सिंह के गुंडों द्वारा मारकर नदी में फेंकने की घटना, आदि टेपचू के अजय और मज़बूत अडिग व्यक्तित्व का सूचक है । उदय प्रकाश ने टेपचू के माध्यम से सर्वहारा की अजेय शक्ति और अनवरत संघर्ष को ही प्रस्तुत किया है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पूँजीवाद का वर्तमान दौर, भूमण्डलीकरण और उपभोगवादी संस्कृति का है । भूमण्डलीकरण के नाम पर आजकल पूँजीवादी-साम्राज्यवादी ताकते जडें जमा रही हैं । गलत समय के विरुद्ध लिखी गयी ये रचनाएँ रचनाकार को दरअसल समकालीन बनाती हैं । सचमुच वर्तमान

अमानवीय माहौल के प्रति एक प्रतिबद्ध रचनाकार की आत्मा की बेचैनी और असहमति ही इन कहानियों में गूँजती हैं ।

सांप्रदायिकता की पोल खोलती कहानियाँ

सांप्रदायिकता में उदारता के स्थान पर संकीर्णता सर्वोपरि हो जाती है अतः इसमें स्नेह-सूत्र के बन्धन शिथिल पड़कर घृणा का पाश कसता जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी 'अतिथि दोवो भव' इस यथार्थ को सच्चाई के साथ प्रस्तुत करती है । सलमान साहब को मिश्रीलाल गुप्त के पडोसी सचमुच देवता के समान मानकर उनकी सेवा करते हैं । हाथ में पंखा, चारपाई, गुड़, पानी, भोजन हर प्रकार की सुविधा देते हैं । किन्तु जब उन्हें पता चलता है कि वह मुसलमान है, तो उन्हें आधा-अधूरा भोजन करके ही उठना पड़ता है । 'कहानी की बिडम्बना देखिए कि मिश्रीलाल के पड़ोसी पाण्डेजी की उदारता को संकीर्णता में बदलते ही देवता-समान माने जा रहे सलमान साहब को अपनी थाली माँजनी पड़ती है।"[1]

सांप्रदायिक उन्माद पर लिखी स्वयं प्रकाश की कहानी 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा।' विशेष उल्लेखनीय है । इंदिरागाँधी जी हत्या के बाद घटित साप्रदायिक दंगें की पृष्ठभूमि में लिखी कहानी में मध्यवर्ग की खोखली सामाजिकता, आत्मीयता तथा उनकी कायरता को बड़ी प्रभावपूर्ण शैली में व्यक्त किया गया है । एक बूढ़ा सरदार दंगें से बचने के लिए रेलगाड़ी के एक कूपे में घुसता है । वहाँ बैठे हिन्दू उसे ऊपर लेटने तथा चादर ओढकर सोने की हिदायत देते है । वे अपनी साहसिकता दिखाते हुए कहते हैं कि जब तक हम हैं, तुम्हें कुछ

---

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन हिन्दी कहानी - युगबोध का सन्दर्भ - पृ. 113

नहीं होगा । जब दंगे वालों को पता चलता है कि वहाँ सिख धर्म का कोई है तो जबरदस्त घुसकर बूढे सिख के केश और दाढ़ी नोच डालते है, बुरी तरह उसकी पिटाई करते है। यात्री केवल दर्शक रहते हैं । उन लोगों के जाने के बाद लहूलुहान सिख को यात्री मदद का आश्वासन तथा प्रस्ताव रखते हैं । वह बूढ़ा सिख उनकी झूठी दिलासा का प्रमाण अपनी दुर्दशा के रूप में प्राप्त कर चुका है । फिर भी वह उनसे सिर्फ चाय का पैसा मांगता है । मध्यवर्गीय आत्मकेन्द्रित और पलायनवादी वृत्ति को यह कहानी सहजता और निर्ममता से उघाड़ देती है।

धर्म किस तरह रिश्तों को तोड़ते हैं, इसकी ज्वलंत मिसाल है चित्रा मुद्‌गल की कहानी 'रूना आ रही है'। रूना का रिश्ता तय हो गया है, शगुन की रस्म भी हो चुकी है । किन्तु रूना की बुआ, जो स्वयं अविवाहित है, की निकटता एक मुस्लिम लड़के से हो जाती है । इस कारण रूना का रिश्ता तोड़ दिया जाता है । रूना बुआ को ही रिश्ता तोड़ने की दोषी मानती है । धर्म की संकीर्णता मनुष्य की मनुष्यता पर प्रश्नचिह्न लगाती है और सम्बन्धों को तोड़ने का कारण बनती है । युवा कथाकार सैली बलजीत की कहानी 'मैं ज़रूर आऊँगा-चन्द्रकान्त' में कथानायक अपने पुराने मित्र चन्द्रकान्त की माँ की मौत पर उसके गाँव जाना चाहता है । लेकिन करतारपुर तक जाकर भी उसका साहस उसे मित्र के गाँव तक जाने नहीं देता । पत्नी और रिश्तेदार उसे वहाँ के आतंकपूर्ण वातावरण से खबरदार कर देते हैं । आतंक की वजह संबन्धों पर पड़ते प्रभाव इस कहानी में भी प्रस्तुत किया गया है ।

शिव सागर मिश्र की कहानी 'अकेला आदमी' साम्प्रदायिक सौहार्द का

आदर्श रूप प्रस्तुत करती है । पहाड़गंज के एक समृद्ध मुहल्ले में डॉ. अली का दवाखाना है । सांप्रदायिक दंगों के समय हिन्दू लोग उनके दवाखाने में जाने से डरता है क्योंकि वह मुसलमान है । किन्तु डॉक्टर स्पष्ट कहता है कि वह केवल डॉक्टर है । उसे न हिन्दुओं से कुछ लेना है न मुसलमान से । मुहल्ले में रहनेवाली लक्ष्मी से वह आकर्षित था, लक्ष्मी भी उसे प्यार करती थी । किन्तु इस प्रेम की परिणति परिणय में इसलिए नहीं हो ताकि मुहल्ले के सत्तावन प्रतिशत हिन्दुओं को उस पर से विश्वास न उठ जाए । बाद में जब वे बीमार पड़ जाते हैं तो मूहल्ले के लोगों को उनकी उदारता का महत्व समझ में आता है । उनके अन्त तक सब मुहल्लेवाले उनकी सेवा करते है । डॉ. अली के मृत्यु पर सबको भारी दुख होता है । डॉ अली सांप्रदायिक सौहार्द का उत्तम उदाहरण बन जाते हैं ।

उदय प्रकाश की कहानी 'और अन्त में प्रार्थना" भारत की गंभीर सांस्कृतिक संकट सांप्रदायिक फासीवाद पर अधिष्ठित है । हमारी सांस्कृतिक राजनीति एवं सामाजिक जडों पर हमला करनेवाली नव-फासीवादी शक्ति संघ परिवार पर वार करने की बेहतरीन कोशिश प्रस्तुत कहानी में हुई है । इस कहानी के नायक डॉ. वाकणकार डॉंक्टरी के पेशे के साथ-साथ हिन्दुओं के पुर्नजागरण के लिए भी काम करते रहे थे । उन्होंने सोचा था कि जवहरलालजी के न रह जाने और स्वतंत्र पार्टी के खत्म हो जाने से भारतीय राजनीति के धरातल पर जो शून्य पैदा हुआ है, उसे भरने के लिए जो चक्रवात देश की राजनीति में पैदा होगा, उसमें सबसे प्रचंड और सर्वव्यापी बवंडर हिन्दुवादी राजनीति का होगा । इसी तरह थुकरा महाराज जैसे साधारण हिन्दू सोचने लगा कि गाँव में यज्ञ हवन फिर होने लगेंगे । मुंडन, कान छेदन, यज्ञोपवीत जैसे संस्कार फिर से प्रचलित होंगे ।

गो हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया जाएगा । ब्राह्मण खीर खाएँगे, शूद्र सेवा करेंगे । यहाँ उदय प्रकाश ने फासीवादी मानसिकता को स्पष्ट रूप से दिखाया है । वर्णाश्रम पर आधारित व्यवस्था में जो अमानवीयता थी उसे दुहराने की कोशिश में जुड़ी हैं नव फासीवादी ताकतें ।

डॉक्टर के अनुसार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का दायित्व देश में हिन्दुओं की एकता व जागृति साबित करता है । रूढ़ियों को निष्कासित कर वेदों और उपनिषदों की गहराई में उतरकर सत्य हासिल करना है । संघ में डॉक्टर का अटूट विश्वास था । लेकिन धीरे-धीरे यह विश्वास टूटने लगता है । उनका सन्देह सही साबित हुआ कि सत्ता में संघ के आने पर भी शासन में कोई बुनियादी फर्क नहीं हुआ । उनके मन में संघ का मतलब समाज को सुधारकर बदलने की शक्ति थी । लेकिन उनका विश्वास मिटता नज़र आ रहा था ।

वह अपने आप से सवाल करने लगता है कि "आगर भविष्य में कभी हिन्दू राष्ट्र बना तो वह किस हिन्दु का राष्ट्र होगा"[1] कोतमा में विद्यार्थियों पर पुलिस द्वारा चलाई गोली से मारे गए सामाजिक कार्यकर्ता रफीक अहमद के पोस्टमार्टम के संदर्भ में सरकार इस घटना को सांप्रदायिक दंगे का रंग देना चाहती थी । डॉक्टर वाकणकर ऐसा करने केलिए बिलकुल तैयार नहीं था । धर्म के नाम पर जो भिन्नता और असहिष्णुता की छाप अंग्रेज़ों ने भारत पर लगाई थी, आज हम भी उसी को दुहराते हैं। धर्म का राजनीति में गलत इस्तेमाल का उत्तम चित्रण इस कहानी में मिलता है ।

असगर वजाहत की कहानी 'ज़ख्म' में सांप्रदायिक और सांप्रदायिक

1. उदय प्रकाश - और अन्नकत में प्रार्थन- पृ. 109

विरोधी सम्मेलनों पर तीखा व्यग्य किया गया है । उनके अनुसार "बदलते हुए मौसमों की तरह राजधानी में सांप्रदायिक दंगों का मौसम आता है । फर्क इतना है कि दूसरे मौसमों के आने-जाने के बारे में जैसे स्पष्ट अनुमान लगाए जा सकते है वैसे अनुमान सांप्रदायिक दंगों के मामले में नहीं लगते । फिर भी पूरा शहर यह मानने लगा है कि सांप्रदायिक दंगा भी मौसम की तरह निश्चित रूप से आता है।"[1]

सांप्रदायिक सम्मेलनों पर व्यग्य करते हुए असगर वजाहत लिखते हैं कि "अन्दर मंच पर बड़ा-सा बैनर लगा हुआ था । इस पर अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू में सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलन लिखा था । मुझे याद आया कि वही बैनर है जो चार साल पहले हुए भयानक दंगों के बाद किए गए सम्मेलन में लगाया गया था । बैनर पर तारीखों की जगह पर सफेद कागज चिपकाकर नयी तारीखें लिख दी गयी थीं। मंच पर जो लोग बैठे थे वे भी वही थे जो पिछले और उससे पहले हुए सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलनों में मंच पर बैठे हुए थे।"[2] यहाँ कहानीकार उस तत्थ को हमारे सामने रखा है कि सम्मेलन आयोजकों के पास इतनी ताकत नहीं है कि ये दंगे के वक्त उन बस्तियों में जाएँ और लोगों की मदद करें। सिर्फ सम्मेलनों के आयोजन से सांप्रदायिक समस्याओं का समाधान नहीं निकाल सकते हैं ।

असगर वजाहत के अनुसार सरकार सांप्रदायिकता को पनपने का मौका देती आई है । उनके अनुसार "अगर तुम्हारे दो पडोसी आपस में लड़ रहे हैं, एक दूसरे का पक्का दुश्मन है, तो तुम्हें उन दोनों से कोई खतरा नहीं हो सकता....

---

1. असगर वजाहत - मैं हिन्दु हूँ - पृ. 7
2. असगर वजाहत - मैं हिन्दु हूँ - पृ. 16

उसी तरह हिन्दू और मुसलमान आपस में ही लड़ते रहे तो सरकार से क्या लड़ेंगे? क्या कहेंगे कि हमारा ये हक हैं, हमारा वो हक हैं और तीसरा फायदा उन लोगों को पहुँचता है जिसका कारोबार उसकी वजह से तरक्की करता है।"[1]

अपनी कहानियों के द्वारा असगर वजाहत सांप्रदायिक समस्याओं के समाधान भी हमारे सामने रखते हैं- "मैं कहता हूँ शहर में हिन्दू-मुसलमानों का अगर दो ग्रूप बन जाए जो जान पर खेलकर भी दंगा रोकने की हिम्मत रखते हो तो दंगा करनेवालों की हिम्मत पस्त हो जाएगी ।... अगर उन्हें पता चल जाए कि सामने ऐसे लोग हैं जो बराबर की ताकत रखते हैं, उनमें हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी, तो दंगाई सिर पर पैर रखकर भाग जाएंगे"[2]

उनकी एक और कहानी "मैं हिन्दु हूँ' में सैफू नामक एक अनपढ़ मुसलमान लड़के को प्रस्तुत किया गया है, जिसे मुहल्ले के लड़के ने दंगे के नाम पर डराते हैं । वह इतना डर जाता है कि अपने भाई से पूछता है "बडे भाई, मैं हिन्दु हो जाऊँ ?" यहाँ सैफू उस आम आदमी का प्रतीक है जो हिन्दू सांप्रदायिक ताकतों से बचने के लिए हिन्दू बनना चाहता है । मुसलमान, सिर्फ जीना चाहता है । समाज में हिन्दुओं को ऐसे भीषण व भीकर रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनके दिलो दिमाग में रहम की भावना तक नहीं है ।

गुरू-चेला संवाद' में उन्होंने धर्म के नाम पर जनता को बेवकूफ बनानेवाले 'गुरुओं' पर प्रकाश डाला है । चेला, गुरु से प्रश्न पूछता है कि सांप्रदायिक दंगों में हत्याएँ करनेवालों को कानून कोई सजा क्यों नहीं देता है ? तब गुरू उत्तर देता है कि सांप्रदायिक दंगे में जो मरता है वह सीधे स्वर्ग जाता

---

1. असगर वजाहत - मैं हिन्दु हूँ - पृ.11
2. असगर वजाहत - मैं हिन्दु हूँ - पृ. 13-14

है । उसे स्वर्ग भेजने का उपकार हत्या करनेवाला देता है और हमारा कानून इतना बेशर्म नहीं है कि उपकार करनेवालों को फाँसी पर चढ़ा दे ।" ऐसे अमानवीय सत्य पर इतना सही और करारा व्यंग्य इससे बढ़कर कैसे किया जा सकता है ?

सांप्रदायिकता में युक्ति और सहिष्णुता के स्थान पर परंपरा और विश्वास व आस्था पर बल दिया जाता है । इसका साम्राज्यवादी ताकतें अपने हित के लिए गलत इस्तेमाल करती आई हैं यानि सांप्रदायिकता साम्राज्यवाद की कोख से जन्मी अवैध संतान है। इसका एक मात्र उद्देश्य साम्राज्यवाद के हितों को पोषित करके जनतंत्र और स्वाधीनता की चेतना एवं संघर्ष को कुचलना होता है।[1] इस से यह बात स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद और साँप्रदायिकता एक ही सिक्के की दो पहलू हैं। हिन्दी कहानिकारों ने इस हकीकत को समझा है और अपनी कहानियों के ज़रिए इस सत्य का खुलासा भी किया है ।

संजय की कहानी 'हममजहब' में लेखक ने रोज़ाना कमाकर खाने वाले मेहनतकश वर्ग पर प्रकाश डाला है । दंगों के समय इस वर्ग पर दोहरा आघात पड़ता है । एक तरफ तो इनकी आमदनी बन्द हो जाती है तो दूसरी तरह दंगेवाले इन भोले-भाले लोगों का इस्तमाल भी करते हैं । सांप्रदायिक दंगों के बाद कई दिनों से लगातार कर्फ्यू के कारण कपड़ों की फेरी लगाकार गुजर-बसर करनेवाले मन्नान का परिवार भूखमरी के सीमा तक पहुँच चुका है । बाज़ार बन्द होने से एक तो कोई सामान नहीं मिल रहा था, अगर मिल भी रहा था तो सोने के भाव । मन्नान फिर भी मन में सोचता है कि "इन सबसे मजहब को कितना फायदा हुआ,

---

1. मधुरेश - हिन्दी कहानीः अस्मिता की तलाश - पृ. 120

यह तो सात परदे में छिपा ऊपर वाला ही जाने, ... आदमी के बिना आदमी का काम नहीं चल सकता । भले ही जुनून में आकर आदमी, आदमी के ही खून का प्यासा बन बैठे"[1] इसलिए चावल उधार मांगने के लिए वह अपने ही धर्म के अब्बास के घर चला जाता है । वहाँ इस मुद्दे पर विचार हो रहा था कि दीन-धर्म की रक्षा के लिए हिन्दुओं से कैसे बदला लिया जाए । अब्बास वहाँ एकत्रित लोगों को भड़काने का पूरा प्रयास कर रहा था "हाँ हम भी दिखा देगे । उसकी पुलिस है, फौज-फांटा है ....। वे अकल्लियत में हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि हम नमक के बोरे हैं । इस दोतरफे जुल्म को हम बर्दाशत नहीं करेंगे, पुलिस बीच से हट जाए तो हम अभी उन्हें छठी का दूध याद' दिला दें ।..... आप लोग हौसला बुलन्द रखिए.... हमारा ईमान.... हमारा दीन हमारे साथ है"।[2] मन्नान को भूख से तडपते उसके परिवार की चिन्ता थी । उसे चावल तो मिला नहीं, दीन-धर्म की रक्षा के लिए हथियार खरीदने के नाम पर अब्बास ने उसे पचास रुपये का कर्ज़दार अवश्य बना दिया। वह सोचता है कि "महजब क्या आदमी को आदमी से इतना दूर कर देता है कि वह अपने मुहतरिफ के लिए ज़रा सा अफसोस भी न करे । .... लेकिन अपना और अब्बास का मजहब तो एक है, फिर भी अब्बास ने मन्नान को एक माशा चावल देना मुनासिब न समझा । तो क्या यह जुनून आदमी से इतना दूर कर देता है कि वह अपने हमसाए का भी ख्याल न करे।"[3] अन्त में अब्बान की बीबी को साड़ियाँ देकर उसे चावल खरीदना पड़ा । यह पूरी कहानी संप्रदायवाद के नारे का खोखलापन, मजहबी जुनून उभारकर आदमी को आदमी से लड़ाने के लिए किए जा रहे प्रयासों को प्रस्तुत करने की कोशिश है ।

---

1. संजय - हम मजहब (इंडिया टुडे, साहित्य विशेषांक 1992-93) - पृ. 83
2. संजय - हम मजहब (इंडिया टुडे, साहित्य विशेषांक 1992-93) - पृ. 84
3. संजय - हम मजहब (इंडिया टुडे, साहित्य विशेषांक 1992-93) - पृ. 87

स्वयं प्रकाश की कहानी ‘पार्टीशन’ में कुर्बान भाई का भरा-पूरा राष्ट्रवादी परिवार पार्टीशन के दंगे में समाप्त हो गया था । सब कुछ खोकर भी वह पाकिस्तान नहीं गया । कठिन संघर्ष करते हुए उन्होंने एक दूकान खोल ली । ईमानदारी के पर्याय कुर्बान भाई की दुकान उनके गुणों के कारण चल निकली। अपने व्यवहार से वह धीरे-धीरे कस्बे में अपना स्थान बनाना लगा । लोगों से मेल-जोल हुआ । धीरे-धीरे वह पढे-लिखे लोगों के संपर्क में भी आया । इन सबका परिणाम यह हुआ कि उसके दिमाग में भरा हुआ मजहबी कबाड़ साफ होने लगा । शुक्रवार की नमाज़ भी बन्द कर दी । उसके क्रियाकलापों से इमामबाड़े वाले तो नाराज़ थे ही, शाखा वाले भी नाराज़ हो गये । अधिक समय नहीं बीता था कि हिन्दुओं ने भी कुर्बान भाई को उसकी औकात बता दी । वकील ऊरवचंद के इशारे पर गोम्या ने जान-बूझकर कुर्बान भाई से झगड़ा कर उसे पीटा। कुर्बान भाई के साथ जुलूस बनकर लोग थाने की तरफ चले पर रास्ते से ही अधिकांश लोग खिसक गए । ऊरवचन्द के दबाव के कारण थाने में रिपोर्ट भी दर्ज न हो सकी । हिन्दुओं के इस-व्यवहार से खिन्न होकर वह अपनी ही दुनिया में सीमित हो जाता है । यों बिलकुल अकेला बन गया । एक दिन किसी से कह रहा था “आप क्या खाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं ? कह रहे हैं, पार्टीशन हुआ था । हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है।”[1] चारों तरफ से निराश कुर्बान भाई को अपनी स्थिति का बोध होने पर पुनः उसी पुराने साप्रदायिक माहौल में लौटना पड़ा, जिसे वह काफी पहले छोड़ चुका था ।

सामाजिक और पारिवारिक जीवन पर सांप्रदायिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से हम आज भी देख सकते हैं । धर्म या संप्रदाय पर आधारित नकली

1. स्वयं प्रकाश - आयेगे अच्छे दिन भी - पृ. 42

भेदभाव, परंपराऐं, विश्वास और संस्कार की जड़ें समाज में इतनी गहरी बैठ चुकी हैं कि इन्हें काट फेंकना कठिन है । गीतांजलि श्री की कहानी 'बेल-पत्र' इस तथ्य का उत्तम उदाहरण है । ओम और फातिमा की शादी हो जाती है । फातिमा ने अपने धर्म और रिश्तेदारों से लड़कर ओम से शादी की थी । शादी के बाद फातिमा अपना स्वतंत्र अस्तित्व चाहती थी । वह चाहती थी कि कोई उसे मुसलमान की नज़र से न देखे । लेकिन घर और समाज के सभी लोग उसे उसकी हकीकत का एहसास कराते रहते थे । ओम की माँ की याद में फातिमा ने पूजा का फूल बदला । शन्नो चाची उसका खुला विरोध तो नहीं करती पर हर सोमवार को आकर फूल बदलने लगी । उसे डर है, कहीं फातिमा फिर फूल न बदल दे । ओम के दोस्त कहते हैं कि "अजी मानो न मानो, मुसलमान होता ही है ज़्यादा मुसलमान.... हम तो सिद्दीकी के घर ईद हमेशा जाते है । जबकि हमें मालूम है कि वह छुप के गाय काटते हैं ।"[1] इसी तरह अविश्वास और शक को फातिमा लगातार झेल रही थी । इसी कारण उसने अपने मन में पूर्व-संस्कारों को जगा दिया । जिन चीज़ों को वह छोड़ चुकी थी, उसे अपनाने लगी । इन्हीं परिस्थितियों में अब्बा की बीमारी का समाचार पाकर फातिमा विवाह के बाद पहली बार मायके आई । अम्मी और अब्बा की खुशी के लिए वह नौहा और नमाज़ पढ़ने लगी । ओम और फातिमा के बीच रोज़ झगडे होने लगे । दैनिक जीवन में कोई न कोई घटना ज़रूर होता, जिसमें फातिमा को ओम का हिन्दूपन या ओम को फातिमा का मुसलमानपन झलकने लगता । ज़ाहिर है कि पढे लिखे होकर भी हम धर्म के नकली भेदभाव को समाप्त न कर पा रहे हैं ।

1. हंस (दिसंबर 1987) पृ. 54

स्त्री को उपभोगवस्तु की तरह मूल्यांकित करते औपनिवेशिक संस्कृतिक परिवेश में लिखी महिला कहानिकारों की कहानियाँ

1960 के दशक के उत्तरार्द्ध और 70 के दशक के पूर्वार्द्ध में अमेरिका और पश्चिमी देशों की उग्र नारीवादी महिलाओं ने विवाह की अवधारणा और पूँजीवादी संस्कृति के खिलाफ बिगुल बजाया था। धीरे-धीरे औरत के मन में प्रतिरोध की भावना उमड़ आई ।

औद्योगिक क्रान्ति ने औरत को सार्वजनिक उत्पादन के क्षेत्र में स्थान दिलाया तथा उसे आर्थिक शक्ति बनने का आधार प्रदान किया । लेकिन सच बात तो यह है कि भूमण्डलीकरण ने औरतों को अतीत की तुलना में निर्ममता से एक बिकाऊ जिस्म में बदल दिया है । स्त्री आज उपभोक्ता संस्कृति की शिकार है । उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री की देह को एक वस्तु या कमोडिटी में बदल दिया है । विज्ञापनों में स्त्री की देह और अंगों को बिक्री बढ़ाने के ज़रिए के रूप में प्रयोग किया गया है । सौन्दर्य के प्रतिमान भी आज कल बदल रहे हैं । स्त्री की सुन्दरता को खास ढंगों में फिक्स कर दिया गया है । उनका कुदरती सौन्दर्य नष्ट करके उसे सिर्फ देह में सीमित कर दिया गया है । इसी स्त्री देह को कोलोनाइज्ड करने का मतलब माल को बेचना तथा उपभोक्ता तैयार करना है । आज नारी सिर्फ फैशन की प्रतीक न रहकर सेक्स की चिह्न भी बन गई है । इसे हम उपभोक्तावादी सौन्दर्य शास्त्र कह सकते हैं । सुधीश पचौरी के अनुसार "उपभोक्तावाद, जीवन के हर क्षेत्र में घुस आया है । हर औरत मॉडल नज़र आती है । हर औरत से चाहा जाता है कि वह अपने शरीर पर खर्च करे । औरत की देह केन्द्र में आ जाती है।"[1] मीड़िया स्त्रियों में यही चेतना विकसित कर रहा

1. पंकज बिष्टः चर्चित कहानियाँ - 'पन्द्रह जमा पच्चीसे' पृ 13

है कि यह अपने शरीर पर सबसे अधिक ध्यान दे । उस पर खुलकर खर्च करे । वह कौन-सी क्रीम, शैम्पु, साबुन, सुगंधित द्रव्य, लिपस्टिक, व कपडे का इस्तेमाल करना है, ये सारी बातें विज्ञापनों के ज़रिए स्त्रियों तक पहुँच जाती है । साथ ही साथ स्त्रियों के दिलो दिमाग में यह धारणा ठूस दी जाती है कि इन सबके बिना ज़िन्दगी का कोई अर्थ ही नहीं है ।

उपभोक्ता, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, अपनी ज़रूरत के अनुसार चीज़ें न खरीदता है । बल्कि अपनी हैसियत, बाह्य प्रेरणा, आर्थिक सक्षमता व लोभ के अनुसार चीज़ें खरीदता है । हम जानते हैं कि भूमण्डलीकृत समाज में ब्रांड के आधार पर, आदमी की हैसियत बढ़ती या घटती है । जैसे प्रभा खेतान ने सूचित किया है - "ब्रांड से निर्मित होता हुआ उपभोक्ता स्वयं में एक ब्रांड बन जाता है.... इस उपभोक्ता संस्कृति का सृजन विज्ञापन के माध्यम से होता है और विज्ञापन संस्कृति संचार माध्यम का परिणाम है । भूमण्डलीय समाज में विज्ञापन संस्कृति एक अति-आभासी संस्कृति है जो किसी भी समूह के नियंत्रण से परे है। वह आधुनिक राज्यों की सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं को बेकार करती है।"[1]

जैसे सूचित किया गया, उपभोक्तावाद का सबसे सशक्त माध्यम है - विज्ञापन । विज्ञापन के ज़रिये वस्तुओं का प्रचार प्रसार व संग्रह से जुड़ी बातें उपभोक्ताओं को समझायी जाती है । उपभोक्तावाद की अंतिम परिणति है - वस्तुवाद । विज्ञापन चाहे कपडे, जूते, बैग व गहने की हो, सब में नारी शरीर को इस्तेमाल किया जाता है । विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता के आयोजन में

1. प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ, पृ. 123

बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बड़ी भूमिका है । इससे भारत की सभी औरतें ऐश्वर्या राय बनना चाहती हैं । इसके लिए वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सौन्दर्य साधन खरीद लेती हैं। दरअसल आधुनिक ज़माने में सौन्दर्य की परिभाषा व प्रतीक विश्व सुन्दरियाँ बन गयी हैं । खेत में काम करनेवाली मेहनती औरत में किसी को भी खूबसूरती नज़र नहीं आती है ।

भूमण्डलीकरण स्त्रियों के हित में बोलता हुआ नज़र आता है । स्त्री की आर्थिक अधिकारों के लिए ज़ोर देता है । भूमण्डलीकरण के तहत पूरे विश्व में यौन उद्योग पनप रहा है । प्रभा खेतान के मुताबिक - "पिछले दो दशकों से वेश्यावृत्ति और यौन-व्यापार में काफी बढ़ोत्तरी हुई हैं । .... तीसरी दुनिया की लाखों गरीब स्त्रियाँ और विशेषकर किशोर लड़कियाँ या तो अपने देश या पड़ोसी देशों में वेश्यावृत्ति का पेशा अपना चुकी है।"[1] पिछले कुछ दशकों से देह व्यापार ने उदारतावादी अर्थनीतियों के साथ अपना तालमेल बिठा लिया है । बाज़ारवाद ने सेक्स उद्योग को प्रेरणा व ताकत दी है । बढ़ते उपभोक्तावाद के कारण एशिया की पारम्परिक संस्कृति तेज़ी से दम तोड़ती जा रही है । सेक्स उद्योग के लिए एशिया उर्वर भूमि बन रहा है ।

आज एशिया में सेक्स वर्कर्स को वातानुकूलित कमरों में रखा जाता है। अच्छा खाना मिलता है और सेलुलर फोनों द्वारा इनसे संपर्क किया जाता है । भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप पुरुष, स्त्री को सिर्फ मनोरंजन के साधन व उपभोग वस्तु के रूप में ही देखते है । जिस तरह अन्य उपभोग वस्तु बाज़ार में बिकती है उसी तरह दाम देकर नारी शरीर को खरीदा जा सकता है । नारी सचमुच 'माल' बन गई है ।

---

1. प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ, पृ. 123

आज 'मज़ाजिंग पार्लर' के नाम पर सेक्स उद्योग को खुल्लम खुल्ला मान्यता दी जा रही है । पहले तो यह कहा जाता था कि वेश्यावृत्ति के बढ़ने की वजह सैन्य शक्ति का विस्तार है । प्रायः 'अंदर' के इर्द गिर्द देह व्यापार फलता फूलता था । अब सैनिकों का स्थान पर्यटकों ने ले लिया है - "न केवल यौन व्यापार एक राष्ट्रेतर उद्योग है बल्कि भूमण्डलीय स्तर पर यह सबसे अधिक लाभकारी उद्योग है और भूमण्डलीय पूँजीवाद के दौर में इसका व्यापक प्रसार होता जा रहा है । ..... इंटरनेट में इनके साईट अलग से रहते है, जहाँ वेश्यालय से लेकर वेश्याओं की तस्वीर तक की जानकरियाँ उपलब्ध हैं ।"[1] सच तो यह है कि भूमण्डलीय पूँजीवाद की ताकत से राष्ट्रीय विकास तो होता है किन्तु ऐसा भूमण्डलीकरण स्त्री समाज के हित में नहीं है । फिलहाल 'सेक्स टूरिज़म' मनोरंजन की आड़ में यौन-उद्योग को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैंधता प्रदान करने की वकालत करता है । वर्तमान उदारीकरण के दौर में ढाँचागत समायोजन नीति के कारण क्रमशः यह यौन उद्योग एक नये संसाधन के रूप में परिभाषित हो रहा है । निर्यात और विदेशी मुद्रा कमाने का यह सबसे प्रमुख साधन है । यह नगद फसल की तरह प्रयुक्त होता है । तीसरी दुनिया की देह देखने में जितनी सुन्दर है, उतनी ही सेवा में मनोहारी भी । परिणामस्वरूप औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान नव औपनिवेशिक दौर तक स्त्री सिर्फ पूंजी की बढोत्तरी की कच्चा माल ही है ।

आज भूमण्डलीकरण ने मानव को इतना आधुनिक बना दिया गया है कि पूरे भारत में देह व्यापार को लाइसेंस के साथ चलाने की कोशीश में है । विदेशों में यह पहले से ही प्रचार में है । बंबई व कोलकत्ता जैसे नगरों में यह एक हद तक लाइसेन्स प्राप्त करोबार ही है । देह व्यापार को वैधता देने केलिए

1. प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ, पृ. 144-145

कोलकता म्यूनिसिपल कॉरपेरेशन ने जो लाइसेंस जारी करने या उस पर विचार करने की बात की है, उस पर पहली प्रतिक्रिया यह होना स्वाभाविक है कि लाइसेंस से संभवतः एक अनैतिक कारोबार में एक हद तक व्यवस्था आएगी और अराजकता पर रोक लगेगी । दुनिया भर में गरीब, नाबालिग, बेसहारा, असहाय लड़कियों को सरकारी संरक्षण द्वारा राहत मिल जायेंगे । जब लाइसेंस से वेश्यावृत्ति को खुली छूट दी जाएगी तो दलाल, कोठे चलानेवाले, कमीशन खानेवाले लोग ज्यादात्तर लड़कियों को वेश्यावृत्ति में लगाने की कोशिश करेंगे । लाइसेंस का सहारे शायद भविष्य में सार्वजनिक स्थान पर वेश्यावृत्ति का विज्ञापन नज़र आयेगे । मतलब यह है कि देह व्यापार में अनचाहे जुडी या दबावों में आकर जुड़ी लड़कियों के लिए लाइसेंस से किसी भी तरह की राहत की संभावना नहीं है ।

'सेक्स अपील' और विज्ञापन आजकल एक दूसरे का पर्याय हो गये हैं। विज्ञापनों में स्त्री की नग्नता व मांसलता को इस्तेमाल किया जाता है । सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । पर सिगरेट के विज्ञापन में मांसल स्त्री की तस्वीर के साथ यह टिप्पणी भी होती है - "हर कश में नयी शक्ति का अहसास"। यह किस जागृति की ओर संकेत कर रहा है, यह तो कंपनी ही जाने । शू कंपनी के विज्ञापन में अपनी स्कर्ट को तेज़ हवा से बचाने की प्रयास करनेवाली महिलाएँ, कपड़े धोने के साबुनों के विज्ञापन में औरत की टाँगों और उरोजों को उभार पर प्रदर्शित महिलाएँ किस बात का संकेत करती हैं ? सेलुलर फोनों का विज्ञापन हो या साबुन का, उसमें नारी नग्नना और नारी-पुरुष के सेक्स के रिश्ते को ही उजागर करते हैं ।

फिलहाल दैह सौन्दर्य का बाज़ार फैला रहा है। जिसका जितना कसा बदन, चमकदार त्वचा, तीखे नैन-नक्शा, उत्तेजक अंग-भंगिमा हैं उसका उतना मोल है । बड़ी-बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियाँ सौन्दर्य को अपने हाथों में लेकर पीछे दौड़ रही हैं । भारत की हर लड़की ऐश्वर्या राय बनना चाहती है तो हर लड़का ऋत्विक रोषन - "मल्टी नेशनल कंपनियाँ अपना सब-डिवीज़न बनाकर या फिर बहुत छोटी पैकिंक के साथ मध्यमवर्ग तक घुसपैठ करने में उतारू है । पहले 250 रुपये की जो लिपिस्टिक थी, वही अब अपनी छोटी-छोटी पैकिंग के साथ 50-60 रुपये में बाज़ार में छा चुकी है । हालाकि ये ब्यूटी कंपनियाँ उपभोक्ता देश के तापमान या उनकी त्वचा सम्बन्धी शोधों पर केवल 2-3% पैसा ही खर्च करती हैं । इसके उलट विज्ञापन व प्रसार के लिए 20-25% लगती है ।"[1]

कॉस्मेटिक सर्जरी के बाज़ार ने अभिजात्य वर्ग के साथ मध्यवर्ग को भी अपने कब्जे में कर लिया है । होठो को रसीला बनाना, नाक को नुकूली करना कमर को छिलवाना, उरोजों को पुष्कल बनाना आदि कई काम कॉस्मेटिक सर्जरी से संभव है । सच कहे तो कॉस्मेटिक सर्जरी विशेषज्ञों के अनुसार शरीर से जबरदस्त छेड़छाड़ है जो घातक भी हो सकती है । सुन्दर होना और सुन्दर दिखना दो अलग-अलग बातें है । मुनाफे के लोभ में कंपनियाँ अंधाधुंध औरतों में सिर्फ प्रचार -प्रसार से हीनता और अपराधबोध ही पैदा कर रही हैं , जो सभ्य समाज के लिए कतई हितकर नहीं हो सकते ।

महानगरों में नारी सौन्दर्य को सबके सामने प्रदर्शित करने के लिए 'ब्यूटी कंटैस्ट' का आयोजन किया जाता है । जिस बडे घर की लड़की का चेहरा या

---

1. मनीषा - हमारी औरते -पृ. 165-166

बाल तक कोई देख नहीं सकता, वह सबके सामने अपने शरीर का प्रदर्शन कम से कम कपड़ों में करती है । अपने शरीर की नाप को सबसे नपवाती है । हर अदा से चलकर, मुस्कराकर सबका मन मोहने की कोशिश करती है । सारी कामुक अदाएँ वह इतना खुलकर प्रदर्शित करती है कि हर कोई उत्तेजित होता है । उसके चाहे कितने भी फोटो ले लो वह एतराज नहीं करती । सौन्दर्यप्रतियोगिता इंटननाशणल स्तर पर होती है । कई कंपनियाँ इसकेलिए भी प्रायोजक बनती हैं ताकि उनकी सौन्दर्य सामग्रियों की बिक्री हो । सौन्दर्य प्रदर्शन के वास्ते प्रसारित चैनल FTV, यह काम बखूबी निभा रही है ।

"भूमण्डलीकरण ने पितृसत्तावादी शक्तियों को मज़बूत बना दिया है । क्योंकि आज की संचार तकनीक पर पूँजीपतियों का पूरा कब्जा है । संचार माध्यम जिस तथाकथित आधुनिक स्त्री की छवि को पेश करते हैं, उसका उद्देश्य होता है कि स्त्री अपने शरीर के बारे में उसी तरह सोचे, जिस तरह पुरष चाहते हैं । वह पुरुष के निगाह से देखे जाने के लिए अपने को तैयार करे । अपनी सुन्दरता को पुरुष की नज़र से ही मापे। उनके लिए एक आधुनिक लड़की वह है, जो पुरुषों के मनोरंजन करने के लिए तैयार हो जाये ।"[1] आधुनिकता का मतलब है स्त्री को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर पुरुषों के समान अवसर देना । लेकिन भूमण्डलीकरण ने इस अवसर को सीमित किया है, जबर्दस्त कटौती की है । भूमण्डलीकरण ने स्त्री की मेधा, बुद्धि और विवेक को पीछे छोड़कर उसकी 'देह' को 'प्रोजेक्ट' किया है । सफल स्त्रियों की श्रेणी से ज़मीन से संघर्ष करनेवाली नारी गायब है, उपभोगवाद सफल स्त्रियों का प्रतीक है । ऐश्वर्या राय और प्रियंका चोपड़ा जैसे, जिनके पास काम, दम, इज्जत व शोहरता हैं ।

---

1. कथन - जुलाई - सितंबर 2010 - पृ. 63

आज की नवउदारवादी और भूमण्डलीय पूँजीवादी व्यवस्था ने स्त्रियों के विकास और सशक्तीकरण के नाम पर उन्हें सस्ते श्रमिकों के रूप में बदल दिया है । प्रसिद्ध मार्क्सवादी नेता वृंदा करात के अनुसार "भूमण्डलीय पूँजीवाद ढाँचे में स्त्रियों की जो वास्तविक स्थिति है, वह उनके सशक्तीकरण की नहीं बल्कि और भी कमज़ोर होते जाने की है । भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया की सबसे बड़ी बुराई यह है कि इससे असमानता बढ़ रही हैं । .... सरकार स्त्रियों को किसी काम पर लगाती है, तो उन्हें उसी तरह के काम की वही मज़दूरी या तनख्वाह दी जानी चाहिए, जो पुरुषों को दी जाती है । यानी स्त्रियों के श्रम का तो कम से कम उतना मूल्य तो दिया ही जाना चाहिए, जो श्रम बाज़ार में पुरुषों के श्रम का होता है । लेकिन स्त्रियों के संदर्भ में सरकार श्रम के मूल्य का नहीं, सेवा की बात करती है।"[1] उदाहरण के रूप में 'आशा' (एक्रेडिटेड सोशल हेल्थ एक्टिविस्ट) में अनेक स्त्रियाँ आँगनवाड़ी कार्यकर्ता के रूप में ऐसे काम करती हैं जैसे अपने परिवार की सेवा कर रही हो । आठ-दस घंटे काम करके भी न्यूनतम मज़दूरी तक इन लोगों को मिलते नहीं है । एक और उदाहरण है 'रेगा' (महात्मा गाँधी नेशनल रूरल एंप्लॉयमेंट गारंटी एक्ट यानी ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना) जिसमें मुख्य काम तालाब आदि बनाने का ही हैं। स्त्रियाँ दिन में कितनी टोकरी मिट्टी उठाती है, इसका कोई हिसाब नहीं है। "रेगा' जैसे सरकारी संस्थाओं में स्त्रियों को न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिल रही है । स्त्रियों के प्रति उसके इस रवैये के पीछे कोई जनतांत्रिक सोच नहीं, पूँजीवादी सोच है । समाज सेवा के नाम पर आज स्त्रियों का शोषण हो रहा है । आशा, आँगनवाड़ी और मिड डे मील आदि योजनाओं के अन्तर्गत काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या बीस-पच्चीस लाख के करीब होगी।"[2] यहाँ सशक्तीकरण कहाँ संभव है ?

---

1. कथन-संघर्ष भी स्त्री सशक्तीकरण का एक हिस्सा है - जुलाई-सितंबर - 2010, पृ. 63-64
2. कथन - जुलाई - सितंबर 200, पृ. 64

आज देश के विकास की अवधारणा नवउदारवादी नीतियों पर आधारित है । इस विकास का एक सिद्धान्त है 'टिकल डाउन थियरी'। मतलब बड़ी-बड़ी कंपनियों का मुनाफा बढ़ाओ और उसका थोड़ा-सा हिस्सा गरीबों में बाँट दो । 'महँगाई' हमारे ऊपर थोपकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ स्त्रियों को और परेशान कर रही हैं - "सब्सिड़ी के लिए बी.पी.एल कार्ड वालों की संख्या एक करोड़ बढ़ायी गई पर उसमें से 90 प्रतिशत स्त्रियाँ असंगठित क्षेत्र की हैं । इनकी आमदनी में लगातार घट-बढ़ होती रहती हैं । मार्केट में खड़ी मज़दूर स्त्री को पता नहीं कि ठेकेदार आज उसे काम देगा या नहीं ।.... अब वह राशन कैसे खरीदे ? दूसरी चीज़ों की ज़रूरत का क्या करे? लेकिन सरकार उनसे कहती है कि तुम तो कमाती हो, तुम बी.पी.एल नहीं हो ए.पी.एल हो।"[1] जीवन को सुगम ढंग से आगे ले जाना गरीब स्त्रियों के लिए बहुत ही मुश्किल है ।

प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका जमैन ग्रीयर लिखती है कि "क्रान्ति के लिए ज़रूरी है कि स्त्रियाँ पूंजीवादी राज्य में उपभोगवादी बनने से इन्कार कर दे । ऐसा करके ही वह संबद्ध उद्योगों को करारा झटका दे सकती है।"[2] यहाँ जमैन ग्रीयर केवल संबन्ध उद्योंगों को झटका देने की बात ही नहीं कह रही है ; बल्कि स्त्रियों से उपभोगवादी मानसिक गुलामी से मुक्त होने की अपील भी दे रही है । रमणिका गुप्ता ने स्त्रियों की मानसिक गुलामी पर संकेत करती हुई कहती है कि "क्या सामंती समाज या पूँजीवादी समाज में औरत उपभोग की वस्तु नहीं बनाई गई?"[3] आज सारा समाज देख रहा है कि इस पूँजीवादी व्यवस्था में कतिपय औरत जात उपभोग वस्तु बनने केलिए लालायित है । आज औरत 'बदनउघाडू' विज्ञापन में

1. कथन - वृन्दा करात - जुलाई-सितंबर 2010, पृ. 66
2. आजकल - मई 2001, पृ. 45
3. वर्तमान साहित्य - मार्च 2001, पृ. 5

घर से नाता तोड़कर भी शामिल होने की दौड़ लगा रही है । अंग प्रदर्शन में बढ़-चढ़कर भाग लेने की विकृत मानसिकता से नारी को उबरना ही पडेगा । उसे अपने व्यक्तित्व को सशक्त बनाकर स्वतंत्र बनना है । इस तत्थ को हिन्दी महिला लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के ज़रिए कारगर ढंग से प्रस्तुत करने की जद्दोजहद की है ।

बाज़ार हमेशा सिर्फ मुनाफे के बारे में ही सोचता है । किसी की आर्थिक विवशता बाज़ार को समझ में नहीं आएगा । कृष्णा अग्निहोत्री की 'गाउन' कहानी में आर्थिक विवशता में फँसी एक नारी की मानसिकता का बेबाक चित्रण हुआ है । आर्थिक संकट के कारण सुखद भावनाएँ सुख की अनुभूति न देकर उसे कचोट ही देती हैं । दस वर्ष का वैवाहिक जीवन ने भी उसे हनीमून का एहसास तक न दिला पाया । एक तरफ चरमराती चारपाई है, धूल से भरा आईना है, वॉयल की सस्ती साड़ी है तथा साथ ही सास का रोबीला चेहरा है । यह तो सच्चाई है । दूसरी तरफ सपने में, ड्रेसिंग टेबिल का आदमकद शीशा, डिस्टेम्पर की हुई दीवार । अद्‌भुत चमक देता अपना लाल अमेरिकन गाउन और पति का एकनिष्ठ प्यार का करिश्मा । इन दोनों की टकराहट में कहानी की नायिका आखिर टूट जाती है । कहीं का नहीं रह जाती है । यह कहानी उपभोगवाद संस्कृति की भीषण परिणाम का एक उत्तम उदाहरण है ।

भूमण्डलीकरण ने बेरोज़गारी की समस्था को तीव्र बना दिया है । कृष्णा अग्निहोत्री ने कहानी 'नपुंसक' में बेरोज़गारी की समस्या को उठाया है। जन संख्या वृद्धि तथा पिछडेपन के कारण आधुनिक भारत में बेरोजगारी तथा शिक्षित बेरोज़गारी की समस्या अपने भयावह रूप तक पहूँच चुकी है । इस संदर्भ में

सिम्मी हर्षिता की चक्रव्यूह कहानी उल्लेखनीय है । बेरोज़गार अंशुमाली नौकरी प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयत्न करता है । इण्टरव्यू में उम्मीदवारों को मानसिक संघर्षों से गुज़रना पड़ा है । अगर किसी अधिकारी की सिफारिश के आधार पर नौकरी मिल जाते तो भी दूसरे अधिकारी लोग इस-उस आरोप में उसे वर्ष-भर में निकाल देता है । इण्टरव्यू के समय युवक आपस में इस प्रकार बातचीत करके वस्तुस्थिति को स्पष्ट कर देते है । जैसे "किसी से मिले विले ? पिट्ठू भरे पड़े हैं ? कद्दु दिमाग का सलेक्शन हो जाता है, योग्यता कोई नहीं देखता, आज नौकरी योग्यता को नहीं, पहचान को मिलती है ।"[1] बेरोज़गार समाज में ठोकरें खाते-फिरते हैं, और दूसरे सिफारिश के बल पर आगे बढ़ते हैं ।

इस संदर्भ में महानगरीय जीवन पर केन्द्रित चित्रा मुद्गल की 'दरमियान' कहानी विशेष उल्लेखनीय है । इसमें नौकरीपेशा नारी की समस्याओं का अत्यन्त संवेदनापूर्ण चित्रण हुआ है । नौकरीपेशा नारी घर-परिवार के साथ दफ्तर की समस्थाओं में भी उलझी हुई है । दफ्तर में काम करते-अचानक माहवारी का रक्त-स्राव होने पर कहानी की नायिका असहज हो जाती है । तब दफ्तर, घर और बच्चों का दायित्व उसे और भी तनावग्रस्त कर देता है ।

बाज़ार और राजनीतिज्ञ दोनों साधारण जनता को नीबू की तरह निचोड़कर अपने लिए मुनाफा कमाना चाहते हैं । नमिता सिंह ने "एक पैर वाला शेर" कहानी में देश की वर्तमान चुनाव-व्यवस्था के घृणित स्वरूप तथा राजनीतिज्ञों के अमानवीय हथकण्डों को निर्ममता से उजागर करती है । चुनाव चिह्न शेर के लिये, एक राजनीतिज्ञ एक बच्चे को शेर के नकाब में जुलुस के सामने खडा कर देता है । जुलूस लम्बा है और पैर में घाव के कारण मुखौटे वाला बालक लुढ़क जाता है । इस कहानी में बालक प्रतीक है । विकास के नाम पर सरकार हमें

1. कहानी (जून 1973)

उपभोगवाद का मुखौटा पहनाकर चला रही है । लेकिन प्रतियोगिता की धूप इतनी है कि साधारण जनता लुढ़क-लुढ़कर ही ज़िन्दगी को आगे ले जा सकती है ।

आज हम ऐसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं जिनके बारे में पहले हमने सुना तक नहीं है । 'उसका होना न होना' कहानी में मणिका मोहिनी एक नयी समस्या हमारे सामने रख रही है । पति-पत्नी के अलगाव की स्थिति का कारण पति का समलिंगी होना है । पति अपने मित्रों से सेक्स की बातें करता है। वह पत्नी की अविवाहित मित्र के साथ भी ऐसी खुली बातें करके पत्नी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करना चाहता है । यों दोनों की संबन्धों में अलगाव और ठहराव आ जाते हैं ।

भूण्डलीकरण के दावेदार हमेशा मज़दूरों के सामने 'हयर-फयर' की नीति रखते हैं। मतलब अगर तुम काम कर सकते हो तो करो, नहीं तो तुमको काम से निकाल दिया जाएगा । ममता कालिया की 'बसन्त सिर्फ एक तारीख' इसी समस्या को हमारे सामने प्रस्तुत करती है । चन्द्र चौधरी नामक युवती नौकरी के लिए अपनी भूतपूर्व अध्यापिका से, जो प्राचार्या बन गई है - मिलती है । प्राचार्या अनुशासन के मामले में अतिरिक्त कठोर हैं । वह प्रसूति छुट्टी चाहती एक अध्यापिका को हटाकर उस स्थान पर चन्दा को अस्थायी रूप में रखने की बात करती है । किन्तु चन्दा के मन में उस गर्भवती अध्यापिका के अधिकारों के प्रति आस्था उमड़ती है और नौकरी को ठुकरा देती है ।

मृणाल पाण्डेय की कहानी 'कैंसर' आधुनिक पर संवेदनाशून्य, वर्ग की कहानी है । इसमें कैंसर केवल पिता को नहीं, उस पूरी सामाजिक-पारिवारिक

व्यवस्था को है, जहाँ पिता को कैंसर होने की बात इस अंदाज में कह दी जाती है, जैसे किसी अजनबी की चर्चा हो रही है । बूढ़ी माँ को जितना दुख पति के कैंसर होने का है, उतना ही दुख संयुक्त परिवार की प्राचीन व्यवस्था के नष्ट हो जाने का है । आपसी स्नेह-सूत्रों के ध्वस्त होने तथा विचित्र यान्त्रिकता के व्याप्त हो जाने की व्यथा इस कहानी में है ।

मृदुला गर्ग की 'अलग अलग कमरे' कहानी में पिता डॉ. नरेन्द्र तथा पुत्र डॉ. सुरेन्द्र के माध्यम से दो पीढ़ियों के वैचारिक अन्तर को स्पष्ट किया गया है। पिताजी तो जनसेवा की भावना रखते हैं, गरीबों की मदद करना चाहते हैं । पर पुत्र तो बाज़ारवादी दृष्टिकोण से लैस है । उसका ध्यान आर्थिक लाभ पर केन्द्रित है । 'टौंपी' कहानी स्वतन्त्रता के बाद समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती है । पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति के आदर्श भौतिक सुविधाओं से टकराकर चूर-चूर हो गये है, इसी कारण भ्रष्ट जनसेवक 'शरण' जैसे लोग सधे हुए तरीके से आज़ादी के संघर्ष को भुना रहे है । ओर दूसरी तरफ चड्ढ़ा जैसे आदर्श युवक दवा के अभाव में गुमनाम मौत मरने पर विवश हो रहे हैं । आज की उपभोगवादी संस्कृति अमीरों को अमीर और गरीबों को और गरीब बना रही है। मृदुला गर्ग अपनी कहानियों के ज़रिए पाश्चात्य जीवन के प्रति आसक्त जन को भारत में अपनी जडें ढूढ़ने के लिए मज़बूर करती है ''उर्फ सैम' कहानी का नायक विदेशी जीवन के सभी भौतिक सुख भोगने के बावजूद स्वयं को वहाँ की ज़मीन से जुड़ा महसूस नहीं करता । वह भारतीय जीवन-मूल्यों को अपनाकर जीना चाहता है । मतलब अमेरिकी ढाँचे में पली पत्नी तथा अमेरिकी परिवेश में जीकर वह हीन भावना का शिकार हो गया है, इसलिए उससे मुक्त होना चाहता है ।

उपभोगवादी संस्कृति ने नारी को इतनी छूट दे रखी है कि वह अपनी असली स्वतंत्रता को समझ नहीं पा रही है । पुरुष यौन शोषण को स्वतंत्रता का नाम दे रहे हैं । शशिप्रभा शास्त्री की कहानी 'गंध' में एक यौन-अतृप्त नारी का चित्रण हुआ है । इसमें एक विवाहित स्त्री का पति के बदले प्रेमी के साथ सम्पर्क दिखाया गया है । सुम्मि का विवाह किशोर के साथ होता है, किन्तु जब अपने पति से सन्तुष्ट नहीं हो पाती तो वह अपने प्रेमी नकुल के साथ यौन संबन्ध रखती है । नकुल तो सुम्मि का यौन शोषण कर रहा था । 'गहराइयों में गूंजते प्रश्न' कहानी में समलैंगिक सम्बन्धों का चित्रण हुआ है । इसमें लेखिका ने बताया है कि किसी स्त्री या लड़की को पर-पुरुष का प्यार यदि नहीं मिलता तो वह समलैंगिक सम्बन्धों की ओर आकृष्ट हो सकती है । बदलती दुनिया के नए नैतिकबोध का स्पष्ट चित्रण शशिप्रभा शास्त्री की कहानियों में हुआ है ।

'सूर्यबाला' की 'घटनाहीन' एक बेरोज़गार मज़दूर युवक की आर्थिक दुर्दशा की कहानी है । उसके तीन बच्चे हैं, जिसमें एक पोलियोग्रस्त है । वह उसका इलाज कराने की स्थिति में नहीं है । वह सोचता है कि दो ही बच्चे होते, तो कितना अच्छा होता । मँहगाई की इस दुनिया में ज़िन्दगी को आगे बढ़ाने के वास्ते अपने बच्चों तक को तिलांजली देने केलिए लोग तैयार हो जाते हैं । सूर्यबाला की कहानी 'रेस' और एक प्रतीकात्मक है । गाड़ियों की तरह आज मानव-मानव के बीच रेस हो रहे हैं । महानगर की तेज़ रफ्तार में एक-दूसरे से आगे निकल जाने की प्रतिस्पर्धा को इसमें अंकित किया गया है । इस तेज़ी में प्रेम-अनुराग, मोह, पारस्परिक लगाव जैसी कोमल भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है ।

दीप्ति खण्डेलवाल ने ऐसी मॉडेन नारियों का चित्रण किया है जो अन्य पुरुषों से भी दैहिक सम्बन्ध रखती हैं । 'डूबने से पहले' कहानी में विकृत प्रेम का चित्रण हुआ है । स्टेनो टाइपिस्ट शैला कपूर अपने बॉस मेहरोत्रा के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखती है जिससे उसके मन में कोई तनाव नहीं है । वह कहती है कि इसका प्रायश्चित वह बाद में करेगी । वह मुक्त भोग में विश्वास रखती है । किन्तु आन्तरिक धरातल पर वह टूटती जाती है ।

प्रतिमा वर्मा की कहानी 'राख' में आर्थिक विषमता पर प्रकाश डाला गया है । कहानी के पति-पत्नी में दरार का कारण उनका असुरक्षित होना है । पति आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित है, तो पत्नी सामाजिक दृष्टि से । असुरक्षा का यह बोध दोनों में दूरियाँ ला देता है । पति विमल की नौकरी छूट जाती है । ऐसी विषम परिस्थिति का सामना करने के लिए पत्नी मृदुला नौकरी करने लगती है। उसकी बदली दिल्ली से चण्डीगढ़ हो जाती है । विमल अपने को हीन तथा अपमानित अनुभव कर तनावग्रस्त हो जाता है । मृदुला तो किसी न किसी प्रकार पैसा इकट्ठा कर घर भेजती है । इसका परिणाम मृदुला के पेट में पल रहे पाप के रूप में सामने आता है । इसी बीच मृदुला का पति उसके पास पहूँच जाता है । किन्तु वह सहजता से पत्नी का सामना नहीं कर पाता । यह कहानी मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक विपन्नता से विकसित द्वन्द्वात्मक मानसिकता को सशक्त रूप में व्यक्त करती है ।

राजी सेठ की कहानी 'अन्धे मोड़ से आगे' में लेखिका इस तथ्य पर प्रकाश डालना चाहती है कि बाज़ार की सुख सुविधाऐं मन को पूरी तरह तृप्त नहीं कर सकती हैं । टेक्निकल सेक्शन के वर्कशॉप में कार्यरत सुरजीत की पत्नी

आर्थीक तंगी से परेशान है । वह सुरजीत के बॉस मिश्राजी से निकट संबन्ध रखती है । फिर सुरजीत को छोड़कर मिश्रा से विवाह कर लेती है । वह दोनों की तुलना करती है - "अन्तर इतना ही है, वहाँ अपने हाथ से रोटी पकाती, सफाई करती, कपडे धोती थी; यहाँ नौकरों से करवाती है । सुरजीत में एक प्रकार की आदतें थीं तो मिश्रा में दूसरे प्रकार की....।"[1] अतः वह स्वयं को अकेली अनुभव कर किसी से भी जुड़ नहीं पाती । मिश्रा के होनेवाले बच्चे का एबॉर्शन करवाकर वह स्वतंत्र हो जाती है । वह खुद को उस सीप-शंख का कोई टुकड़ा मानती है, जो समुद्र में पानी से भीगते रहने पर भी उस से कोई सम्बन्ध नहीं बना पाता है ।

आज की पीढ़ी इतने आगे निकल चुकी है कि पुरानी पीढ़ी को व्यर्थ और बोझ के रूप में देखती है । निरूपमा सेवती की कहानी 'विमोह' में बेटा और बहू, अपने परिवार के साथ थोड़ा समय रहने आए माता-पिता को असह्य अनुभव कर उनसे छुटकारा पाने की तलाश में लग जाते हैं । गाँव में आई हुई अयाचित स्थिति यानी सूखा के कारण वृद्ध पति-पत्नी अपने लाड़ले बेटे के घर रहने चले आये थे, बडे अरमान और विश्वास के साथ कि उनका बेटा अब इतना समर्थ हो गया है और उन लोगों का ख्याल रखेगा । लेकिन वृद्ध माँ-बाप के साथ पुत्र और बहू 'एडजस्ट' कर पाने में कठिनाई महसूस करने लगते हैं, और दबे मन से उनसे छुटकारा चाहने लगते हैं ।

मन्नू भण्डारी की कहानी 'शायद' के नायक राखाल है, जो अपनी जीविका के लिए परिवार से दूर एक मर्कन्टैयल शिप में नौकरी कर रहा है ।

---

1. ज्ञान- प्रकाश विवेक - अलग-अलग दिशाएँ -पण्डितजी - पृ. 15

भौतिक स्तर पर वह परिवार में अनुपस्थित रहता है पर भावात्मक रूप में वह उपस्थित है । यह विश्वास उसे पत्नी और घर-परिवार से जोड़ रखता है । लंबे अन्तराल के बाद वह घर आता है, परिवार में रहकर वह अपने अस्तित्व को अनुभव करने की चेष्टा करता है; अपनी 'आइडेंटिटी' की तलाश करता है । पर अन्त में निराश होकर वह लौट जाता है । वह परिवार के लिए निश्चित रकम निश्चित समय पर भेजनेवाला मात्र रह जाता है । वापस ज़हाज़ पहुँचकर उसे एक अजीब-सी राहत मिलती है । वही परिचित गन्ध, चिरपरिचित मशीनें,.... जिसके बीच वह एक तरह संवेदनशील दर्द अनुभव करता है । अपने आपको सिर्फ कम्प्यूटर और मशीनों के बीच ही संवेदनशील अनुभव करने वाले आधुनिक युवा पीढ़ी के चित्रण के साथ उनके विघटित पारिवारिक जीवन की तस्वीर भी इस कहानी में उभर आई है ।

निरूपमा सेवती की कहानी 'टुच्चा' में भी अविवाहित नौकरी पेशा युवती की त्रासदी पर प्रकाश डाली गई है । वह परिवार के लिए मशीन बन गयी है । आफिस में भी उसका शोषण बराबर होता रहता है । वहाँ तो वह एक उपकरण बनकर रह गई है - "घर के लिए समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति- 'के' के लिए शारीरिक पूर्ति और बॉस के लिए मानसिक पूर्ति-स्वयं के लिए कुछ भी नहीं ।"[1] जिस परिवार के लिए वह यह सब कर रही है वहाँ उसके प्रति किसी के मन में लगाव या अपनापन नहीं है । वह तनाव की हालत में आत्महत्या का प्रयास करती है । उसकी हालत गंभीर बनती है । छोटी बहन को बीमार बहन की नहीं उसके पासबुक की चिन्ता है । परिवार के लिए किया गया उसका त्याग अर्थहीन बन जाता है । 'अर्थ' रिश्तों को पार कर महत्वपूर्ण बन गया है ।

1. निरूपमा सेवती - टुच्चा - पृ. 6

राजी सेठ की 'अभी तो' परंपरागत आदर्श और आज की पाश्चात्य संस्कृति के संघर्ष पर लिखी गयी सशक्त कहानी है । वृंदा पढ़ी-लिखी संभ्रात महिला है । अपनी भाषा के माध्यम से देश का संस्कार स्कूलों में बनाना चाहती है । मातृभाषा के महत्व को समझाकर अंग्रेज़ी स्कूलों में अंग्रेज़ी की पढ़ाई की श्रेष्ठता को तोड़ना चाहती है । इसलिए वह सभा, दफ्तर, डाकखाना स्कूल आदि में हिन्दी का प्रचार कार्य करती है । वृन्दा का व्यक्तित्व नए सिरे से उभर रहा था और इसी बीच वह पीयूष की माँ बनती है । वृन्दा का पति विमल अंग्रेज़ी की श्रेष्ठता का कायल था। वह देशी स्कूल और राष्ट्रभाषा के प्रति हिकारत की भावना रखता है । पति बेटे को कान्वेंट में ही दाखिला करना चाहता था और उससे जुडी सारी भागदौड़ स्वयं करता है। पति अपने बेटे को अंग्रेज़ी स्कूल ले जाता है और वृन्दा विवश होकर देखती रहती है । यों वह अपने आदर्श को खुद पालन नहीं कर पाती है ।

उषा महाजन की कहानी 'एक और श्रवणकुमार' का नई पीढ़ी की मानसिकता को जाहिर करता सशक्त कथानक है । नई पीढ़ी के लोग आधुनिकता, स्वतंत्रता और स्वार्थ के कारण अपने ही परिवारवालों के साथ तक सबन्ध रखना नहीं चाहते । नई पीढ़ी स्वार्थ के कारण आत्मीयजनों के साथ अमानवीय व्यवहार करने से भी नहीं हिचकती । इस कहानी में बेटा और बहू माँ को आया और नौकरानी के रूप में देखते हैं । छोटा बेटा दिल्ली में है और माँ को अपने पास बुला लेता है । बेटा और बहू दोनों ही सुबह काम पर चले जाते है । रसोई और घर का काम करते हुए माँ थक जाती है । बेटा और बहू माँ की ओर देखते ही नहीं । कहानी के अन्त में आक्रोश और आवेग से कांपते हुए माँ चीखती है - "जो आया ही बन के रहना पडेगा अब मैं तो तेरे पड़ोसियों के घर करूँगी आया

का काम । इज्जत तो देंगे वे मुझे।"[1] उसका यह निर्णय स्त्री के स्वाभिमानी और विद्रोही रूप का सही परिचय देता है ।

आधुनिक समाज नारी को स्वावलंबन के रास्ते ले जा रहा है । व्यक्ति के अस्तित्व को बदलने में 'पैसा' अहं भूमिका निभाता है । आज का समाज अर्थ प्रधान हो गया है । सत्ता भी उसकी चलती है जो कमाता है । भाई सुबोध के बेकार होने से बहन वृन्दा को नौकरी करनी पड़ती है । आर्थिक स्वावलंबन से परिवार में उसका आत्मसम्मान बढ़ जाता है । घर के निर्णय वह स्वयं लेने लगती है । उसके सुविधानुसार घर की दिनचर्या चलती है । अर्थ के अभाव से सुबोध अपमानित ज़िन्दगी जीने के लिए मज़बूर है । इस कहानी में बेरोज़गारी की समस्था के साथ साथ पैसे की अहमियत पर भी प्रकाश डाला गया है ।

आज की दुनिया संवेदनशील नहीं है । यहाँ हर काम मतलब के वास्ते होता है । 'नहीं बंधूँगी' क्रान्ति त्रिवेदी की कहानी है । वे जिसकी नायिका नीरांजना खूबसूरत और तेज़ स्वभाव की युवती है । विवाह के बाद विदेश घूमना-फिरना था इसलिए पति उसका गर्भपात करवाता है । कुछ वर्ष बीत जाते हैं । अबकी बार नीरंजना स्वयं गर्भपात करना चाहती है । पति और सास के विरोध करने पर भी वह अपने निर्णय पर अडिग रहती है । पति को गले का कैंसर हुआ है । उसकी मृत्यु के बाद पत्नी, पति के किसी भी बन्धन (संतान) में बंधकर अपना भविष्य बिगाड़ना नहीं चाहती है । वह सास से कहती है - 'आप मुझे ममता के खूंटे से बाधकर-गाय बना लेना चाहती हो । तब मेरे लिए कोई रास्ता न होगा । मान लीजिए उनको कुछ हो गया।"[2] किसी की बातों में न आते

---

1. उषा महाजन - शोषित और अन्य कहानियाँ - पृ. 58
2. क्रान्ति त्रिबंदी - दीप्ती प्रश्न -पृ. 34

हुए अपनी इच्छानुसार जीने का निर्णय लेती है । मातृत्व स्त्री का अधिकार है, उसे स्वीकार करने या न करने का निर्णय भी उसे ही लेना है । इस क्षेत्र में वह स्वतंत्रता चाहती है ।

आज की नारी की बदलते रूप को उषा प्रियंवदा की कहानी 'प्रतिध्वनियाँ' में देख सकते है । वसु पढ़ाई के लिए विदेश जाती है । वहाँ उसके संपर्क में कई पुरुष आते हैं । उसे अपनी ज़िन्दगी अपनी ही लगती है क्योंकि यहाँ किसी दूसरे का हस्ताक्षेप नहीं है । वह विवाह को 'मीनिंगलेस रस्म' मानती है और बच्ची के जन्म को 'एक बयाँलजिकल घटना' समझती है । इसलिए वह पति, बच्चा और परिवार के बन्धन से मुक्त होकर जीने लगती है ।

प्यार व विवाह को आर्थिक शोषण मानती आधुनिक दुनिया का चित्रण चित्रा मुद्‌गल ने कहानी 'लाक्षगृह' में प्रस्तुत किया है । सुन्नि चालीस वर्ष की प्रौढ़, अविवाहित कामकाजी महिला है । खूबसूरत न होने के कारण उसका विवाह नहीं हुआ है । सुन्नी के विभाग में सिन्हा के आने के बाद दोनों में गहरा परिचय होता है । सिन्हा सुन्नी से विवाह करना चाहता था । विवाह से पहले दोनों घर लेना चाहते हैं । थ्री रूम फ्लैट ओनरशिप पर बुक किया जाता है । सिन्हा के पास पैसा नहीं था । सारे पैसे सुन्नी ही भर देती है । घर सिन्हा के नाम पर था । ऑफिस में एक दिन सुन्नी ने सिन्हा और उसके दोस्त की वार्तालाप सुनी। सिन्हा कह रहा था "आठ सौ रुपये महीने कमानेवाली कहाँ मिलेगी ? सौदे की कोई शक्ल-सूरत नहीं होती।"[1] स्पष्ट है सिन्हा का प्यार सिर्फ आर्थिक आधार पर था ।

---

1. चित्रा मुद्‌गल -मामला आगे बढेगा अभी - पृ. 91

वर्तमान उपभोगवादी दुनिया ने नारी के लिए सौन्दर्य के कुछ प्रतिमान दिये हैं । आज नारी अपने देह सौन्दर्य में इस तरह खोयी है, जैसे शरीर ही उसके लिए सब कुछ हो । उसे लगता है कि पुरुष उसे व्यक्तित्व से नहीं बल्कि शरीर से नापते हैं । सुधा गोयल की 'ठूंठ' कहानी की नायिका सुषमा की छाती कैन्सर से ग्रस्त है । ऑपरेशन से उसका स्तन निकाल दिया जाता है । तभी उसे पता चलता है, वक्ष ही उसके स्त्रीत्व के निशान थे । उसके अभाव में वह अपने को अपूर्ण व निरर्थक समझती है ।

वर्तमान दुनिया का यह दस्तूर है कि निम्न वर्ग उच्च वर्ग की नकल करना चाहता है और उस भाग दौड़ में अपना चैन सुख खोते जाते हैं । मालकिन मीनाक्षी और घरेलू नौकरानी चंपा के ज़रिए मंजुल भगत कहानी 'बीवी और बांढी' में इसी तत्थ पर प्रकाश डालती है । मीनाक्षी उच्च समृद्ध परिवार की महिला है । उसका रहन-सहन आधुनिक और खर्चीला है । कीमती साड़ियाँ पहनना, मेकअप करना, क्लब जाना, स्वच्छन्द रूप से घूमना-फिरना उसका रूटीन है । चंपा के मन में मालकिन जैसे बनने की, सजने संवरने की इच्छा उभरने लगती है । चंपा भी मीनाक्षी का अनुकरण करने का प्रयास करती है । मीनाक्षी की अनुपस्थिति में मेकअप के साधनों का उपयोग करती है, और कभी कोई सामान चुराकर ले जाती है । चंपा क्लब के प्रति बहुत जिज्ञासा रखती है। चंपा के व्यवहार में और रहन-सहन में बहुत परिवर्तन होने लगता है । "चंपा की साड़ी की पटलिया, नाभि से इस कदर खतरनाक निचाई पर बंधी कि अब फिसली तब फिसली"[1] शरीर का अधिकाधिक प्रदर्शन वह करने लगती है । आज दुनिया आदमी को चमत्कार के सपनों में जीने केलिए विवश करती हैं ।

1. मंजुल भगत - गुलमोहर के गुच्छे - पृ. 70

चंपा के मन में उच्चवर्गीय महिला की तरह रहने, जीने की हविस थी इसलिए वह अपना घर परिवार छोड़कर किसी साहबनुमा आदमी के साथ भाग जाती है।

सुधा अरोड़ की कहानी 'महानगर की मैथिली' में मुंबई जैसे महानगर में जीती परिवारों की समस्याओं का बारीकी अंकन हुआ है । चित्रा स्कूल की अध्यापिका है, पति ऑफिस में कार्यरत है । इसलिए बेटी मैथिली को आया के पास छोड़ना पड़ता है । मकान की असुविधाओं से भी ये लोग परेशान हैं । चित्रा तो कस्बाई संस्कृति से आई थी -"बंबई की भाग दौड़वाली मशीनी ज़िन्दगी उसे कहीं भीतर से तोड़ती हुई महसूस होती थी।"[1] क्योंकि चित्रा जानती थी कि "नौकरी पेशा निम्न मध्यवर्ग यहाँ मरते दम तक अपनी परेशानियों से उबर नहीं सकता।"[2] बच्ची की बिगड़ती सेहत के कारण वह नौकरी छोड़ना चाहती है किन्तु "हर बार महानगर का अर्थशास्त्र उसे मात दे जाता था।"[3] विविध प्रकार की विसंगतियों, व्यस्तताओं तथा समस्याओं से युक्त महानगरीय जीवन में आदमी अपना संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करता है यही उसकी त्रासदी में तब्दील हो जाता है ।

गीतांजली श्री की कहानी 'पिलाकी माने फय' में उपभोग संस्कृति की स्पष्ट झलक मिलती है । कहानी का नायक एक लेखक है, जो उपभोगवादी संस्कृति के जाल में फंसा है । अंग्रेज़ी में न लिख पाने के कारण उसे साहित्यिक दुनिया में संघर्ष करना पड़ा रहा है - देखिए, अंग्रेज़ी की कीमत-बंसल साहब का बेटा अंग्रेज़ी अखबार में ऐरे-गैरों से भेंटवार्त्ता छाप देता है र। एक बार के एक हज़ार । किन्तु मैं बहुत बचपन से राष्ट्रवादी हूँ और राष्ट्रभाषावादी भी ....."[4]

1. सुधा अरोड़ा - महानगर की मैथिली - पृ. 112
2. वही - पृ. 112
3. वही - पृ. 114
4. गीतान्जली श्री - वैराग्य - पृ. 108

यहाँ बदलती संस्कृति का विकृत चेहरा भी द्रष्टव्य है । कथानायक की मिसेज़ जब दोस्त की पत्नी के कानों में सोने का झुमका देखती है तो जल उठती है । यहाँ मध्यवर्गीय नारी के दिमाग को खानेवाली बाज़ारवादी संस्कृति का चित्र दिखाने का प्रयास लेखिका ने किया है ।

मँहगाई के कारण मध्यवर्गीय़ बेचारे हिम्मत खो बैठते हैं । इसलिए चीज़ों को फेकते नहीं हैं, जब तक कि बाकायदा बूँद-बूँद कतरा-कतरा न निचुड़ जाए। मंजन की ट्यूब देख लें बात साफ हो जायेगी। ".....भाजीवाले की लारी से गिरी-फिंकी हरी मिर्च, धनिया पत्ती, कभी एक भिंड़ी भी इस्तेमाल कर ली जाती हैं। माचिस की तीली तक बार-बार काम में लाई जाती है, यों ही दन से फेंक नहीं दी जाती। '.... एक तीली से गैस जलाई, उसी से दूसरी तरफ जलाया, उधर बुझाने के पहले फिर उसी तीली से इधर जलाया.... तीली एक, काम अनेक"[1] कहानी में लेखक का परिवार अपने दोस्त और उसकी बीवी को खाने में बुलाते हैं। कहानीकार ने इस घटना के ज़रिये मध्यवर्गीय परिवार के आर्थिक विषमता को प्रस्तुत किया है ।

गीताजली श्री की कहानी 'प्राइवेट लाइफ' एक ऐसी लड़की की है, जो आज़ादी की तलाश में है, अकेली रहती है, मर्दों के साथ रिश्ता रखती है, पीती भी है - "नए वर्ष पर रस्तोगी को शराब की दुकान पर मिल गई थी । बियर खरीद रही थी और वह काले चरमेवाला फिरंगी आए दिन उसके घर में घुसा रहता है । दो रात वहाँ ठहरा भी था ।"[2] पाश्चात्य संस्कृति का सही चित्रण इस कहानी में हुआ है । माँग में सिन्दूर, माथे पर बिंदिया, हाथ में चूड़ियाँ जैसी भारतीय नारी संकल्पना पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है ।

1. गीतान्जली श्री - वैराग्य - पृ. 114
2. गीतांजली श्री -अनुगूँज - पृ 14

गीतांजली श्री की कहानी तिनके' की नायिका चंदा उपभोगवादी संस्कृति की प्रतीक है । दीदी जब शाम के लिए भाजी, मिर्ची सब काट के तैयार रखती है तो चंदा सैडविच, आइसक्रीम और जूस जैसी चीज़ खाना चाहती है । चंदा के अनुसार "मैं हूँ वैज्ञानिक की घरवाली । हमने विज्ञान से ही सीखा है कि एक बार खाना पका लो और हफ्ते भर फ्रिज में रखके चलाओ"[1] चंदा तो सचमुच आधुनिक किस्म की नारी है ।

उषा महाजन की कहानी 'जड़ों से बिछुडे' एन.आर.ऐ लोगों की कहानी है । कहानी में एन.आर.ऐ सज्जू कहता है "यार, पैसा कमाने के लिए जगह बुरी नहीं । क्या कम्फ़र्ट्स है रहन-सहन के । एक ही तनख्वाह से मैंने एक गैराज-सेल से घर का कितना सामान खरीद लिया । संकेंड़-हैंड मोटर कार भी ले ली है । क्या रंगीन रातें होती हैं वहाँ की । लड़कियों-शड़कियों की कोई कमी नहीं...."[2] भारत के बारे में सज्जू का कथन है, "यह इंडिया भी कोई रहने की जगह है यार । एबॉमिनेबल । साल भर से कोई मन मुताबिक नौकरी नहीं मिल सकी। न ही रहने का कोई ठौर-ठिकाना । तनख्वाह सारी खाने-पीने और आने जाने में ही निकल जाती है । मोटर खरीद पाना भी यहाँ ख्वाब में ही संभव है ।"[3] इसी तरह भारतीय संस्कृति और भारतीयों को किस तरह तिरस्कृत एवं किनारा किया जाता है, इसका सही वर्णन इस कहानी में है ।

अलका सरावगी ने कहानी 'प्रतीज्ञा के बाद' में नारी के प्रति पुरुष मानसिकता पर प्रकाश डाला है । लेखिका कहती है "वहाँ बैठे प्रायः सभी पुरुष पत्रिकाऐं उलट रहे थे । उसे यह देखकर मन ही मन काफी हंसी आई कि सभी

1. गीतांजली श्री -अनुगूँज - पृ 57
2. उषा महाजन - और सावित्री ने कहा - पृ. 96
3. वही - पृ. 99

पुरुष या तो फिल्मी पत्रिकाओं में औरतों को देख रहे थे । उसे लगा कि पुरुष भले ही अपने को स्त्रियों से श्रेष्ठ समझते हो पर दुनिया में राज स्त्रियों का ही है। पुरुषों की सबसे अधिक दिलचस्पी औरतों में ही होती है, भले ही वे कितना ही दिखाएँ कि उनकी दिलचस्पी संसार की अधिक गंभीर चीज़ों में है।"[1]

ममता कालिया की कहानी 'ज़िन्दगी सात घंटे की' में ऊँचे पद पर कार्यरत महिलाओं की अवस्था और समस्या का अंकन करती है । आत्मीया सेन 'प्रेग्राम एक्जिक्यूटिव' के आफीसर पद पर कार्यरत है । उसके लिए शादी, घर आदि का कोई महत्व नहीं था । वह कहती है - "जैसे डीलर हर स्टेशन पर बुक-स्टॉल रखता है न, वैसे ही हर शहर में एक मित्र रखेंगे हम।"[2] आत्मीया परिवार से दूर अकेली रहती है । रविवार का दिन उसे ऑफीस न होने से लंबा लगता है । उसका सारा दिन ऑफिस के काम और फाईलों में जाता था । ऑफिस से घर आने के बाद दूसरे दिन ऑफिस जाने तक उसके पास समय ही समय है "सुबह दस बजे का उत्साह, शाम पाँच का डिप्रेशन।"[3] ऑफिस के सात घंटे बाद उसकी ज़िन्दगी अकेलेपन की है । वह सोचती है "पाँच बजे के बाद कुछ नहीं बचती, उसके पास रोज सिर्फ सात घंटे जीने को है । दफ्तर से अलग वह कुछ नहीं है, फाईलों के अलावा उसके दस्तखत का मूल्य नहीं है।"[4] आज की सबसे बडी समस्या डिप्रेशन है । तेज़ रफ्तार से बढ़ते दुनिया के साथ मानसिक रूप से ताल-मेल रखने में आज की नारी पीढ़ी हार रही है ।

आज मानवीय संबन्धों का आधार सिर्फ लेन-देन बन गया है । चित्रा मुद्गल की कहानी 'लिफाफा' में अशोक को नौकरी नहीं है । उसकी बहन अनु

1. अलका सरावगी - कहानी की तलाश में - पृ. 67
2. ममता कालिया - छुटकारा - पृ. 60
3. वही पृ. 59
4. वही - पृ. 62

को ओबेराय में रिसेप्सनिस्ट का आकर्षक जॉब मिला है । इसलिए कुल्ला किये बिना वह बिस्तर पर चाय सुड़कती है, घण्टों नहाती है । सेन्ट से अपने बदन को महकाती है, सजती तो ऐसी है जैसे दफ्तर न जाकर किसी पार्टी में जा रही है । तलाक शुदा बॉस के साथ धूमती है । अशोक को मानसिक तौर पर सहारे की आवश्यकता होती है परन्तु हमारे समाज की मानसिकता विकृत है क्योंकि वर्तमान समाज अर्थप्रधान है । 'बेकारी' का एहसास युवा मन को कचोटता है मानो वह उसे नपुंसक बना देता है । वह अपनी प्रेमिका रेखा से कहता है "... मैं कुछ नहीं कर सकता रेखा...। असफलता, आदमी को नपुंसक बना देती है ..... एक लुंजपुंज व्यक्तित्व जिसकी रंगों से जीवनतत्व निचुड़ गया हो... वह प्रेम भी नहीं कर सकता।"[1] अशोक जैसे युवकों की धारणा हो गयी है कि महिलाओं के कारण ही बेकारी की समस्या ने भयंकर रूप धारण किया है । "देश के सारे बेकार युवकों को संगठित होकर लड़कियों के खिलाफ नारे बुलन्द करने चाहिए कि वे घरों की शोभा है, कृपया घरों में ही रहें.... दफ्तरों में जगह खाली करें.... महिलाओं को भगाओ, बेकारी मिटाओ।"[2] इसी बेकार युवक याने अशोक को मॉडेलिंग के हज़ार रुपये का लिफाफा मिलते ही सारे संबन्धों में बदलाव आ जाता हैं। एक लिफाफा घर की खुशियों के साथ उसे पौरुष दे गया । मानवीय संबन्धों में 'अर्थ' अपना रोल खास अदा कर रहा है ।

भारतीय संस्कृति में 'मातृ-पितृ देवो भवः'कहकर माता-पिता के प्रति श्रद्धा भाव, आदर व्यक्त किया गया है परन्तु वर्तमान स्थिति में माता-पिता और बच्चों के बीच आत्मीयता की भावना बिलकुल नहीं है । दीप्ति खण्डेलवाला की 'मूल्य' कहानी में संस्कृत अध्यापक के बच्चे अपने पिता की इस कदर बेइज्जती

1. चित्रा मुद्‌गल - 310 वर्ष 22 सारिका 1982 लिफाफा - पृ. 25
2. वही - पृ. 23

करते हैं कि उसे सुनकर पिता पूरी तरह टूट जाते है । बच्चे अपने पिता से कहते है "आप तो बस खादी लादें संस्कृत पढाया कीजिए"[1] पण्डितजी का आर्थिक स्तर बच्चों के लिए शर्म का कारण हैं, पिता भी अपने बच्चों की तानों से इतनी दुखी हो गया कि उसके मन में भी विचार उठते हैं "पैदा तो आठ हुए थे, बचे केवल दो । अच्छा मर गए ससुरे सब।"[2] यहाँ बदलते हुए मानव मानसीकता पर लेखिका ने प्रकाश डाला है ।

मन्नू भण्डारी की 'ऊँचाई' कहानी में विवाह प्रेम एवं शारीरिक पवित्रता सम्बन्धी परिवर्तित मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है । शिवानी पति शिशिर से प्रेम करते हुए भी अपने पूर्व प्रेमी अतुल को शरीर सौंपती है । फिर भी नैतिक मूल्य के खण्डित कर देने का अपराध बोध उसमें नहीं है । शरीरीक पवित्रता उसकी दृष्टि में उतनी महत्वपूर्ण बात नहीं है । इसलिए शिशिर का सुलगता गुस्सा, उसका अपना मौन, गृहत्याग सबकुछ उसे बडे स्वभाविक लगते हैं और उसके मन में कोई अपराध बोध नहीं है । अपनी बातों की समर्थन करती हुए वह कहती है "शरीर पर चाहे अतुल छाया हो पर मन पर केवल तुम छाए हो। किसी के कितनी ही निकट चली जाऊँ, चाहे शारीरीक संबन्ध भी स्थापित कर लूँ, पर मन की जिस ऊँचाई पर तुम्हें बिठा रखा है, वहाँ कोई नहीं आ सकता।"[3] यहाँ लेखिका ने परिवर्तित मूल्य दृष्टि का संकेत किया है ।

आधुनिक दृष्टि ने नारी की मातृत्व की संवेदनाओं को कुंद कर दिया है। 'टेस्ट ट्यूब बेबिज' युग में नारी मातृत्व के गुणों को किस सीमा तक सुरक्षित रख

---

1. दीप्ती खण्डेलवाल - मूल्य - पृ. 20
2. वही - पृ. 27
3. मन्नू भण्डारी - एक प्लेट सैलाब - ऊचाई - पृ. 136

पायेगी यह कहना बहुत कठिन है । राजी सेठ की कहानी 'गलत होता पंचतंत्र की नायिका बच्चे के आगमन को अपने व्यक्तित्व के विकास में एक रुकावट मानती है । बच्चा प्राप्त करने से पहले वह जीवन में बहुत कुछ करना और बनना चाहती है । इसलिए अपने पति अजीत से लड़ती हैं ।

सूर्यबाला ने अपनी कहानी 'गुमनाम दायरे' में ऐसी ही नारी को चित्रित किया है जिसकी बेटी हॉस्टेल में रहती है और पति अपने कार्य में व्यस्त । वह पति से जब दूसरे बच्चे का प्रस्ताव करती है तब पति उसकी संवेदना को उपेक्षित कर कहता है "एक और बच्चे का मतलब है - थ्री हंड्रेड पर मंथ । इंपोसिबल।"[1] आज दुनिया में 'बच्चा' तक पैदा करने से पहले 'खर्च' के बारे में सोचना पड़ता है।

हिन्दी की लेखिकाओं ने यौन क्षेत्र में आये मूल्य परिवर्तन पर भी खुलकर विचार किया है । उषा प्रियंवदा की 'कितना बड़ा झूठ' कहानी की किरन भी अपने पति से छुपकर मैक्स नामक विदेशी से शारीरीक संबन्ध स्थापित करती है लेकिन जब मैक्स विवाह कर लेता है तो किरन को लगता है मैक्स ने उसके साथ छल किया है । अपने पति से किए गए छल का ध्यान उसे नहीं आता है।

आर्थिक संकट ने माता-पिता तथा सन्तान के पारस्परिक संबन्धों के सन्तुलन को नया रूप दिया है । मृदुला गर्ग की कहानी 'लौटना और लौटना' कहानी का पिता विदेश से लौट आये पुत्र की पैसों की खातिर उसे खुशामद करता है । पैसे के लिए पिता इतना लाचार हो जाता है कि वह अपनी 'पिता' की हैसियत भूलकर बेटे के काम स्वयं करने लग जाते हैं। "अगले दिन सुबह बेड टी हाथ में लिए हरीश के कमरे में जा पहूँचे।"[2] हरीश के हर काम वह नौकर

1. सूर्यबाला - गुमनाम दायरे - सारिका - जुलाई 1974, पृ. 35
2. मृदुला गर्ग - कितनी कैंदे - लौटना और लौटना - पृ. 63

के तरह करने लगते है' । "हरीश ने तकिये के नीचे हाथ डाल सिगरेट का पैकट निकाल दिया । जब खोला तो सहसा उसे जैसे बाबूजी की उपस्थिति का ख्याल आया । अनमने भाव से वह पैकेट को धीमे-धीमे वापस तकिये के नीचे ले जाने लगा ।"[1] पुत्र की इस हरकत पर पिता को ही दया दिखानी पड़ी और अपने अधिकार को त्यागकर पुत्र को सिगरेट पीने की सम्मति देनी पडी । पुत्र की आदत उन्हें अपने मान-सम्मान से अधिक महत्वपूर्ण लगी । यह सब वे सिर्फ पैसों के लिए बरदाश्त करते हैं ।

इस तरह हम देख सकते हैं कि हिन्दी की महिला लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में मूल्यों के विघटन और परंपरागत मूल्यों के संक्रमण को अनेक रूपों में चित्रित किया है । बुराई कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो अच्छाई को हरा नहीं सकती, यही विश्वास इन लेखिकाओं की प्रगति का आधार है । परिवर्तन की अटल शक्ति मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन लायी है । हिन्दी कहानी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के द्वारा उन परिवर्ति सम्बन्धों की जांच-पड़ताल की है और संकेत दिया है कि, हमारे उदात्त मूल्यों में तेजी से विघटन हो रहा है। निष्ठा, त्याग, सेवा, समर्पण, बन्धुत्व, सहिष्णुता, परस्पर सम्मान आदि उदात्त मूल्यों के प्रति उदासीनता बढ़ती रही है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि मूल्यों में से 'अर्थ और काम' को वर्तमान युग में प्रतिष्ठा भी मिल रही है । शायद इससे ही हमारा परिवार एवं समाज समस्याग्रस्त बनता जा रहा है । यह संकेत इन कहानियों में बुलन्द है ।

❖ ❖ ❖

---

1. मृदुला गर्ग - कितनी कैंदे - लौटना और लौटना - पृ. 63

चौथा अध्याय

अभिव्यक्ति पक्ष का नया विन्यास

रचना में शिल्प विधान का अपना खास महत्व है। भाव या विचार कितना भी सुन्दर और सार्थक क्यों न हो, यदि उचित प्रकार से अभिव्यक्त नहीं हो पाता है, तो वह वांछित प्रभाव डालने में असमर्थ बन जाता है । रचना का रूप सिर्फ शिल्प गठन से ही बनता है । यह प्रक्रिया एक विशेष अनुभव व्यापार है जिससे रचनात्मक विकास के साथ अनुभूति के गहरे स्तर भी उद्घाटित होते जाते हैं, मतलब कृति में अनुभूति की प्रक्रिया अभिव्यक्ति के मुताबिक ही बनती है ।

हिन्दी कहानी का शिल्प विन्यास कभी भी स्थिर नहीं रहा है । कहानी के कथ्य और भाषा के विकास के अनुसार उसमें निरन्तर परिवर्तन होता आया है । यह परिवर्तन हमेशा पुरोगामी रहा है । समकालीन कहानी में शिल्प का एकदम विकसित रूप ही नज़र आता है । इसमें पूर्ववर्ती कहानीकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इसलिए समकालीन कहानी के शिल्प की खासियतों पर प्रकाश डालने के लिए पूर्ववर्ती शिल्प का संक्षिप्त विवेचन ज़रूरी है ।

प्रेमचन्द युगीन कहानी का शिल्प पक्ष

पूर्व प्रेमचन्द युगीन कहानी में कल्पना, भावुकता और अतिरंजना की प्रवृत्ति थी, इसलिए भाषा अलंकृत एवं स्थूल थी । प्रेमचन्द के साथ कहानी कल्पना-विलास से हटकर यथार्थ के निकट आ गई । आदर्श और यथार्थ के बीच का संघर्ष उस समय की रचना प्रक्रिया की और एक विशेषता थी । प्रेमचन्द के अनुसार “वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । उसमें कल्पना की मात्रा

कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है । इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं।"[1] कहानी की रचना प्रक्रिया के बारे में प्रेमचन्द स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोडे शब्दों में कही जा सके । उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न आने पावे, उसका पहला ही वाक्य मन को आकर्षित कर ले और अन्त उसको मुग्ध किए रहे और उसमें कुछ चटपटापन हो-कुछ ताज़गी हो, कुछ विकास हो, उसके साथ ही कुछ तत्व भी हो, तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाय मानसिक तृप्ति नहीं होती । यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते । लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को जाग्रत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं । वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन दोनों में से मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से एक अवश्य उपलब्ध हो।"[2] अतः प्रेमचन्द का कथ्य संबन्धी विचार एकदम स्पष्ट है। उनकी कहानी का शिल्प कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए सफल ही नहीं, वाकई अनुकूल भी रहा है ।

प्रेमचन्द ने कहानी के लिए विभिन्न शैलियों का इस्तेमाल किया है । आत्मचरितात्मक शैली में लिखी गयी प्रेमचन्द की एक सुन्दर कहानी है 'शान्ति'। कहानी की नायिका है 'गोपा'। पूरी कहानी में गोपा की व्यथा और जीवन संघर्ष का वर्णन मिलता है जो 'मैं' शैली में अभिव्यक्त है ।

पत्रात्मक शैली में लिखी गयी प्रेमचन्द की कहानी है 'दो सखियाँ'। दो सखियाँ जो बचपन की सखियाँ थीं, विवाहित हो जाने पर अपने-अपने घरों तथा जीवन अनुभवों को लम्बे-लम्बे पत्रों के ज़रिए आपस में जाहिर करती हैं । 'पं.

---

1. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य - पृ. 41
2. वही - पृ. 45

मोटेराम शास्त्री की डायरी' कहानी डायरी शैली में लिखी गयी है । प्रेमचन्द ने ग्रामीण पात्रों द्वारा, ग्रामीण भाषा का प्रयोग करके, मोटेराम शास्त्री की डायरी में रोचकता लाने का प्रयास किया है । कहानी बहुत लंबी होने पर भी शैली रोचक है । जैसे 'स्वस्ति श्री सर्व अमा जोग, सो तुम जायके बम्बई में बैठि गयो, कान में तेल डारि कै, इमका रोज़ सपना दिखात है, डरन के मारे नींद नहीं आवत है।"[1]

प्रेमचन्द की कई कहानियाँ नाटकीय शैली में लिखी गयी हैं । उन्होंने इस तरह की कहानियों में संवाद की सरसता तथा लाघव पर विशेष ध्यान दिया है । सचमुच संवाद की सरसता ही प्रेमचन्द की कहानियों की सफलता का आधार है । मसलन शतरंज के खिलाड़ी का यह प्रसंग गौरतलब है -

"मिरजा बोलो- किसी ने खानदान में रातरंज खेली होती, तो इसके कायदे जानते, वे तो हमेशा घास छीला किये । आज शतरंज क्या खेलिएगा ? मीर-क्या ? घास आपके अब्बा जान छीलते होगे, यहाँ तो पीढ़ियों से रातरंज खेलते चले आ रहे हैं । मिरजाः अजी जाइए भी । गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ, बाबरची का काम करते-करते उम्र गुजर गई । आज रईस बनने चले हो । रईस बनना कोई दिल्लगी नहीं है ।"[2]

प्रेमचन्द की कहानियों का संवाद सचमुच उनकी जान है । संवादों के ज़रिए मानवीय मनोविज्ञान को ज़ाहिर करने की भरसक कोशिश हुई है । उनकी प्रसिद्ध कहानी कफन में घीसू कहता है कफन लगाने से क्या मिलता है ? आखिर जल ही जाता, कुछ बहू के साथ तो न जाता ? उत्तर में माधव आसमान की तरफ देखता है, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो। फिर

1. डॉ. श्रीपति शर्मा त्रिपाठी - कहानी कला विकास और इतिहास - पृ. 51
2. वही - पृ.52

पिता से प्रश्न करता है - लेकिन लोगों को क्या जवाब देंगे ? लोग पूछेंगे नई कफन कहाँ है ? इसी प्रसंग में माधव एक बहुत ही भोला-सा प्रश्न करता है, क्यों, दादा हम लोग भी तो एक-न-एक दिन वहाँ जाएंगे ही ।"[1] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा में वह शक्ति है जो कहानी में व्यक्त जीवनानुभवों से पाठकों को सम्बद्ध करती है और उन्हें उस विशेष धरातल तक पहूँचाती है, जहाँ वे अपने मानस में उन विशेष अनुभवों की पुनर्रजना कर सकते हैं ।

यशपाल प्रेमचन्द युग का और एक श्रेष्ठ कहानीकार है । वह सच्चे अर्थ में यथार्थवादी कहानी लेखक है । उनकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ से कुछ ज़्यादा ही बंधी होने के कारण अधिक स्पष्ट और उद्देश्यपूर्ण है । प्रेमचन्द के समान यशपाल की भाषा मुहावरेदार तथा सुबोध है, शैली में स्वभाविकता तथा प्रवाह मिलते हैं, जिनसे उसकी पहूँच पाठक के हृदय की तह तक होती है, जैसे उन्होंने लिखा है "शेर भूखा मर जाता है, पर घास नहीं खाता । खानदानी शरीफ इनसान भूखा रहकर भी समाज में अपना सिर नीचा नहीं होने देता ।"[2]

प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कहानी का दौर रहा है । उसका अपना अलग शिल्प है । मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में है जेनेन्द्र । 'पाजेब' जैसी कहानी में उन्होंने बच्चों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों पर बहुत ही विश्लेषणात्मक ढंग से प्रकाश डाला है । अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के कहानीकारों में में आता है। ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, नाटकीय, पत्रात्मक आदि विभिन्न शौलियों का उपयोग करते हुए वे अपने रचनात्मक लक्ष्य तक पहूँचे थे । यह मूल्यांकन भी हुआ है कि "अज्ञेय में मनुष्य की मनोगत दिशाओं का चित्रण कम,

---

1. प्रेमचन्द - कफन -पृ. 18
2. यशपाल - परदा - पृ. 8

फ्रायड की प्रणाली से किया गया मनोविकारों का विश्लेषण अधिक है।"[1]

नई कहानी का शिल्प पक्ष

1950 के आसपास हिन्दी कहानी का नया दौर सामने आया । इसे नयी कहानी नाम से पुकारा गया । उस समय लेखकों को लगा कि हर सिद्धान्त आदर्श और सन्देश नकली हैं, झूठ हैं और इनमें से किसी से नहीं जुड़ना चाहिए। लेखकों ने फैसला किया कि उसकी प्रतिबद्धता समाज के प्रति तो है पर किसी बाहरी सिद्धान्त का सहारा लेकर नहीं, बल्कि उसे अपने आन्तरिक अनुभवों पर आधारित होना चाहिए । 'अनुभूति की सघनता' उनकी रचना का केन्द्रीय तत्व बन गया । यह अनुभूति तो लेखक की अपनी अनुभूति थी । मतलब आदर्श और विचार से हिन्दी कहानी ने नाता तोड़ दिया । नई कहानी में आती कहानियों को पढ़कर ऐसा लग सकता है कि वह लेखक की 'डायरी' है, क्योंकि कई कहानीकारों ने 'मैं' शैली को अपनाया था । यानी सच्ची कहानी का एहसास पैदा करने के लिए आत्मकथात्मक शैली अपनाई जाने लगी । यहाँ 'मैं' वस्तुतः एक अवलोकन दृष्टि है, बिलकुल कैमरे की एक आँख की तरह, और जिसके ज़रिए पाठक दर्शक बनकर साथ चलते हुए दृश्यों को देखता रहता है ।

परिन्दे कहानी में निर्मल वर्मा ने इस शैली का कारगर ढंग से इस्तेमाल किया है - "यहाँ मैं लेटी हूँ, संज्ञाहीन नहीं फिर भी विचार शून्य, चेतना की अन्धी गली पर चिमगादड़ के मनहूस डैनों से फड़फड़ाते प्राणों के लिए, बिस्तार से चिपका हुआ, नीद की नीली झील पर कुहरा-सा तिरता, डूबता, प्रतीक्षा करता

---

1. शिवदान सिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - पृ. 188

हुआ, उस अशरीरी रहस्यमय चमत्कार का, जो लावा-सा भीतर ही भीतर घुलता है - जिसका विस्फोटन नहीं होता, होने न होने के बीच अनिरिचत टंगा है.....''[1] इसके ज़रिए नायिका का भीतरी संघर्ष गहराई से पाठकों के दिल में पैठता भी है । कमलेश्वर की कहानी 'खोई हुए दिशाएँ के 'केन्द्रीय तत्व' अकेलापन की अभिव्यक्ति के लिए ऐसी संवेदन-शील भाषा का प्रयोग किया गया है कि पाठक के दिल की तह तक 'अकेलापन' की अनुभूति गुज़र जाती है । कहानी का नायक चन्दर अपनी पहचान गुम हो जाने की आशंका से पीड़ित है । "सड़क के मोड़ पर लगी रेलिंग के सहारे खड़ा है । चारों ओर भीड़ है । भीड़ के बीच अकेला पाकर चन्दर तन से ही नहीं मन से भी थका महसूस करता है । दिल और दिमाग की थकान उतरकर उसके तन पर फैलती जा रही है । अकेलेपन के इस तनाव के कारण न उसे भूख लगती है, न नींद आती है । नींद आती भी है तो सपने में वही अकेलेपन उसे सालता रहता है।"[2]

शिव प्रसाद सिंह ने भी अनेक कहानियों में आत्म कथात्मक शैली का प्रयोग किया है । "मैं' पात्र कहानी को आगे ले जाने की भूमिका निभाता है । 'केवडे का फूल' का एक प्रसंग इस प्रकार है "....मैं जब भी कभी अनिता के बारे में सोचता हूँ, मेरे सामने केवडे के फूलों की याद आ जाती है । यदि उन्हे स्वतंत्र खिले रहने दे तो ज़हरीले साँप इन्हें अपनी गूंजलक में लपेट लेते हैं क्योंकि मादक गंध सही नहीं जाती है और किसीको निवेदित किए जाएँ तो भद्र लोग इन्हें तोड़-मरोड़ कर कुँए में फेंक देते हैं क्योंकि इससे पानी खुशबुदार होता है ।"[3]

---

1. निर्मल वर्मा - डायरी का खेल - परिन्दे - पृ. 27-28
2. कमलेश्वर - खोई हुए दिखाऐं - पृ. 12
3. शिव प्रसाद सिंह - कर्मनाश की हार -पृ. 58

अन्य शैलियों का प्रयोग

नयी कहानी के दौरान भाषा ने वर्णात्मक और आख्यानपरकता को छोड़कर चित्रात्मकता और बिम्बात्मकता को अपना लिया । मसलन रेणु की कहानी 'तीसरी कसम' के नायक के मन के ख्याल का चित्रण इस प्रकार है - "एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है, दूसरे रह - रहकर चम्पा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में । बैलों को डाँटो तो इस-बिस करने लगती है, उसकी सवारी। औरत अकेली, तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी नहीं । आवाज़ सुनने के बाद वह बार-बार मुड़कर टप्पर में एक नज़र डाल देता है । अँगोछे से पीठ झाड़ता है - भगवान जाने क्या लिखा है इस बार किस्मत में । गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गया । सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा।"[1]

मोहन राकेश ने भी बिम्बात्मक शैली का प्रयोग बहुत ही सफल ढंग से किया है । उनकी कहानी 'फटा हुआ जूता' में जूते का चित्रण मानवीय धरातल पर किया गया है - "जूते के मैले सिकुडे हुए तलवे तिरछे होकर आधा-आधा इंच ऊपर को सरक आये थे । पीछे के दोनों और की सीवनें उधड़ रही थी... जूते के दान बहुत पहले ही निकल गये थे.... जूतों के होंठ भी खुल गये थे .... जब जूतों की बगले शिकायत करने लगी तो राय को बैठकर गंभीरता पूर्वक सोचना पड़ा।"[2] कहानी "एक और ज़िन्दगी' में प्रकाश के मन की हालत का चित्रण वाकई बिबात्मक है - "प्रकाश का मन हुआ कि उसे आवाज़ दे, मगर उसके गले से शब्द नहीं निकले । कोहरे का समुद्र अपनी गंभीरता में खामोश था,

---

1. फणीश्वर नाथ रेणु - तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम - पृ. 6
2. मोहन राकेश - फटा हुआ जूता (वारिस) पृ. 132

मगर उसकी अपनी खोमोशी एक ऐसे तूफान की तरह थी जो हवा न मिलने से अपने अंदर ही घुमड़कर रह गया हो।"[1]

हरिशंकर परसाई की ज़्यादातर कहानियाँ व्यग्यात्मक शैली में लिखी गई हैं । मसलन उनकी कहानी 'भोला राम का जीव' में यमदूत के हाथों से जीव का छूट कर भाग जाना सचमुच नूतन कल्पना है, जो कहानी की व्यग्यात्मकता को एक नया आयाम देता है । पौराणिक परिप्रेक्ष्य के ज़रिए आधुनिक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को भंडाफोड करने की जद्दोजहद भी हुई है- ".... नर्क में पिछले सालों में बड़ी गुणी कारीगर आ गये हैं । कई ईमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनायीं । बडे बडे इंजीनियर भी आ गये हैं, जिन्होंने ठेकेदार के साथ मिलकर भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवरसीयर हैं, जिन्होंने उन मज़दूरों की हाज़िरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए ही नहीं ।"[2]

मिथक और प्रतीकों का प्रयोग

मुक्तिबोध की कहानी 'ब्रह्म राक्षस का शिष्य' में मिथकीय प्रतीक मिलता है । ज्ञान और क्रिया के बीच फँसा हुआ बूद्धिजीवी मानो एक प्रेत योनि में रह रहा हो । बुद्धिजीवी सब कुछ सोच समझ सकता है, लेकिन उससे इस भ्रष्ट संसार में सक्रिय परिवर्तन कैसे संभव हो सकता है ? कहानी में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के अभिशाप से मुक्ति निष्ठापूर्ण संपूर्ण 'ज्ञान दान' में दिखायी गयी है । लोक कथा की शैली पर लिखी गई इस कहानी में फैन्टसी का उपयोग सुन्दर ढंग से किया गया है ।

---

1. मोह राकेश - एक और जिन्दगी - पृ. 12
2. हरिशंकर परसाई - रानी नागफनी की कहानी - पृ. 168

शिव प्रसाद सिंह की कहानी 'नन्हों' में नन्हों नारी शक्ति की प्रतीक है। धोखे से शादी करने पर भी पुरुष सोचता है कि नन्हो रूपी पंछी चोट से घायल होकर शिकारी के चरणों में आ गिरेगा । परन्तु घायल होने पर भी पंछी उसकी गोद में भी नहीं गिरा, बल्कि खून की कुछ बूँदे गिरीं और पंछी, सीने में तीर समाए उड़ता चला गया ।

राजेन्द्र यादव की एक प्रतीकात्मक कहानी है 'पुराने नाले पर नया फ्लैट'। जिसमें नाला, दीरू के पति के पूर्व प्रेम का प्रतीक है और नया फ्लैट उनके दाम्पत्य संबन्ध का, जो कॉलोनी के नए मकान की ओर आनेवाली हवा के हर झोंके के साथ बदबू का भभका भी साथ लाती है। यहाँ पुराने संबन्धों की छाया के वर्तमान दाम्पत्य जीवन पर पसरने की बात को, नाले से निकली बदबू के फ्लैट तक पहूँचने की प्रक्रिया से जोड़ दिया गया है । उनकी कहानी 'पेट्रोल पंप' की पेट्रोल पंप भी एक प्रतीक है । कहानी के नायक अजय का जीवन महज एक पेट्रोल पंप है । वहाँ आमंत्रण देता बड़ा-सा बोर्ड लगा है और जहाँ से ज़रूरी ईंधन लेकर आदमी आगे की यात्रा पर चल देता है ।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। पूरी कहानी हमारे वर्तमान समाज में आए मूल्य विघटन की ओर संकेत करती है । चीफ की आने की तैयारी में जब शामनाथ घर के फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाने लगता है तो उसके सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई कि "माँ का क्या होगा?" यहाँ माँ पुरानी संस्कृति की प्रतीक है जिसे हम आज कल छिपाना चाहते हैं। मोहन राकेश ने भी प्रतीकों का काफी प्रयोग किया है । उनकी कहानी 'मलबे का मालिक' का मलबा, भारत पाकिस्तान

के विभाजन के परिणाम तथा उजडे हुए जीवन एवं मूल्यों का प्रतीक है ।"[1] सरकारी तंत्र का खोखलापन भी मलबे के प्रतीक के ज़रिए व्यंजित है । भारत को स्वाधीनता तो मिली पर उसका फायदा तो अवसरवादियों ने ही उठाया है । अवाम के लिए तो मलबा ही बचा है । उस पर भी रख्खे जैसे गुण्डों ने स्वामित्व जमाया है । इसी प्रकार कुत्ते का मलबे पर भौंकना भी गहरा प्रतीकात्मक अर्थ रखता है ।

नवऔपनिवोशिक संदर्भ में रचित समकालीन कहानी का शिल्प

नई कहानी के बाद अकहानी, संचेतन व सक्रिय कहानी आंदोलनों के तहत आते कहानीकारों ने भी शिल्प के क्षेत्र में पूर्ववर्ती कहानीकार के प्रयोग को आगे बढ़ाया है । समकालीन कहानी खासकर नवऔपनिवेशिक अधिशत्व व संस्कृति के खिलाफ रचित कहानियों में पूर्ववर्ती शैलियों की सीमाओं को अतिक्रमण करने की कोशिश भी हुई है । उदयप्रकाश ने यथार्थ की कारगर अभिव्यक्ति के लिए जादुई यथार्थ शैली को अपनाया है । उनकी कहानी 'डिबिया' इसके लिए सही दृष्टान्त है । उनकी कहानी 'डर' में भी यही भाव संप्रेषित है "वह डर गया है, क्योंकि जहाँ उसे जाना है, वहाँ उसके पैरों के निशान पहले से ही बने हुए है।"[1]

डिबिया कहानी में उन्होंने जीवन की विशिष्टता दिखलाने केलिए जादुई यथार्थ के रूप में धूप के गोल टुकडों को प्रस्तुत किया है । टुकडे बहुत रहस्यपूर्ण, आकर्षक और कुछ कुछ जीवित लगते थे । वे टुकडे सूर्य के साथ-साथ सरकते थे और उसका आकार भी बदल जाता था । सुबह वह टुकड़ा

---

1. कांता मेंहदीरता - हिन्दी कहानी का मूल्यांकन - पृ. 147

मछली रूप में हैं तो दोपहर वह हाथी के रूप में या मुँह फोड़ राक्षस की तरह। कभी-कभी किरणों का कोण या सूर्य की स्थिति बदलने से कोई टुकड़ा अदृश्य भी हो जाता । उदय प्रकाश की राय में जीवन के अर्थवान महत्वपूर्ण क्षणों की प्रकृति इन्हीं टुकड़ों की तरह नाज़ुक है और इन्हें पहचानने के लिए अतिशय लगन, ईमानदारी और प्रतिभा की ज़रूरत है । इसलिए 'डिबिया' के पात्र को उस टुकड़े के प्रति इतना आकर्षण हो जाता है कि धीरे-धीरे सप्रयत्न से वह टुकडे को अपना लेता है । उस टुकडे को डिबिया में बन्द कर वह आश्वस्त भी हो जाता है ।

पंकज निष्ट की कहानी मोहन राम आखिर क्या हुआ? - में भी इस जादुई शैली का प्रयोग मिलता है । यह कहानी साधारण ढंग से शुरू होकर अंत में असाधारण बन जाती है । मोहन राम अपने मालिक के बच्चे द्वारा खरीद गए जूते को देखकर वैसा ही एक खरीदना चाहता है । यह लालसा उसे ऐसी एक स्वप्न लोक में ले जाती है, जो अन्त में भीषण यथार्थ में तब्दील होती है । मोहन द्वारा देखे गये सपने का वर्णन इस प्रकार है - "मोहन के हाथ टीटूवाला एक हज़ार पचानब्बे का जूता लग गया था । जैसे ही उसने जूता पहनना चाहा, जूता इतना बड़ा या वह इतना छोटा हो गया कि पूरा-का-पूरा ही समा गया । हो सकता है (हो क्यों नहीं सकता) उसने जूते की चारदीवारी में पसरते हुए सोचा, जूता इतना बड़ा भी हो सकता है । उसे कविता याद आने लगी, जो उसने तीसरी या चौथी कक्षा में पढ़ी थी:

"बूट में रहती थीं एक बुढ़िया
भारी था उसका परिवार...."[1]

---

1. पंकज बिष्ट - मोहन राम आखिर क्या हुआ - पृ. 156

इस प्रकार मोहन, जूते की फीते को लगाम समझकर उसके ज़रिए गाँव तथा पहाड़ का चक्कर करने लगा, बच्चों तथा बूढ़ों को हैरान करने लगा । लेकिन अचानक उसके हाथ से फीता छूट जाता है, जूता पलटकर वह नीचे गिर जाता है । और उसका दारुण अंत हो जाता है ।

पंकज बिष्ट की कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते'? की शुरुआत बिशन और आहुजा की साधारण बातचीत से होती है जो बिलकुल यथार्थ है । लेकिन कहानी के अंत में जादुई यथार्थ का प्रयोग किया गया है । गोली से बिशन इतना आतंकित हो उठता है कि उसे महसूस होता है, वह गोली अपनी छाती में लगी है । वह ऊपर को थोड़ा उछलता है फिर नीचे गिरता है । उसकी छाती से निकली खून की धारा रसोई घर तक पहूंचती है । यहाँ पंकज बिष्ट ने जादुई यथार्थ के ज़रिए उपभोगवादी संस्कृति के कुप्रभाव का दुष्परिणाम दिखाया है । उस संस्कृति के प्रभाव में आकर बिशन को अपनी जान गंवानी पड़ती है ।

उनकी कहानी 'खिड़की' में भी यथार्थ को जाहिर करने केलिए जादुई शैली का प्रयोग किया गया है । कहानी में एक क्रान्तिकारी कवि की कविता आग उगालती है यानि दूसरों के लिए खतरनाक बनती है । कविता 'लावा' जब प्रेस में छापने के लिए लाई जाती है तो उससे फूटते विरोध की आग पूरे प्रेस को ही जला लेती है । 'लावा' भी प्रतीकात्मक है, जिसमें आग लगाने की शक्ति अपने आप समाहित है ।

उनकी कहानी 'आवेदन करो' में एक युवक नरेटर के पास आता है और अपना पंजीयन नंबर 2,01,99,843 बताता है । फिर अपने एक बैग के बारे में पूछता है, जो सुबह की भीड़ में खो गया था । दूसरे दिन अखबार में एक

खबर आती है 'कुंवर सिंह' नामक 28 वर्षीय युवक सिटी बस से टक्कर खाकर मर गया । नरेटर को लगता है कि कल जो युवक उसके घर आया था वह वही कुंवर सिंह है, और वह उस अखबार में उसका पंजीयन नंबर ढूँढ़ता है । कहानी की प्रस्तुति जादुई शैली में हुई है । कहानीकार ने इसके माध्यम से यह सच्चाई को दिखाया है कि एक बेरोज़गार की मौत होते ही, वह दूसरा जन्म ले लेता है और यों बेरज़गारों की संख्या घटती नहीं । उसकी बढ़ोत्तरी ही होती है।

समकालीन कहानीकारों ने फैन्टेसी शैली का भी प्रयोग किया है । उदय प्रकाश की कहानी 'तिरिछ' इसका सही उदाहरण है । "अगर तिरिछ को देखो तो उससे आँखे मत मिलाओ । आँखे मिलते ही वह आदमी की गन्ध पहचान लेता है । और फिर पीछे लग जाता है ।....... लेकिन तिरिछ.... इसके सामने तो मैं किसी इन्द्रजाल में बँध जाता था । मैं सपने में कहीं जा रहा होता तो अचानक ही किसी जगह मिल जाता । उसकी जगह तय नहीं थी कि वह चट्टानों की दरार में पुरानी इमारतों के पिछवाडे या किसी झाड़ी के पास दिखे, वह मुझे बाज़ार में या सिनेमा हाल में किसी दूकान या मेरे कमरे में ही दिख सकता था।"[1] यहाँ निरन्तर भय और सुरक्षा की खोज के यथार्थ को फैन्टेसी शैली में प्रस्तुत करते हुए, और तीखा कर दिया है ।

असगर वजाहत की कहानी 'खेल का बूढ़ा मैदान गुस्से में है" व्याग्यात्मक शैली के लिए प्रामाणिक उदाहरण है - "स्टेडियम खचाखच भरा है। स्टार और सुपर स्टार से लेकर प्रधान मन्त्री और उप राज्यमंत्री तक विराजमान है । आकाश और पाताल में कैमरे लगे हुए हैं । पूरा साँस रोके खड़े हैं । खेल विशेषज्ञ अभी खेले जानेवाले प्रीमियर लीग के मैच पर बहस करने लगे हैं ।

---

1. उदय प्रकाश - तिरिछ - पृ. 24

एंपायर विकेट लगाने आए । वे जब विकेट लगाने गए तो पता चला कि मैदान तो पत्थर का हो गया है । प्रीमियर लीग के मैनेजर विकेट न लगा सके।

तो क्या मैच नही होगा ?

दस हज़ार करोड़ रुपये दाँव पर लगा है । स्पोन्सर कहने लगे हम लोग लुट जाएँगे ।

टीम के मैनेजर और कप्तान कहने लगे - मैच तो खेला ही जाना चाहिए।

मीड़िया ने कहा किसी भी कीमत पर... मैच तो होना ही चाहिए । पाँच हज़ार करोड़ के विज्ञापन लाइन में लगे हुए हैं । प्रधान मंत्री ने कहा - क्या देर है । मैच शुरू करो । खेल का बूढ़ा मैदान दिल ही दिल हँस रहा था । विकेट लगाए बिना खेल कैसे हो सकता है ? लेकिन खेल शुरू हो गया । संसार में पहली बार बिना विकेट लगाए क्रिकेट खेला जा रहा है।"[1] अर्थात् खेल खेलने के लिए नहीं खेला जा रहा है बल्कि खेला जा रहा है पैसों के लिए।

संजीव की कहानी 'खाज' लोककथात्मक शैली में लिखी गई है । यह इन्द्रवंश के राजा कौशलेन्द्र के खजाने की सगुनियों की तरफ से होती खोज की कहानी है । इसके ज़रिए संजीव आज की सत्ता-व्यवस्था का बयान देते है । 'खोज' नए अंदाज की कहानी है, जिसमें इन्द्रवंश और सगुनिया दोनों प्रतीक हैं। कहानी में इन्द्रवंश पूरे भुवन में फैला हुआ है । उनकी कई देशों के साथ लड़ाई हुई । ये उसी खजाने को हथियाने की लड़ाइयाँ हैं । अफसर, मंत्री, राजनेता,

---

1. सं. विनोद मेहता -आउटलुक साप्ताहिक (7 अप्रैल 2008) पृ. 56

ठेकेदार, उद्योगपति, पत्रकार, खिलाड़ी, अभिनेता, सेना और प्रशासन के अधिकारी कहीं - न-कहीं इसी वंश से जुड़े हैं । अन्त में बूढ़ा सगुनिया बताता है कि खजाना भाप बनकर उड़ चुका है और देश-विदेश में बरस चुका है । यों हमारे देश के धन को भूमंडलीकरण रूपी बारिश द्वारा अन्य देशों में बरसने की हकीकत को असरदार ढंग से लोग-कथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है ।

'लोड़ रोड़िग' आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी संजीव की कहानी है । कहानी में कथावाचक 'मैं' के रूप में विद्यमान है । 'मैं' कहता है - "अजीब देश है । सीना फुलाकर कहेगे, तकनीकी जानकारी में हम दुनिया में तृतीय स्थान रखते हैं और यहाँ हर चीज़ में कटौती।.... ब्लैक आउट कर रखा है । पता नहीं, अब किससे चढाई है ?.... ये साले भ्रष्ट नेता, सेठ, ठेकेदार, पुलिस अफसर, सरकारी प्रतिष्ठानों के आरामतलब मज़दूर देश को बेचकर खा जाएँगे।"[1]

संजीव की कहानी 'धावक' भी आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गयी एक अनोखी सृजनात्मक उपलब्धि है । इसका नायक भंबल दा है, जिन्होंने घर गृहस्थी समेटने, दायित्वबोध को निभाने में अपनी ज़िन्दगी दांव पर लगा दी है । भंबल दा कहते हैं "तुम्हारी माँ नहीं है, शायद वरना तुम इस तुच्छ पुरस्कार के लिए माँ को दाँव पर नहीं लगाते मेरे भाई । तुम्हें शायद मालूम नहीं कि भंबल ऐसे पुरुस्कारों के लिए नहीं दौड़ता । मुझे तो सिर्फ अपने को तोलना था और वह मैं कर चुका...."[2] उनकी 'प्रतिद्वंद्वी' भी आत्म कथात्मक शैली की कहानी है जिसकी प्रस्तुति एक बेरोज़गार युवक रमेश की चिन्ताओं के ज़रिए मनोवैज्ञानिक अंदाज से की गई है ।

पंकज बिष्ट ने 'शबरी शर्मा बीमार है', 'खून' जैसी कहानियों में फ्लैश

---

1. संजीव - लोड रोडिंग - पृ. 47
2. संजीव - धावक - पृ. 89

बैक शैली का इस्तेमाल किया है । शबरी शर्मा बीमार है में शबरी शर्मा राजधानी एकस्प्रेस में बैठते हुए उन सारी घटनाओं को याद करता है जिनके कारण उसे मुंबई आना पड़ा था । कहानी वर्तमान से शुरू होकर, भूतकाल से होती हुई फिर वर्तमान में आ जाती है । 'खून' भी ऐसी कहानी है जिसमें लक्ष्मी अस्पताल से आते वक्त सारी घटनाओं को याद करती है ।

पूर्वदीप्ति शैली का समुचित उपयोग संजीव ने 'फुटबॉल' में किया है। इसमें बरसों से चली आई अफसरी परंपरा पर व्यंग्य कसा गया है । आज नौकरी पाने के लिए योग्यता की जगह रिश्वत की आवश्यकता होती है । अतुल अपने पुत्र अशोक को लेकर सोमू साहब से मिलने आता है । साहब बिसी होने के कारण वह बाहर इंतज़ार करता हुआ बैठा रहता है । उसे याद आता है कि उसे भर्ती कराते समय उसका बाप भी अफसर से मिलने आया था । तब अफसर ने काफी झिड़कियाँ सुनाने के बाद फुटबॉल प्लेयर्स टेस्ट में आने के लिए कहा था, बारहवाँ खिलाड़ी बनकर । लौटते समय साहब यह कहना नहीं भूला था कि घर जाकर फुटबॉल पर एक अच्छा-सा निबन्ध लिखकर बंगले पर दे जाना । आज जिस अफसर सोमू से वे मिलने आए हैं, उसी का उस वक्त चयन हो गया था । एक ही वाक्य से पता चल जाता है कि सोमू का चयन कैसे हो गया था।"[1]

मैत्रेयी पुष्पा ने इस शौली का प्रयोग 'ललमनियाँ' में किया है । 'जिस दिन पिता मरे थे । बुरी घड़ी थी । अम्मा की आँखों से आँसुओं से ज़्यादा भूख से बिलखते अपने छोटे-छोटे बच्चों को देखकर लाचारी बरस रही थी । यह बात आज तक समझ में नहीं आई कि अम्मा किस बात की रोयी थी ? अपनी बच्चों की भूख पर ? बापू की मौत पर ? या ललमनियाँ की बिन भोग आराधना पर ?"[2]

---

1. संजीव -फुटबॉल - पृ. 56
2. मैत्रेयी पुष्पा - ललमनियाँ - पृ. 143

शिल्प के क्षेत्र में प्रयोगों के समायोजन में काबिल कहानीकार है उदयप्रकाश । नव औपनिवेशिक दौर में भारत को लूटने की साम्राज्यवादी साजिश को कारगर ढंग से जाहिर करनेवाली उनकी कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर' शिल्प के संदर्भ में भी महत् रचना है । इसकी सबसे बडी खासियत यह है कि यह परंपरागत अंदाज में नहीं लिखी गई है । इसलिए कभी भी यह कहानी नहीं लगती । नव औपनिवेशिक वर्तमान ज़माने में भारत के समूचे माहौल में यानी आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो परिवर्तन नज़र आते है उनके आकलन के संदर्भ में यह बिलकुल कहानी नहीं लगती है । यथार्थ का ब्योरा या किसी अखबार का कतरन ही लगती है । लेकिन इन्होंने इस ढंग से इनका नियोजन किया है कि कहानी के कलेवर में अनामास फिट हो जाती है । यही उनकी कहानी कि शिल्प कला का करिश्मा है । अपनी कहानियों को समर्थ एवं प्रभावशाली बनाने केलिए उन्होंने बिबं एवं प्रतीकों को सही ढंग से इस्तेमाल किया है । इस कहानी का 'स्कूटर' स्वावलंबन एवं स्वायत्तता का प्रतीक है । गांधीजी के चरखे के समान सम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ लड़ने का कारगर साधन जैसे कहानी में ही बताया गया है।

"वह लह लोहा अयस्क के रूप में धरती के गर्भ से ही निकाला गया होगा। उसमें प्रयुक्त रबड़ केरल के अलपि जिले या असम के किसी इलाके के रबड़ के पेड़ों से दिन-रात रिसते रस से निर्मित हुआ होगा । जिस ईंधन से यह स्कूटर अपनी गति हासिल करेगा वह पेट्रोलियम और कुछ नहीं, हज़ारों साल तक पृथ्वी के गर्भ की अग्नि और नैसर्गिक ऊष्मा से रुपांतरित बनस्पतियों का ही तो तरल कार्बनिक प्ररूप है । और इसकी तकनीक, जिसके द्वारा इसकी गति

नियन्त्रित होती है, पहिये घूमते हैं और यह दौड़ता है, उस तकनीक का सार दांती और चरखी की वही तन्त्र प्रणाली है जिसका प्रयोग महात्मा गाँधी ने चरखे के प्रतीकात्मक रूप में, ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध किया था।"[1]

यह स्कूटर भारतीय समूह में गहराई से पैठ गई उपभोगवादी संस्कृति का भी प्रतीक है । पॉल गोमरा ने फैसला लिया कि वह स्कूटर खरीदेगा । यद्यपि उसे स्कूटर चलाना नहीं आता है। सब लोग विज्ञापन के चंगुल में फंसकर बाज़ार के पीछे भाग रहे हैं । आम आदमी अपनी ज़रूरतों को खुद समझ नहीं पा रहा है । नए बाज़ार तंत्र में माँग के अनुरूप उद्पाद की अपूर्ति नहीं होती, बल्कि निर्माता ऐसी मानसिकता बना देता है जिसमें अपनी ज़रूरत की चीज़ खरीदने के बजाय ऐसी चीज़ खरीदने की मज़बूरी पैदा हो जाती है, जिसके खरीदने के बाद खरीदार को अपनी शान बढ़ी हुई लगती है ।

वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड़' का साँड अवास का प्रतीक है । सॉड के माध्यम से आवाम के विद्रोह को प्रस्तुत किया गया है । वह हिन्दुस्तानी पागल साँड़ इँग्लैंड के लिए एक खतरा बन गया था । वह साँड़ सचमुच पागल था । आवाम का प्रतीक, साँड के भीतर क्रोध, दुख, पीड़ा और घृणा की कोई ऐसी ज्वालामुखी थी जो विध्वंस और विनाश के तमाम रूपों में लगातार फूट रही थी। उसने एक दिन किसी साइक्लोन, तूफान, चक्रवात की तरह लपकते हुए अपने सीगों के ज़रिए वॉरेन हेस्टिंग्स को हवा में उछाल दिया ।

उदय प्रकाश की कहानी 'टेपचू' में टेपचू विद्रोही आवाम को प्रतिनिधित्व करनेवाला प्रतीक बन जाता है । 'टेपचू' को हर जगह संघर्ष करना पड़ता है और संघर्ष से उसे नई शक्ति मिलती है, उसका व्यक्तित्व और निखरता है । उसमें

---

1. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर - पृ. 54 -55

अदम्य साहस है जिसके कारण वह ज़िन्दगी से मुँह नहीं मोड़ता है । वह ताड़ के पेड़ से गिरता है, जीप के पीछे रस्सी से बाँधकर डेढ़ मील तक घसीटा जाता है। पुलिस के खिलाफ मज़दूरों के संघर्ष में नेतृत्व करते हुए गोलियों से उसका पूरा शरीर छलनी हो जाता है फिर भी अपनी फैलादी व्यक्तित्व के सहारे समाज और शासन व्यवस्था के विरुद्ध वह आवाज़ उठाता है । अपने अनमोल और इस्पाती व्यक्तित्व से वह अदम्य जिजीविषा का प्रतीक बन गया है ।

भाषा

कहानी की सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है 'भाषा' । यही कहानी को आकार देती है । वर्तमान दौर की कहानी की भाषा अपनी अर्थ क्षमता, विभिन्न अर्थ छवियों, सहजता-गंभीरता तथा सम्प्रेषणीयता आदि के कारण विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है । समकालीन कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न तरह के जन-जीवन से जुड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है । सामाजिक यथार्थ के नित्य ही बदलते रूप की वजह, भाषा टैक्सचर (ग्रथन) में लेखक को कई तरह के नये प्रयोग करने पड़ते है । भाषा का यह नयापन और टटकापन सामाजिक यथार्थ को बेहतर ढंग से उन्मीलित करने में कामयाव बनते हैं ।

जन साधारण की भाषा का प्रयोग

जब भाषा जन साधारण की ज़िन्दगी से गहराई से जुड़ती है तब कहानी पाठकों के लिए ज़्यादा संवेदनशील बन जाती है । कुछ उदाहरणों पर हम नज़र डालेंगे ।

पंकज बिष्ट की कहानी "बच्चे गवाह नहीं हो सकते?" के कुछ संदर्भ गौरतलब हैं । विशन दत्त के बेटे पडोस में टी.वी. देखने जाया करते हैं । एक बार पडोसी टी.वी. देखने से मना करते हैं, तो लेखक किश्तों पर टी.वी. खरीद ही लेता है । सभी किश्तें चुका देने पर लेखक विशन की मानसिकता का सूक्ष्म चित्रण करने के साथ-साथ उस पर तीव्र सूक्ष्म व्यंग्य भी कसता है । "रूपया घटता गया । सात से छः हुआ । छः से पाँच, पाँच से चार फिर तीन, एक और मुक्त हो गया । पूर्णतः मुक्त संविधान में मिले सारे अधिकारों से लैस देश के किसी भी नागरिक की तरह।"[1]

कहानीकारों ने बम्बइया भाषा का प्रयोग धड़ल्ले से किया है । बंबई तो भारत के प्रमुख औद्योगिक शहरों में एक है । जन साधारण भी अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसलिए भाषा की सहजता के लिए अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग बराबर किया गया है । रमेश उपाध्याय की 'लाइ लो' कहानी का नायक टैक्सी ड्राइवर भी अंग्रेज़ी से लैस भाषा में बोलता है - "पन ये छोकरी वो दिवस अपुन को इण्टरवीन करने का वास्ते मज़बूर कर दिया साब । ये जब सेठ को किस किया। सेठ ये को एक झापड़ा मारा और धक्का दे के बोला, "कीप अवे फ्राम मी यू बिच । मैं तो को अपने वास्ते नई, कोई और को खुस करने का वास्ते लाया । बस ये सुनना कि छोकरी की नींद गायब।"[2]और एक प्रसंग हैं "ब्रदर तुम हमारा बहुत हेल्प किया । मैं बोला हेल्प योरसेल्फ सिस्टर । तुम अच्छे खानदान का अपटूडेट लड़की नज़र आता । ये काम नहीं करने का तब साब ये रोते-रोते अपुन की ये का होल स्टोरी सुनाया"[3]

1. पंकज विष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते ? पृ. 8
2. संपादक हिमांशु जोशी - पच्चीस श्रेष्ठ कहानियाँ (भाग-2) पृ. 45
3. वही - पृ. 47

चित्रा मुद्‌गल की कहानियों में उत्तर प्रदेश की बोलियों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । कहानी 'लकड़बग्धा' का एक हिस्सा इस प्रकार है - "हाँ... हाँ हमका पक्का प्रबन्ध चही... पुनिया हमारी नई जाहिल काहिल न रही.... आज हम चार अक्षर पढ़ी लिखी होतिन तो काहू के आसरे चौका-बासन निबटाइत पड़ी रही होतिन ? हमार ज़िन्दगी कढ़िलत-घसिटत बीत गयी, हमार नसीब।"[1]

हिन्दीतर शब्दों का प्रयोग

अंग्रेज़ी के अनेक शब्द हिन्दी भाषा में घुल मिल गये हैं कि वे हिन्दी भाषा के व्यक्तित्व के अंग ही लगते है । डॉ. हरदेव बाहरी ने शिक्षार्थी हिन्दी शब्द कोश (बाद में राजपाल हिन्दी शब्द कोश) में अंग्रेज़ी से आगत लगभग दो हज़ार शब्दों की सूची प्रस्तुत की है जो हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं।"[2]

असगर वजाहत की कहानी 'चन्द्रमा के देश में' अंग्रेज़ी शब्दों का खूब प्रयोग किया है। "वकील साहब ने फिर प्वाइंट क्लिक किया । भाई हमें इन इंग्लिश स्कूल वालों का सिस्टम अच्छा लगा । रटा दो लौंडों को । दे दो सालों को होमवर्क । माँ-बाप कराएँ, नहीं तो टीचर रखें । हमारे ठेंगे से । होमवर्क पूरा न करता हो तो माँ-बाप को खींच बुलओ और समझाओ कि मियाँ बच्चे को अंग्रेज़ी मीड़ियम में पढ़वा रहे हो, हँसी-मजाक नहीं है । फिर कसकर फीस लो। आज इस नाम से तो कल उस नाम से । बिल्डिंग फण्ड, फर्नीचर फण्ड, पुअर फण्ड और स्कूल फण्ड।"[3]

मुस्लिम कहानिकारों ने अपने संस्कारों से प्राप्त उर्दू शब्दावली से हिन्दी

---

1. सम्पादक हेतु भारद्वाज - प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ - पृ. 53
2. डॉ. हरदेव बाहरी - परिशिष्ट - शिक्षार्थी हिन्दी कोश - पृ. 891
2. असगर वजाहत - स्विंमिंग पूल - पृ. 16

कथा भाषा को एक नयी कथन भंगिमा प्रदान की है । नासिरा शर्मा की भाषा में उर्दू रंग बहुत गाढ़ा है - "दो लड़कियाँ दिलाराम और शबनूर ऐसे पाक-साफ कि उनके दामन पर नमाज़ पढा लो ।... चाचा से कहो कि वह अब्बास और हैदर के लिए मुनासिब होगी । दोनों के कप को मशहद और इस्फाहान में नशे के इल्ज़ाम में फाँसी पर चढ़ाया गया था, मगर उन दोनों का कहना है कि यह केवल आरोप था।"[1]

असगर बजाहत की कहानी की भाषा भी उर्दू मिश्रित है - "गरज कि गुजरात के कैम्प में इस समय सिर्फ रूहें हैं - रूहें कत्ल किए गए बच्चों, औरतों और बूढ़े जवान मर्दों की या फिर बहादुर कातिलों की । आखिर रूहें भी तो किस्म-किस्म की होती हैं, कुछ हिंसक तो कुछ अहिंसक । जो हो कुछ ऐसी रूहें भी हैं जो वर्षों से कब्र में पडे लोगों की हैं और जो कहानी के बाहर ही रह गईं।"[2]

पंकज बिष्ट ने हिन्दी के साथ पंजाबी भाषा का भी खूब प्रयोग किया है, जैसे

"लाल कुँए दे इलाके विच।"
'तेरी शादी हो गई?"
'नई"
"किन्नी हो गई तेरी उमर?"
"ऐसी कोई चालि साल"
'तू हुण करेगा कदो? कर ले माई शादी...।"[3]

---

1. नासिरा शर्मा - गूँगा आसमान - पृ. 77
2. आलोचना - जुलाई - दिसम्बर 2002 - पृ. 227
3. पंकज बिष्ट - चर्चित कहानियाँ - पन्द्रह जमा पच्चीस - पृ. 25

आँचलिक प्रयोग

समकालीन कहानी में आँचलिक शब्दों का प्रयोग सहजता लाने के वास्ते किया गया है । संजीव की कहानी 'टीस' में से एक हिस्सा इस प्रकार है - साँप ?....दूर साँप कइसा । हम तो बेंग (मेढ़क) और माछ (मछली) है, जो चाहे गटक जाय।"[1] यहाँ आदिवासी लोगों की भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

मौत्रेयी पुष्पा की कहानियों में भी आँचलिक शब्दों की भरमार है - जैसे "गाँव के लोग दुश्मन हो गए हैं । जनीमानसे बोली मारती है । खेत निरानी काछिने मुँह ऐंठ रही थी । काछी की मोंठवाली बहु की जुबान दो गज लंबी है। सरग-पाताल चलती है।"[2]

सुधा अरोड़ा ने महानगर की मैथिली में मिश्रित भाषा का इस्तेमाल किया है - "बोत देर लगाया मेमसाहब । अईसा नई करने का । मेरे कू भी रविवार घर में काम होता हाय । अबी देखलेना मैथ्यू को, तिकडे बसली हाय, छोकरी कुच्छ खाया नई, पिया नई, खेलने का भी नई, बात बी नई करने का, अब तुमीच देखो ये रे माथू, काय झाला, देख गमी आली तुझी।"[3]

गाली का प्रयोग

कुछ समकालीन कहानियों में खुलकर गाली का प्रयोग हुआ है। जैसे "ये औरतें। मैंने अरुचि से सोचा, सिर्फ दो वक्त की रोटियों और बीच की जगह के एवज में पति को नौकर बना लेती है।"[4] ममता कालिया ने यहाँ खुलकर लिखने की शैली को अपनाया है ।

1. संजीव - तीस साल का सफ़रनामा - पृ. 47
2. मैत्रेयी पुष्पा - ललमनियाँ - पृ. 72
3. सुधा अरोड़ा - महानगर की मैथिली - पृ. 117
4. ममता कालिया - सीट नंबर छह -पृ. 13

रमेश उपाध्याय की कहानी 'लाइ लो' में कथावाचक टेक्सी ड्राइवर एक लड़की से कहता है । "यू लाइ लो एण्ड गैट फक्ड, बट आइ शैल नाट कीप क्वायट"[1] ऊपर दिये गये उदाहरणों से हमें यह बात मानना पडेगा कि ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग पात्रों के आक्रोश और मानसिकता को व्यक्त करने के लिए बहुत ज़रूरी है ।

प्रतीकों का प्रयोग

प्रत्येक कल्पना प्रधान साहित्य कुछ अर्थों में प्रतीकात्मक होता है । आधुनिक कहानी में जीवन के बाह्यस्थिति के साथ-साथ कहानीकार जब आन्तरिक सत्यों में प्रवेश करना चाहता है तो उसके सम्मुख सबसे बड़ी समस्या यह हो सकती है कि वह इस आतंरिक सत्य को कैसे मूर्त करे । अगर कहानीकार इस सत्य को गद्यात्मक रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं तो उसे बहुत सारे उलझनों का सामना करना पडेगा । इसके लिए एक ही उपाय है कि कहानीकार को कुछ ऐसे मूर्त रूपों को बनाना, जिनसे पाठक पहले से ही परिचित हो या उन मूर्त रूपों को अपनी रचनाओं के संदर्भ में कुछ नये अर्थ देकर प्रस्तुत करना । इसे हम प्रतीक कह सकते हैं । प्रतीक का प्रयोग रचना के शीर्षक से लेकर अन्त तक लेखक अपनी रचनात्मक विवेक के अनुसार कहीं भी कर सकते हैं । पुराने ज़माने में प्रतीकों को सीधे अर्थ या उसके चित्रात्मक दृष्टिकोण से अपनाते थे । लेकिन समकालीन कहानीकार प्रतीकों को, अर्थ विस्तार के लिए करते आ रहे हैं ।

उदय प्रकाश की कहानी 'तिरिछ' में तिरिछ एक बिच्छू का नाम मात्र नहीं है। यह पूरी व्यवस्था का प्रतीक है - "मैं भी तमाम बच्चों की तरह उस समय

1. सं. हेतु भारद्वाजू - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 55

तिरिछ से बहुत डरता था । ...... मैं सपनों में कोशिश करता कि उससे नज़र न मिलने पाये । लेकिन वह इतनी परिचित आँखों से मुझे देखता कि मैं अपने आपको रोक नहीं पाता था और बस, आँखे मिलते ही उसकी नज़र बदल जाती थी - वह दौड़ता था और मैं भागता था... मुझे लगता कि वह मुझे खूब अच्छी तरह से जानता है । उसकी आँखों में मेरे लिए परिचय की जो चमक थी, उससे मुझे लगता कि वह मेरा ऐसा शत्रु है जिसे मेरे दिमाग में आनेवाले हर विचार के बारे में पता है।"[1] पूरी कहानी तिरिछ रूपी व्यवस्था से डरकर जीनेवाले अवाम पर आधारित है ।

असगर वजाहत की कहानी 'चार दिशाऐं' का 'पेशाब' जनता की मज़बूरी का प्रतीक है । यह कहानी इस महत्वपूर्ण बात पर प्रकाश डालती है कि किस प्रकार जनता शहर में पेशाब करने के लिए परेशान रहती हैं । दीवारों पर लिखा होता है कि 'यहाँ पेशाब करना सख्त मना है', जो सिपाही उस दीवार की रखवाली करता है वही अन्त में उस दीवार पर पेशाब करने केलिए मज़बूर हो जाता है ।

उनकी कहानी 'पहचान' का राजा पूँजीवाद का प्रतीक है । राजा ने हुक्म दिया कि उसके राज में सब लोग अपनी आँखें बन्द रखेंगे ताकि उन्हें शान्ति मिलती रहें । लोगों ने ऐसा ही किया, क्योंकि राजा की आज्ञा मानना जनता के लिए अनिवार्य है । जनता आँखें बन्द किए-किए सारा काम करती थीं और आश्चर्य की बात यह है कि काम पहले की तुलना में बहुत अधिक से अच्छा हो रहा था । फिर हुक्म निकला कि लोग अपने-अपने कानों में पिघला हुआ सीस डलवा लें, क्योंकि सुनना जीवित रहने के लिए बिलकुल ज़रूरी नहीं है । लोगों ने ऐसा ही किया ओर उत्पादन आश्चर्यजनक तरीके से बढ़ गया ।

---

1. उदय प्रकाश - तिरिछ - पृ. 25-26

फिर हुक्म यह निकला कि लोग अपने-अपने होंठ सिलवा लें, क्योंकि बोलना उत्पादन में सदा से बाधक रहा है । होठों को सिलवाने के बाद लोगों को पता लगा कि अब वे खा भी नहीं सकता हैं । राजा रात-दिन प्रगति करता रहा। एक दिन खैराती, रामू और छिद्दू ने सोचा कि आँखें खोलकर तो देखें । तब तक अपना राज स्वर्ग हो गया होगा । उन तीनों ने आँखें खोलीं तो उन सबको अपने सामने राजा दिखाई दिया । वे एक दूसरे को न देख सके।"[1] यहाँ राजा धनिक पूंजीपति वर्ग का प्रतीक है जिसके शोषण से गरीब लोग और गरीब होते गए हैं।

असगर वजाहत की कहानी 'चार हाथ' का मिल मालिक बहु राष्ट्रीय कंपनियों का प्रतीक है । मिल मालिक सिर्फ अपने फायदे व मुनाफे को ही देखता है । एक दिन उसके दिमाग में ख्याल आया कि अगर मज़दूरों के चार हाथ हो तो काम कितनी तेज़ी से हो सकता है और मुनाफा कितना ज़्यादा । कई साल तक शोध और प्रयोग करने के बाद वैज्ञानिकों ने कहा कि ऐसा असंभव है कि आदमी के चार हाथ हो जाएँ । मिल मालिक ने वैज्ञानिकों को नौकरी से निकाल दिया और अपने आप इस काम को पूरा करने में जुट गया । उसने कटे हुए हाथ मँगवाए और अपने मज़दूरों को फिट करवाने चाहे पर उनसे काम नहीं हो सका। फिर उसने लोहे के हाथ फिट करवा दिए, पर मज़दूर मर गए । आखिर एक दिन बात उसकी समझ में आ गई । उसने मज़दूरी आधी कर दी और दुगुने मज़दूर नौकर रख लिए।"[2] इस कहानी में पूँजीवादी वर्ग के प्रतीक मिल मालिक यही चाहता है कि कम से कम मज़दूरी में अधिक-से-अधिक लाभ जुटाए ।

उनकी एक और कहानी 'शेर' में शेर सत्ता का प्रतीक है । सत्ता जनता

1. स्विमिंग पूल - असगर वजाहत - पृ. 37
2. वही - पृ. 21

को विश्वास दिलाती है कि उनको रोज़गार देगी और जनता सत्ता के पास जाती है और उस सत्ता में इस तरह फँस जाती है कि वह कभी उसकी गिरफत से नहीं निकल पाती । गधा समझता है कि शेर के मुँह पर हरी घास है । उल्लू सोचता है कि शेर के मुँह के अन्दर स्वर्ग है । सब जानवर शेर के मुँह के अन्दर चले जाते हैं । कुछ दिनों के बाद कथानायक ने सुना कि शेर अहिंसा और सह-अस्तित्ववाद का बड़ा समर्थक है इसलिए जंगली जानवरों का शिकार नहीं करता। सत्ता में जो लोग होते हैं वे दिखावा करते हैं कि वे लोग जनता के लिए खडे हैं लेकिन असल में उनका चरित्र बहुत ही खराब होता है ।

'ज-1' कहानी में ज-1 जनता का प्रतीक है । "ज-1 कहता है कि मेरे पेट का इलाज करो 'पेट' भूख का प्रतीक है, खाने का प्रतीक है, मेरे पेट में सैकड़ों बीमारियाँ हैं, मुझे अच्छा खाना नहीं मिलता है, मैं खराब खाना खाता हूँ, मेरा पेट खराब हो गया है, मेरा पेट ठीक होगा तो मेरा शरीर भी ठीक हो जाएगा। लेकिन यह सत्ता नहीं मानती है । अर्थात् सत्ता जो है वह दिखावा प्रस्तुत करती है । बडे-बडे नेता, बडे-बडे शासक जैसे राहुल गाँधी रोड़ शो करता है कही भी रोड पर खड़ा रहता है और भाषण देता है और गरीब आदमी की झोपड़ी में जाकर उस आदमी के साथ खाना खाता है यह एक पाखण्ड है । सत्ता आम आदमी के साथ होते हुए भी आम आदमी के विरोध में है।"[1]

'साझा' कहानी में हाथी सत्ता का प्रतीक है । हाथी किसान को समझाकर उसके साथ खेती करने केलिए कहता है - 'किसान इससे पहले शेर, चीते और मगरमच्छ के साथ साझे की खेती कर चुका था । किसान फसल की सेवा करता रहा और समय पर जब गन्ने तैयार हो गए तो वह हाथी को खेत पर

1. असगर वजाहत से साक्षात्कार 30 मार्च 2008

बुला आया । किसान चाहता था कि फसल आधी आधी बाँट ली जाए । हाथी ने कहा हम दोनों ने मिलकर मेहनत की थी, हम दोनों उसके स्वामी हैं । आओ हम मिलकर गन्ने खाएँ । गन्ने का एक छोर हाथी की सूँड में था और दूसरा आदमी के मुँह में । गन्ने के साथ साथ आदमी हाथी के मुँह की तरफ खिंचने लगा तो उसने गन्ना छोड़ दिया । यहाँ हाथी पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक है, जो गरीबों का शोषण करता है । सत्ता के साथ आम आदमी, समझौता नहीं कर पाता है ।

'दिल्ली पहूँचना है' कहानी में दिल्ली सत्ता का प्रतीक है । दिल्ली पर आज उन लोगों का शासन है या उस सरकार का शासन है जो पूँजीपतियों के साथ है । हमारी सरकार जनता के पक्ष में नहीं है, गरीब लोगों के साथ नहीं है। इस कहानी में जो दल हैं, यह दल गरीबों का समर्थन करता है । यह दल गरीब लोगों के साथ दिल्ली पर सत्ता प्राप्त करने के लिए दिल्ली पहूँचना चाहता है ।

शिव मूर्ति की कहानी 'कसाई बाड़ा' कहानी में शोषक-शोषित शक्तियों का संघर्ष दिखाकर अन्त में लीडराइन से कहलवाया गया है कि "सारा गाँव कसाईबाड़ा है ।'[1] यहाँ कहानीकार कहना चाहते हैं कि आज की दुनिया और व्यवस्था कसाईबाड़ा जैसा है, जहाँ साधारण लोगों को जानवरों की तरह मार दिया जाता है ।

संजीव की कहानी 'तीस साल का सफरनामा' में कथावाचक जब आरंभ में ही कहता है कि उसका जन्म 15 अगस्त 1947 को हुआ, तो जाहिर है यहाँ लेखक ने नायक को देश के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है ।

---

1. शिव मूर्ति - केशर - कस्तूरी (कसाई बाड़ा)- पृ. 26

बिम्ब और उपमान

समकालीन कहानीकार यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए बिंब और उपमानों को नए अंदाज में प्रयोग किया है । उदयप्रकाश यथार्थ को पहले बिम्ब में उतारता है, आगे बिम्ब को प्रतीक में बदल देता है । बिंब मिथकों के रूप में दिखाई पड़ते हैं । उनकी कहानी 'दरियाई घोड़ा' में लिखा गया है - "वहाँ बीमार दादा (पिता) अपने विकृत चेहरे में ही नहीं, अच्छे भले दिनों में भी दरियाई घोड़ा थे । हनुमान थे । उन्हें बीमार छोड़कर वाचक जब अन्त में लौटता है, तो वह अपना स्वरूप भी वैसा ही महसूस करता है, मेरा जबड़ा फैल गया, दरियाई घोडे की तरह।"[1] इस प्रकार यहाँ बिंब पहले प्रतीक का और फिर हनुमान के स्वरूप में मिथक का रूप ग्रहण कर लेता है ।

संजीव ने रूपात्मक बिंब का प्रयोग किया है 'आँसू भरी पलकों पर गिर रहे थे पलकों के आँसू, जैसे प्यासी हिरणी मुँह ऊपर करके झरने का छहरता पानी पी रही हो।"[1] एक और उदाहरण इस प्रकार है 'आकाश बादलों से भरा पड़ा था और हवा गुम्मी मारे शिकार के लिए घात लगाए बाघ की तरह बैठी थी।"[2]

शिव मूर्ति ने 'कसाई बाड़ा' कहानी में परधानजी के घर के समक्ष धरना दिए बैठी शनिचरी के बारे में कहा है "किसी मोटे प्रश्नचिह्न-सी बैठी है शनिचरी"[3] व्यक्ति की ज़िन्दगी उसके सामने हमेशा एक प्रश्नचिह्न बनकर खडी है और यहाँ स्वयं व्यक्ति प्रश्न चिह्न के रूप में बदल गया है ।

लेखिका सिम्मी हर्षिता ने इन्टर्व्यू में आये प्रत्याशियों की भीड़ के लिए

---

1. संजीव - हिम रेखा - पृ. 2
2. संजीव - जीवन के पार - पृ. 7
3. शिव मूर्ति - केशर कस्तूरी - पृ. 7

एक सार्थक बिम्ब प्रस्तुत किया है "प्रत्याशी-प्रार्थी ही प्रार्थी । कमरे के अन्दर, कमरे के बाहर, बरामदे में, परिसर में, फैशनेबुल-फ्रिज से निकले, मॉडलिंग करते आवेदक प्रेशर कुकर की तरह रांटिंग करते धक्का मार आवेदक निराशा-आशा में पेण्डुलम की तरह हरदम झूलते।"[1]

राजी सेठ की कहानी 'अन्तहीन' में कपूर को सोचते हुए दिखाती है कि "दो किनारों के बीच पेड़ से टूटी डाल की तरह डोल रहा हूँ अनिश्चित।"[2]

पंकज बिष्ट की कहानी 'मुकाम' में वर्षों से सनी पृथ्वी का सुन्दर रूप यों है - "दूर उनके शहर से वर्षा आ रही थी । उसी तेज़ी से उनकी बस भी वर्ष से मिलने जा रही थी, बादलों के विशाल व अंतहीन तोरणों से गुज़रती हुई....। उन्होंने देखा, बादलों ने पृथ्वी को अपनी काली पारदर्शी साड़ी के आँचल में लपेट लिया है । कुछ ही पल बाद उन्हें लगा कोई छेड़खानी कर रहा है । पानी की हल्की-हल्की फुहारें उनके चेहरे को भिगेने लगी थीं।"[3]

अलंकार

समकालीन कहानीकारों ने कथन को अधिक प्रभावी बनाने केलिए अलंकारों का भी सही प्रयोग किया है । जैसे-

"सिर ऐसा झुका हुआ जैसे इनके कुपुत्र के बोझ से हवेली की नींवे लड़खडाने लगेंगी"[4]

"गलि के कुत्ते-सा इधर उधर मंडराता ध्यान।"[5]

1. सिम्मी हर्षिता - चक्रव्यूह -संचेतना (दिसम्बर 1973)
2. राजी सेठ - अन्धे मोड के आगे (अन्त्रहीन) - पृ. 10
3. पंकज बिष्ट - चर्चित कहानियाँ (मुकाम) पृ. 142
4. राजी सेठ - यात्रा मुक्त - पृ. 55
5. राजी सेठ - दूसरे देश काल में - पृ. 37

"गुथे आटे-सा नरम, पिघलती मोमबत्ती- सा मुख पनचक्की की तरह धक-धक करने लगा लल्लन का कलेजा।"[1]

"धरती फटे पॉव की बिवाई-सी तड़क गई थी।"[2]

"लड़की की जा-गंदे कपडे की गठरी।"[3]

"समय के एहसास तो सँडविच की भीतरी भराव की तरह अपने से चिपकाए"[4]

कहानी के शीर्षकों में नवीनता

पूर्ववर्ती कहानियों में मुख्य पात्र घटना अथवा स्थान के नाम पर कहानी का नामकरण होता था । उदाहरण के रूप में भीष्म साहनी की कहानी वाड्चू, नमिता सिंह की कहानी 'राजा का चौंक आदि, लेकिन वर्तमान दौर में कहानी के नामकरण में प्रतीकात्मक पद्धति का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है । इसके भी दो रूप प्राप्त है सामान्य प्रतीकात्मक रूप और मिथकीय प्रतीकात्मक रूप । जैसे तिरिछ (उदय प्रकाश), पॉल गोमरा का स्कूटर (उदय प्रकाश), लोड रोडिंग (संजीव) ब्लैक होल (संजीव) । समकालीन कहानीकारों ने प्रश्नवाचक शीर्षक भी प्रस्तुत किये है जैसे बच्चे गवाह नहीं हो सकते (पंकज बिष्ट)। यों यह बात स्पष्ट जाहिर है कि कथ्य की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए समकालीन कहानीकारों ने शीर्षक की सार्थकता पर भी ध्यान दिया है ।

कहानी का प्रारंभ और अन्त

वर्तमान दौर की कहानियों के प्रारंभ और अन्त की भी खास विशिष्टता है । क्योंकि समकालीन कहानीकार पठनीयता के प्रति सचेत रहता है । वे जानते

1. मैत्रेयी पुष्रपा - ललमनियाँ - पृ. 80
2. उषा महाजन - शोषित और अन्य कहानियाँ - पृ. 104
3. मेहरुन्निसा परवेज - सोने का बेसर - पृ. 16
4. राजी सेठ - दूसरे देश काल में - पृ. 13

है कि पठनीयता का गुण तब मिलता है, जब कथ्य का शिल्प के साथ तालमेल हो । कहानियों के प्रारंभ में वातावरण को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रही है ।

उदय प्रकाश की कहानी 'राम सजीवन की प्रेमकथा' में प्रारंभिक अनुच्छेद तो बाद की कहानी से कोई ताल मेल नहीं रखता है । फिर भी प्रारंभिक अनुच्छेद की चित्रात्मकता पाठक को कहानी की और आकृष्ट करता है । "जहाँ कई वर्ष पहले गाँव था और जहाँ बैलों के तेल-चुपडे भोले काले सींग थे, दोपहर जंगल में पत्तों की गहरी हरी गन्ध थी और कच्चे आम के ताजा कटे फाँक के साथ नमक मिर्च का स्वाद था, धान के महकते खेत थे, जहाँ अन्धी बुढ़िया महाराजिन थी जिसकी बारी से लड़के खीरा, और भट्टा चुरा लाते थे । राम सजीवन का बच्चपन वहीं पीछे छूट गया था.... पन्द्रह साल पीछे।"[1]

कतिपय कहानियों में आरंभ और अंत पाठकीय मानस पर कथ्य के तालमेल से अंकित करने का प्रयास भी किया गया है । जैसे ज्ञान प्रकाश विवेक की कहानी 'पिताजी चुप रहते हैं" की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं "अब पिताजी से आँख मिलाते बड़ा डर लगता है । पिताजी की आँखे, आँखे नहीं रहीं, खण्डहर हो गयी हैं, जिसमें खामोशियों की परछाइयाँ भटकती नज़र आती हैं । आँखे कभी खुली की खुली रह जाती हैं, मानो वे झपकना भूल गयी हों या फिर खुली आँखों में किसी जागते ख्वाब को देखने की कोशिश कर रही हो ।"[2] उस प्रमुख पात्र की पीड़ा से गुज़रते हुए कहानी की अंतिम पंक्तियां इस प्रकार है "पिताजी रोज़ उस मलबे में कुछ ढूँढने चले जाते हैं । जब वापस आते हैं तो गूँगी आँखों में एक चीख होती है-गिरते मकान की, मरते हुए घर की।"[3]

---

1. उदयप्रकाश - संपादक हेतु भरद्वाज प्रतिनिधि कहानियाँ राम सजीवन की प्रेमकथा - पृ. 113
2. ज्ञान प्रकाश विवेक - पिताजी चुप रहते है - पृ. 60
3. वही - पृ. 65

कहानी का आकार

समकालीन कहानीकारों ने कहानी के आकार को लेकर भी नए तरह के तकनीकों का प्रयोग किया है । नयी कहानी के दौर में कमलेश्वर से लेकर 'सारिका' पत्रिका में धारावाहिक रूप से लंबी कहानियाँ निरन्तर प्रकाशित हो रही थीं। आज के समय वामपन्थी कहानीकारों ने भी लंबी कहानियों की पद्धति को अपनाया है । तिरिछ (25 पृष्ठ) हीरा लाल का भूत (25 पृष्ठ) उतरन (56 पृष्ठ) सुखान्त (63 पृष्ठ) यात्रा मुक्त (20 पृष्ठ) आदि उल्लेखनीय उदाहरण हैं। ये लंबी कहानियाँ विस्तृत होने के साथ-साथ गहनता भी प्रदान करती हैं । छोटे आकार की रचनाओं में असगर वजाहत का नाम सबसे महत्वपूर्ण है । उनकी 'गुरु चेला संवाद' इसके लिए उत्तम उदाहरण है।

पात्रों का नामकरण

समकालीन कहानीकारों ने पात्रों के नामकरण में भी विविधता दिखाने का प्रयास किया है । जैसे सिम्मी हर्षिता की कहानी 'भूख की बिक्री' में एक नया प्रयोग मिलता है । पूरे पात्रों को पहली भूख, दुसरी भूख और तीसरी भूख आदि भाववाचक रूप में नाम दिये गये हैं। कहानी पढ़कर भूख के प्रति पाठकों की संवेदना बढ़ जाती है ।

कुछ कहानियों में पात्रों को पद के आधार पर पुकारा गया है । शिव मूर्ति की कहानी 'कसाई बाड़ा' में पात्रों को प्रधानजी, लीडरजी, दरोगा आदि रूप में प्रस्तुत किया गया है । पात्रों के नामकरण में लेखक की सोच समकालीन रही है ।

❖ ❖ ❖

उपसंहार

उपसंहार

यह सर्वविदित बात है कि सन् उन्नीस सौ सैतालिस तक भारत, ब्रिटन का उपनिवेश रहा था । यानी स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भारत की सामाजिक व्यवस्था औपनिवेशिक थी । द्वितीय महायुद्ध के बाद अनेक देशों के साथ भारत भी स्वतंत्र हो गया । इसकी वजह पूरी दुनिया में यह गलत धारणा फैल गई थी कि एक राजनैतिक व्यवस्था के तौर पर साम्राज्यवाद क्षीण पड़ गया है । यह सही नहीं है । हकीकत यह है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद ज़्यादातर उपनिवेश आज़ाद पूँजीवादी देशों में दब्दील हो गए और साम्राज्यवादी देशों के खेमे में अमेरिका को भी दुर्निवार स्थान प्राप्त हो गया । मतलब साम्राज्यवादी शोषण आज़ादी के बाद भी चलता रहा और इस प्रक्रिया में अमेरिका भी शामिल हो गया । एशिया, आफ्रिका व लाटिन अमेरिकी देशों में व्यापक स्तर पर साम्राज्यवादी देशों की पूँजी का निर्यात होता रहा और यों आर्थिक शोषण बेरोकटोक ज़ारी रहा । इस नई प्रक्रिया को उजागर करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक साम्राज्यवाद और समाजशास्त्रियों ने इस नए सामाजिक माहौल की अभिव्यक्ति के लिए नव औपनिवेशिक शब्द का इस्तेमाल किया है ।

आज अमेरिका साम्राज्यवादी देशों का अगुआ बन गया है और दुनिया के हर कोने में व्याप्त है । इस नव औपनिवेशिक दौर में अमेरिकी नेतृत्व में जो भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ज़ोर पकड़ रही है, इसका मकसद सर्वव्यापी शोषण है । इसमें आर्थिक, राजनीतिक, और सैनिक दखलों के साथ सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी हमला हो रहा है, इस पर अमेरिकी पत्रकार टॉमस. एल फ्रिडमैन का बयान

है कि "हम चाहते हैं कि हमारे मूल्यों और पिज्जा हट्स, दोनों का विस्तार हो । हम चाहते हैं कि सारी दुनिया हमारा अनुसरण करे और जनतान्त्रिक एवं पूँजीवादी बने, हर पात्र में एक वेबसाइट, हर होंठ से लगी पेप्सी की बोतल, हर कम्प्यूटर में माइक्रोसॉफ्ट विंडोज हो और प्रत्येक व्यक्ति हर जगह अपनी गाड़ी में स्वयं पेट्रोल डाले।"

पूरी दुनिया पर आर्थिक और राजनीतिक नियन्त्रण कायम रखने के लिए अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी ताकतों ने भूमण्डलीकरण का पैकिज घोषित कर दिया था । आज अगुआ अमेरिका ही दुनिया की योजनाऐं बना रहा है । साथ ही एशिया, अफ्रिका और लातिन अमेरिका पर अपनी मनमानी शर्तों भी लादनी शुरू कर दी है । अन्य देशों की कल्याणकारी भूमिका खतम करने की कोशिश हो रही है और प्राकृतिक संस्थानों पर अपना नियन्त्रण कायम करने केलिए सैनिक कार्यवाहियों की हद तक उतर आया है । मतलब अमेरिका अपनी साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करने केलिए संपूर्ण विश्व को अपने इशारों पर नचाने में मशगूल है ।

इन साम्राज्यवादी देशों के शोषण से बचने का प्रयास तीसरी दुनिया के देशों में पहले से ही हो रहा था । सचमुच गुट निरपेक्ष आन्दोलन एक सफल प्रयास था । इसने इस मान्यता को बदल दिया कि महाशक्तियों के सहारे ही विश्व के अन्य देशों का अस्तित्व संभव है । लेकिन सोवियत रूस के विघटन के बाद गुटनिरपेक्षता की संकल्पना को ठेस पहूँच गई । ऐसी संस्थाओं को अमेरिका जैसे साम्राज्यवादी देश ठिकने नहीं देगे क्योंकि अमेरिका तो हथियारों का निर्माण एवं

व्यापार में मशगूल है । इसलिए दुनिया में अमेरिका के लिए युद्ध का होना ज़रूरी है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ठोस आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था । 1980 के दशक में आर्थिक नीतियों में लगातार की गयी गलतियों के कारण वित्तिय घाटा तेज़ी से बढ़ता गया । विदेशियों से मिलनेवाली विदेशी मुद्रा में कमी आई । इसलिए देश को भारी मात्र में कर्ज लेना पड़ा । कुल खर्च राजस्व आय से अधिक हो गया । नवंबर 1990 से मार्च 1991 के बीच दो सरकारें गिरीं । अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी बाज़ार में भारत की खास-दर (क्रेडिट रेटिंग) काफी कम हो गई । अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाताओं से कर्ज मिलना बन्द हो गया । और अन्त में विश्व प्रसिद्ध 'वाशिग्टन सर्वानुमति' के अनुकूल 1991 में भारत सरकार ने भी व्यापक रूप से आर्थिक नीति में सुधार लाने का प्रयास किया ।

इसके पीछे विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का हस्ताक्षेप था । बुनियादी आर्थिक ढाँचे को बदलने के लिए निजीकरण तथा खुलेपन का दर्शन अपनाया गया । आर्थिक निजीकरण से तात्पर्य आर्थिक गतिविधियों में निजी क्षेत्र को अधिक से अधिक छूट देना है । खुलापन इसी निजीकरण का विस्तार है, जिसके तहत विदेशी पूँजी को भी देश की आर्थिक गतिविधियों में खुलकर खेलने का अवसर देना है । निजीकरण की नीतियों के तहत निजी क्षेत्र पर लगायी गयी अनेक बंदिशें हटायी गयीं । सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित अनेक उद्योगों में निजी क्षेत्र को अवसर दिया गया । निजीकरण की दिशा में एक बहुत बड़ा निर्णय सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण है । सार्वजनिक कंपनी के शेयरों की बिक्री से

निजी क्षेत्र को उनपर मालिकाना हक मिल सकता है । नयी आर्थिक नीति आरक्षण विरोधी है । आरक्षण के पीछे सबसे बड़ा तर्क निर्बलों को सबलों के प्रभुत्व से बचाना है । जब आरक्षण धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा तब निजी बडे घराने ही नहीं बल्कि बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ भी लघु उद्योंगों के लिए आरक्षित क्षेत्रों में प्रवेश कर सकती है । खुलेपन के तहत ही आयात-निर्यात की नीतियों तथा तौर-तरीकों को उदार बनाया गया है तथा सीमा शुल्क की दरें काफी कम कर दी गयी हैं । विदेशी पूँजी आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक भी है, क्योंकि विदेशी कंपनियाँ अपने उत्पादन कार्यों के लिए कच्चे माल, कल पूर्जों तथा अन्य सामग्री का आयात करना चाहेंगी और सीमा शुलक की ऊँची दरें उनके प्रयासों को चोट पहूँचा सकती हैं ।

उपर्युक्त शर्तें विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा प्रस्तावित उदारीकरण का ही हिस्सा है जिन्हें नरसिंह राव सरकार की नई आर्थिक नीति के तहत अमल करने का निर्णय लिया गया था । निजीकरण व उदारीकरण कार्यक्रम के दो चरण हैं । स्थिरीकरण और ढाँचागत समायोजन । स्थिरीकरण में सरकार से विदेशी एजेन्सियाँ चाहती हैं कि सरकार अपना राजकोषीय घाटा कम करे, निर्यात कम करे व मुद्रा का अवमूल्यन करे। ढाँचागत समायोजन स्थिरीकरण का ही विस्तार है । इसलिए विदेशी एजैन्सियाँ चाहती हैं कि सरकार विदेशी निवेश के लिए दरवाज़ा खोले, सार्वजनिक क्षेत्र की परिधि को घटाये ताकि निजी क्षेत्र का दायरा बढ़ाएँ, बाज़ार शक्तियों को ज़्यादा मौका प्रदान करे, सब्सिड़ी कम करे आदि । बीच बीच में जन कल्याण की बात तो की जाती है

लेकिन यह बात अहं नहीं । मुख्य बात यह है कि अर्थव्यवस्था को पूँजीवादी मूल्यों के आधार पर चलाया जाय, जिसका बुरा असर आवाम पर ही पड़ता है।

जैसे सूचित किया गया कि आज भूमण्डलीकरण हमारी संस्कृति पर भी हावी हो रहा है । अंग्रेज़ी, दुनिया की मुख्य भाषा बन गई है इसलिए अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे नौजवान अमेरिकी संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । अमेरिकी संस्कृति और भारतीय संस्कृति की मिलावट से एक अपसंस्कृति बन रही है । वह खरीद-बिक्री की चीज़ बन गयी है । बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ संसार के हर स्थानीय संस्कृतिक संसाधनों से जुटकर अपने सांस्कृतिक मालों को सजा-संवारकर बाज़ार में बिक्री के लिए रख रही है । संचार के साधनों, फिल्मों, टी.वी चैनलों, इन्टरनेट आदि पर नियन्त्रण कर अमेरिका ऑन लाइन टाइम वार्नर जैसी कंपनियाँ संस्कृति को मनचाही दिशा दे रही हैं । पिता दिवस, माता दिवस, प्रेमी-प्रेमिका दिवस सब मालों की बिक्री को बढ़ाने के ज़रिए हैं जो भारतीय संस्कृति के भी हिस्से बन गए हैं ।

नव औपनिवेशिक संदर्भ में भौगोलीकरण की अर्थनीति और तज्जन्य उपभोगवादी संस्कृति एवं उससे उद्भुत अमानवीयता के खिलाफ सशक्त कहानियाँ लिखी गई हैं। उदय प्रकाश की कहानी पॉल गोमरा का स्कूटर इसकी सही मिसाल है । आज पूँजीवादी साम्राज्यवादी शक्तियों का हमला प्रत्यक्ष नहीं है । सैनिक कारवाई से ज़्यादा सांस्कृतिक दखलअन्दाज़ी ही होती है । वे हमारी भाषा, संस्कृति सब पर हावी हो रही है । पॉल गोमरा के पिता ने भारतीय संस्कृति के मुताबिक बेटे का नाम रामगोपाल रखा था । लेकिन वर्तमान संस्कृति के प्रभाव

में आकर भारतीय युवा पीढ़ी इतनी बदला गयी है कि अपना नाम तक बदलने के लिए तैयार हो जाती है । रामगोपाल अपना नाम बदलकर पॉल गोमरा रखता है । पॉल गोमरा स्कूटर खरीदने का फैसला करता है यद्यपि उसे स्कूटर चलाना नहीं आता है । आज अवाम तक बाज़ार के पीछे भाग रहा है । उदय प्रकाश के अनुसार अब मानव, इतिहास के सबसे संस्कृति विहिन समय से गुज़र रहे हैं । इसका परिणाम एक पागलनुमा समाज है । पागलपन की तरफ बढ़ने के लिए मज़बूर पॉल गोमरा की ज़िन्दगी यही साबित करती है । कहानी इस बात का खुलासा करती है कि आज की बाज़ारू संस्कृति की गिरफ्त में जीनेवाला कोई भी व्यक्ति किसी भी पल अपनी चेतना को गँवा सकता है । अपनी चेतना पर उसे कोई अधिकार नहीं रह गया है ।

उदय प्रकाश की कहानी 'भाई का सत्याग्रह' का नायक सोचता है कि यह उत्तर आधुनिकता, यह बाज़ारवाद, यह भूमण्डलीकरण, यह आर्थिक उदारतावाद, किसके लिए है ? प्रस्तुत कहानी साबित करती है कि वैश्वीकरण से आम आदमी की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन संभव नहीं है । उनकी कहानी 'वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड' में उपनिवेशवादी परिवेश का सही चित्रण मिलता है । नवउपनिवेशवाद को भारतीय अदालत गुनाह मानती नहीं है । वह तो एक नई आर्थिक व्यवस्था है । पर इस सत्य को अनदेखा कर दिया जाता है कि इस व्यवस्था में देश ही बिक्री की वस्तु बन रहा है ।

संजीव की कहानी 'लिटरेचर' में यह हकीकत पेश की गई है कि विदेशी कंपनियाँ हमारे औषधीय क्षेत्र में इस तरह हावी हो गयी हैं कि जनता के शरीर

तक विदेशी के लिए मुनाफा कमाने का माध्यम बन गये हैं । भारतीय की औषधीय संपदा आज पेंटट के सहारे विदेशी कंपनियों के हाथ में है । संजीव की 'कन्फेशन' कोलियारी उद्योग के निजीकरण के परिणामों पर लिखी गयी सशक्त कहानी है । आज की दुनिया प्रतिस्पर्धा की है । रिश्ते भी यहां बाज़ार में बिक दिये जाते है । यही यथार्थ संजीव की कहानी 'धावक' में प्रस्तुत है । उनकी कहानी 'ब्लौक होल' की नायिका अलका उच्च मध्यवर्गीय आकांक्षा की शिकार है । ब्लौक होल सृष्टि के नाश का अर्थ संकेतित करती है । कहानीकार ने 'ब्लौक होल' को बाज़ारवाद का प्रतीक बनाकर नव उपनिवेशवाद से जुडी समस्याओं को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है ।

असगर वजाहत की 'गिरफ्त', 'टी. पी. देव की कहानियाँ', 'बेनाम आदमी की कहानियाँ', 'विकसित देश की पहचान' आदि में व्यग्यात्मक रूप में वैश्वीकरण की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । इनमें विकास की संकल्पना और उनमें अन्तर्निहित अमानवीयता की पोल खोल दी गई है ।

पंकज विष्ट की कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' में मध्य वर्ग के अहं ग्रस्त मानस के साथ उपभोग संस्कृति को अपनाने की उनकी तीव्र लालसा और उसके भीषण परिणाम को दिखाया गया है । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बाज़ार में चीज़ों को इतना विशिष्ट बनाकर पेश करती हैं कि उसकी गुणवत्ता और उपयोगिता का सवाल नगण्य होने लगता है । उपभोगवादी संस्कृति का यही दलील है कि वस्तुओं के बिना न व्यक्ति की अंहमियत है, न अस्तित्व । इस तथ्य पर प्रकाश डालनेवाली उनकी कहानी है "मोहनराम आखिर क्या हुआ ?" पंकज विष्ट की

'मुकाम' कहानी में शहरीय जीवन की असुरक्षा के साथ अपनी संस्कृति को भूलकर, पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात करते सभ्य समाज पर व्यग्य कसा गया है । इसी तरह कैलाश बनवासी की कहानी 'बाज़ार में रामधन' का भाई मुन्ना नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि है, जो अपने पुरखों की सम्पत्ति बेचकर कोई कारोबार शुरू करना चाहता है । यह कहानी संस्कृति से दूर होती नयी पीढ़ी की मानसिकता के विरुद्ध लिखी गई है । बाज़ार आज सर्वव्यापी हो चुका है और बाज़ारू संस्कृति से चाहते हुए भी कोई भी निकल नहीं पाता । आज बाज़ार की गिरफ्त में आकर ज़मीन, जिन्दगी और उससे जुडे रिश्तों को कायम रखने के लिए आवाम को घोर संघर्ष करना पड़ा रहा है ।

कहानी 'आरोहण' में नायक 'भूप दा' के द्वारा कहानीकार संजीव ने अपनी संस्कृति से जुडे रहने की मानसिकता पर प्रकाश डाला है । यह तो उपभोगवादी संस्कृति के विरुद्ध दर्ज सशक्त कहानी है । कहानी में जिक्र किया गया है कि पहाड़ पर बहुत बर्फ गिरी थी । पहाड़ उसका बोझ न उठा पाया । बर्फ में भूप दा के खेत, मकान, माँ-बाप सब दब गये । लेकिन मेहनती भूप-दा प्रकृति से जूझ लड़कर अपनी ज़मीन वापस बटोर लेता है, जिसमें उसकी आत्मा जुड़ी हुई है ।

भूण्डलीकरण की समस्याओं पर लिखी गयी ऋशिकेश सुलभ की 'फज़र की नमाज़' का नायक बदरू पूँजीवादी शक्तियों के कारनामों से दुभर होती किसानी ज़िन्दगी का प्रतिनिधि है । आर्थिक विषमताओं के कारण उसे अपना खेत बेचना पड़ा । किसानों को अपनी ज़मीन से अलग करने का मतलब उसे

अपनी आत्मा से अलग करना है । रात को अपने बचे हुए खेत में चटाई बिछाकर फज़र की नमाज़ अदा करता बदरू के द्वारा उम्मीद की किरण दिखाने की कोशिश कहानीकार ने की है ।

जितेन्द्र भाटिया की 'अज्ञातवास' में एक कार्यालयी कर्मचारी का चित्रण हुआ है जो हालातों से समझौता करता है । चीनी खरीदने की लंबी कतार में खडे होते, वह काला बाज़ारी का शिकार बनता है । जब वह इसके खिलाफ आवाज़ उठाता है तो उसकी पिटाई होती है । पिटे हुए अपने चेहरे को देखकर विद्रोह की भावना उठना सहज है । लेकिन विद्रोह के स्थान पर अपने चेहरे को गैर का चेहरा समझना उसे अधिक आसान लगता है । हालातों के साथ समझौता करने के लिए मज़बूर आवाम पर कहानीकार ने प्रकाश डाला है ।

संजीव की 'चुनौती' में बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों की अमानवीयता और उसके खिलाफ उठती मज़दूरों की कमज़ोर आवाज़ को दर्ज करने की कोशिश हुई है। बहुर्राष्ट्रीय कंपनियां अपनी कर्मचारियों के साथ हयर-फयर की नीति अपनाती हैं। मज़दूरों की छंटनी जब चाहे ये लोग कर सकते हैं । कहानी के नायक कामतानाथ राय भी छंटनी से डरता है इसलिए मैनेजमेन्ट के शोषण को सहता है । संजीव की कहानी 'हलाफनामा' में पूँजीपतियों के शोषण और मज़दूरों की त्रासद ज़िन्दगी की हकीकतें चित्रित हैं ।

उदय प्रकाश की 'हीरालाल का भूत' में हीरालाल शोषित मज़दूर का प्रतिनिधि है । फिर भी मरते दम तक वह मालिक के प्रति वफादर रहता है ।

अपनी हीन हालत के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए कतराते आवाम के चित्रण के ज़रिए संघर्ष करने की आवश्यकता की ओर भी उदय प्रकाश ने इशारा किया है ।

जितेन्द्र भाटिया की 'ग्लोबलाइज़ेशन' में बदली के मज़दूरों की यातनाऐं एवं संत्रास चित्रित है । अस्थाई मज़दूर असंगठित हैं । इसलिए ठेकेदार कम वेतन के ज़रिए आर्थिक शोषण करते हैं। इस कहानी में भूमण्डलीकरण की विभीषिकाओं की ओर गहरा संकेत मिलता है । बदली के मज़दूरों की बदहाली, शोषित वर्ग के बीच संघर्ष, बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ की चपेट में आई हमारी जनतांत्रिक सरकार की त्रासदी आदि अनेक दुर्निवार समस्याएँ कहानी में दर्ज हैं। जितेन्द्र भाटिया की 'चक्रव्यूह' पूँजीपतियों और उनके दुमछल्ला सरकार द्वारा रचित चक्रव्यूह में फंसे सर्वहारा वर्ग की कहानी है । मज़दूरों के संघर्ष को किसप्रकार कुचला जाता है ,उसकी ज्वलन्त मिसाल है यह कहानी । यह कितना त्रासद है कि कुचलने की नीति औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के इतने सालों के बाद भी ज़ारी है !

नव औपनिवेशिक दौर में नस्ल तानाशाही का प्रभाव भी बरकरार है । हिटलर के बाद नस्ल तानाशाही का सबसे खतरनाक और अमानवीय दौर तो खतम हुआ, लेकिन नस्ल के आधार पर भेद-भाव जारी रहा । आफ्रिका के नीग्रो लोगों के साथ गोरों का व्यवहार, श्रीलंका के तमिला-सिंहल संघर्ष आदि इसका सही सबूत है । और आज भारत में हिन्दुत्व का ताज़ी उभार फाजीवाद की और बढ़ रहा है । यह तो फासीवाद का विकृत चेहरा है । जनता की वास्तविक

तकलीफों और आशंकाओं का दुरुपयोग फासीवाद की एक सामान्य विशेषता है और यह एक जानी मानी सच्चाई है कि फासीवादी गोलबंदियाँ गरीब तबकों और मध्यवर्ग की गरीबी का फायदा उठाती है । भारत में नस्ल के स्थान पर धर्म ही इसकी अहं भूमिका निभाता है ।

हिन्दुओं के, धर्म के आधार पर संपन्न एकीकरण के पीछे उपनिवेशवाद ने महत्वपूर्ण उत्प्रेरक का काम किया है । सांस्कृतिक आधिपत्य के लिए उपनिवेशवाद ने जो प्रयास किए उसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं में सामुदायिक चेतना जागृत हो गई । राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ हिन्दू पुनरूत्थानवाद का ध्वजाधारी बन गया । भारत को हिन्दूराष्ट बनाने की दिशा में संघ अग्रसर एवं कटिबद्ध है । संघ की इस हरकत की वजह से साप्रदायिकता को बढ़ावा मिल गया है और धार्मिक असहिष्णुता भड़क गई है । 1992 दिसंबर 6 के दिन घटित बाबरी मस्जिद का ध्वस और उसके बाद प्रखर बनी सांप्रदायिकता और हिन्दुत्व की प्रयोगशाला के रूप में उभर आया गुज़रात आदि सांप्रदायिकता का परिणाम है, जिसके पीछे नव औपनिवेशिक साम्राज्यवादी ताकतों की अहं भूमिका है ।

उदय प्रकाश की कहानी 'और अन्त में प्रार्थना' सांप्रदायिक फासीवाद पर अधिष्ठित है । हमारी सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जडों पर हमला करनेवाली नव-फासीवादी शक्ति संघपरिवार पर वार करने की बेहतरीन कोशिश प्रस्तुत कहानी में हुई है । इस कहानी के नायक डॉ. वाकणकर डॉक्टरी पेशे के साथ-साथ हिन्दुओं के पुर्नजागरण के लिए भी काम करता रहता था । संघ में डॉक्टर का अटूट विश्वास था । लेकिन धीरे धीरे यह विश्वास टूटने लगता है ।

उनका सन्देह तब सही साबित हुआ जब उसे पता चला कि सत्ता में संघ के आने पर भी शासन में कोई बुनियादी फर्क नहीं हुआ है ।

स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा ?, 'असगर वजाहत की' 'मैं हिन्दु हूँ', 'ज़ख्म', 'गुरू चेला संवाद' आदि कहानियों में भी सांप्रदायिकता से जुड़ी समस्याएँ सही ढंग से चित्रित हैं ।

भूमण्डलीकरण की अमानवीय संस्कृति की त्रासद शिकार है नारी । औद्योगिक क्रान्ति ने औरत को सार्वजनिक उत्पादन के क्षेत्र में स्थान दिलाया तथा उसे आर्थिक शक्ति बनने का आधार प्रदान किया । लेकिन वर्तमान भौगोलीकरण की आर्थिक नीति ने उसे एक बिकाऊ जिस्म में बदल दिया है । भारत की हर लड़की ऐश्वर्या राय बनना चाहती है । इसके लिए कॉस्मेटिक सर्जरी कर रही है । कॉस्मेटिक सर्जरी के बाज़ार ने आभिजात्य वर्ग के साथ मध्यवर्ग को भी अपने कब्जे में कर लिया है । शहरों में ब्यूटी कंटैस्ट का आयोजन किया जाता है । ब्यूटी प्रोडक्ट के लिए हज़ारों रूपये खर्च किए जा रहे हैं । थौन व्यापार एक उद्योग बन चुका है । इंटरनेट में इनके साईट अलग से रहती है जहाँ वेश्यालय से लेकर वेश्याओं की तस्वीर तक की जानकारियाँ उपलब्ध हैं । महिला कहानीकारों ने भूमण्डलीकरण की इन समस्याओं को कहानियों में उतारने की जद्दोजहद की है ।

कृष्णा अग्निहोत्री की 'गाउन' उपभोगवादी संस्कृति के भीषण परिणाम का सही उदाहरण है । कहानी में आर्थिक विवशता में फँसी एक नारी की

मानसिकता का सशक्त चित्रण हुआ है । आज जन संख्या वृद्धि तथा पिछडेपन के कारण आधुनिक भारत में बेरोज़गारी तथा शिक्षित बेरोज़गारी की समस्या शिखर तक पहुँच चुकी है । इस संदर्भ में सिम्मी हर्षिता की चक्रव्यूह कहानी उल्लेखनीय है । महानगर के जीवन पर केन्द्रित चित्रा मुद्‌गल की 'दरमियान' में नौकरीपेशा नारी की समस्याओं का अत्यन्त संवेदनापूर्ण चित्रण हुआ है । आज कल विकास के नाम पर सरकार ने हमे उपभोगवाद का मुखौटा दिया है । लेकिन प्रतियोगिता की धूप इतनी है कि साधारण जनता लुढ़क-लुढ़ककर ही ज़िन्दगी को आगे ले जा सकती है । नमिता सिंह की कहानी 'एक पैरवाला शेर' भी इस समस्या की अभिव्यक्ति का सही उदाहरण है ।

भूमण्डलीकरण के दावेदार हमेशा मज़दूरों के सामने 'हायर फयर' की नीति रखते हैं । मतलब तुम काम कर सकते हो तो करो, नहीं तो तुमको काम से निकाल दिया जायेगा । ममता कालिया की 'बसन्त सिर्फ एक तारीख' इसी समस्या को हमारे सामने प्रस्तुत करती है । मृणाल पाण्डेय की कहानी 'केन्सर' आधुनिक संवेदनाशून्य वर्ग की कहानी है । मृदुला गर्ग की 'अलग अलग कमरे' में दो पीढ़ियों के वैचारिक अन्तर को स्पष्ट किया गया है । आज की पीढ़ी बाज़ारवादी दृष्टिकोण से लैस है । उसका ध्यान आर्थिक लाभ पर केन्द्रित है ।

मणिका मोहिनी की कहानी 'उसका होना न होना' और राशि प्रभा शास्त्री की कहानी 'गहराइयों में गूँजते प्रश्न 'आदि में समलैंगिक सम्बन्धों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है । बदलती दुनिया के नए नैतिक बोध का चित्रण इन कहानियों में हुआ है । सूर्यबाला की कहानी 'घटनाहीन', मँहगाई की इस दुनिया

में ज़िन्दगी को आगे बढ़ानेवाले मज़दूरों की मज़बूरी की कहानी है । सूर्यबाला की कहानी 'रेस' प्रतीकात्मक है । महानगर की तेज़ रफ्तार में एक दूसरे से आगे निकल जाने की प्रतिस्पर्धा को इसमें अंकित किया गया है । दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'राख', मन्नू भण्डारी की कहानी ऊँचाई आदि में टूटते मूल्यों पर प्रकाश डाली गयी हैं । उषा महाजन की कहानी 'जडों से बिछुडे' एन.आर.ऐ लोगों की कहानी है । इसमें भारतीय संस्कृति और भारतीयों को किस तरह तिरस्कृत एवं किनारा कर दिया जाता है, इसका सही वर्णन किया गया है। राजी सेठ की 'अभी तो' परंपरागत आदर्श और आज की पाश्चात्य संस्कृति के संघर्ष पर लिखी गयी सशक्त कहानी है । आज की पीढ़ी इतने आगे निकल चुकी है कि पुरानी पीढ़ी को व्यर्थ और बोझ के रूप में देखती है । निरूपमा सेवती की कहानी 'विमोह' इसके लिए सही उदाहरण है । आज भूमण्डलीकरण ने स्त्री की मेधा, बुद्धि और विवेक को दर किनार कर उसकी देह को प्रोजेक्ट किया है । उषा प्रियंवदा की कहानी 'प्रतिध्वनियाँ' विदेश में बसी एक लड़की की ज़िन्दगी पर लिखी गयी है और वह परिवार के बन्धन से मुक्त खुली ज़िन्दगी चाहती है । इस तरह भूमण्डलीकरण के तहत आज की नारी की त्रासदी को उतारने की कोशिश हुई है ।

औपनिवेशिक सांस्कृतिक हमले का एक माध्यम भाषा है । औपनिवेशिक शक्तियाँ भाषा के ज़रिए एक ओर उनकी अपनी अपसंस्कृति के बीज बोती हैं तो दूसरी ओर उपनिवेशित जनता की भाषा को छीनकर उनकी एकजुट संघर्ष को

आसानी से तोड़ती भी है । समकालीन रचनाकार के लिए भाषा सांस्कृतिक स्वत्व की आधारशिला ही नहीं प्रतिरोध का भी सशक्त माध्यम है । समकालीन कहानीकार चाहते हैं कि कहानियाँ पढ़ते समय पाठकों के मन में विद्रोह की चिनगारियाँ भडक उठें । उन्होंने कथ्य को सशक्त बनाने के लिए शिल्प पक्ष में नवीनता लाने का प्रयास किया है जो पूर्ववर्ती कहानियों से काफी अलग है ।

पूर्व प्रेमचन्द युगीन कहानी में कल्पना, भावुकता, और अतिरंजना की प्रवृत्ति थी । इसलिए भाषा अलंकृत एवं स्थूल थी । प्रेमचन्द के साथ कहानी कल्पना विलास से हटकर यथार्थ के निकट आ गई । आदर्श और यथार्थ के बीच का संघर्ष उस समय की रचना प्रक्रिया की विशेषता थी । पर प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में विभिन्न शैलियों का कारगर ढंग से प्रयोग किया था ।

नई कहानी के तहत की कहानियाँ पढ़कर ऐसा लग सकता है कि वह लेखक की डयरी है क्योंकि कई कहानीकारों ने 'मैं' शैली को अपनाया था, यानी सच्ची कहानी का एहसास पैदा करने के लिए आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई थी । यहाँ 'मैं' वस्तुतः एक अवलोकन दृष्टि है, बिलकुल कैमरे की एक आँख की तरह, और जिसके ज़रिए पाठक दर्शक बनकर साथ चलते हुए दृश्यों को देखता रहता है ।

नई कहानी के बाद अकहानी, सचेतन व सक्रिय कहानी आन्दोलनों के तहत आती कहानीकारों ने भी शिल्प के क्षेत्र में पूर्ववर्ती कहानीकारों के प्रयोग को आगे बढ़ाया है । समकालीन कहानी, खासकर नवऔपनिवेशिक अधिशत्व

व संस्कृति के खिलाफ रचित कहानियों में पूर्ववर्ती शैलियों की सीमाओं को अतिक्रमण करने की कोशिश हुई है ।

इसका प्रमाण है जादुई यथार्थ शैली का प्रयोग । उदय प्रकाश की 'डर', 'डिबिया', पंकज विष्ट की 'मोहन राम आखिर क्या हुआ'? 'खिड़की', 'आवेदन करो' आदि में इस शैली का सफल प्रयोग हुआ है । फैन्टेसी शैली के लिए उदय प्रकाश की 'तिरिछ', व्यग्यात्मक शैली के लिए असगर वजाहत की 'खेल का बूढा मैदान', आत्मकथात्मक शैली केलिए संजीव की 'लोड रोडिंग, 'धावक', प्रतिद्वंद्वी, पूर्व दीप्ति शैली के लिए पंकज विष्ट की 'शबरी शर्मा बीमार है', संजीव की फुटबॉल आदि प्रामाणिक कहानियाँ हैं । उदय प्रकाश की कहानी पॉल गोमरा का स्कूटर, शैली की दृष्टि में बेजोड़ एवं अनन्य है । इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह परंपरागत अन्दाज़ में बिलकुल नही लिखी गई है । कहानी पढ़कर हमें ऐसा लगेगा कि हम किसी अखबार पढ़ रहे हैं जिसमें नवऔपनिवेशिक वर्तमान भारत के समूचे माहौल की खबरें दर्ज हैं।

समकालीन कहानी के शिल्प पक्ष की सबसे बड़ी विशेषता है, जन जीवन से जुड़ी हुई भाषा का प्रयोग । बाज़ारू प्रवृत्ति ने सबसे पहले एफ. एम रोडियो की भाषा को प्रदूषित किया, फिर अखबारों की भाषा को, क्योंकि इन माध्यमों ने लोक धर्म छोड़कर व्यावहारिक भाषा पाठकों तक पहूँचाने के बहाने एक कृत्रिम और मिलावटी भाषा का सृजन किया है । लेकिन समकालीन लेखक भूमण्डलीकरण का निहितार्थ भली-भाँति समझ रहे हैं और भाषा एवं साहित्य के प्रति बहुत सतर्क हैं । वे जानते हैं कि भाषा हमारी पहचान है और भाषा का सृजन

उनकी ज़िम्मेदारी है । इसलिए समकालीन कहानिकारों ने जन जीवन से जुड़ी हुई लोक भाषाओं का प्रयोग किया है । जैसे बंबई भाषा (रमेश उपाध्याय की लाइ लो) उत्तर प्रदेश बोली (चित्रा मद्‌गल की लकड़बग्धा) उर्दू मिक्षित भाषा (नासिरा शर्मा की गूँगा आसमान) पंजाबी मिश्रित शब्द (पंकज विष्ट की कहानियाँ) आदि उदाहरण हैं ।

दुनिया की अन्य भाषाओं की तुलना में अंग्रेज़ी का प्रचार प्रसार तेज़ी से हो रहा है । उसकी खास खूबियों की वजह यह संभव नहीं हुई है । अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की भाषा है । साम्राज्यवाद के दुनिया के कोने कोने में फैलने के साथ अंग्रेज़ी भी फैलती गई है । भारत में स्वाधीनता के बाद भी अंग्रेज़ी का दबदबा कायम था, अब औपनिवेशिक परिवेश में उसका दबाव और मज़बूत हो गया है । समकालीन कहानीकारों ने इस हकीकत को कहानियों के पात्रों के ज़रिए बखूबी खुलासा किया है ।

निष्कर्षतः नव उपनिवेशवादी वर्तमान दौर में जो भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया तेज़ पकड़ती जा रही है, यह वैश्विक पूँजीवाद विकास का अगला कदम है । इस व्यवस्था में वित्तीय पूँजी (Finance Capital) ने अपने उत्पादों और आर्थिक प्रक्रियाओं के साथ दुनिया के कोने कोने में जाने की छूट हासिल की है। मतलब विकसित साम्राज्यवादी देश अपनी पूँजी और ताकत की कूवत पर दुनिया भर के विकासशील एवं गरीब देशों के बाज़ार पर कब्जा कर सकते हैं। मुनाफा कमा सकते हैं । इस साम्राज्यवादी शोषण का दायरा सिर्फ आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है । हमारे सांस्कृतिक क्षेत्र सहित सामाजिक

जीवन के तमाम आयामों के साथ इसका गहरा सरोकार है और उससे बुरी तरह प्रभावित है । मतलब आर्थिक, सामाजिक समस्याएँ, किसानों दलितों व स्त्रियों के मसलों व शैक्षिक, भाषिक मुद्दों आदि तमाम क्षेत्र पर भूमण्डलीकरण प्रक्रिया का दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है । हमारे संस्कृतिकर्मी खासकर साहित्यकार इन हकीकतों से बेहद वाकिफ हैं और समकालीन कहानीकारों ने वर्तमान औपनिवेशिक (भूमण्डलीय) यथार्थ को समझने की सूझबूझ दिखाई है और अपने माध्यम के ज़रिए इसके खिलाफ आवाज़ बुलन्द करने की जद्दोजहद की है । औपनिवेशिक संदर्भ में, उपनिवेशी दबाव के खिलाफ लिखी गई ये कहानियाँ इसका ज्वलन्त सबूत हैं ।

❖ ❖ ❖

संदर्भ ग्रन्थसूची

आधार ग्रन्थ

1. आखिर क्या हुआ — पंकज विष्ट
सांखला प्रिंटेर्स
बीकानेर - 334 001
संस्करण : 1997

2. आदि-अनाधि - 1 — चित्रा मुद्गल
सामयिक प्रकाशन
जटवाडा,
नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज,
नई दिल्ली -110002
संस्करण - 1998

3. आदि-अनाधि - 2 — चित्रा मुद्गल
सामयिक प्रकाशन
जटवाडा,
नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज,
नई दिल्ली -110002
संस्करण - 1998

4. आदि-अनाधि - 3 — चित्रा मुद्गल
सामयिक प्रकाशन
जटवाडा,
नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज,
नई दिल्ली -110002
संस्करण - 1998

5.	आधी सदी का सफर्नामा	स्वयं प्रकाश यात्रा बुक्स 203, आशादीप, 9 हेली रोड नई दिल्ली 110 001
6.	उनका डर तथा अन्य कहानियाँ	असगर वजाहत शिल्पायन, 10295, लेन नं 1 वेस्ट गोरखा पार्क, शहादरा दिल्ली 110 032 संस्करण - 2004
7.	श्रेष्ठ समांतर कहानियाँ	सं. हिमाशु जोशी पराग प्रकाशन, दिल्ली 32 संस्करण 1976
8.	और अन्त में प्रार्थना	उदय प्रकाश राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.लि, 2/38 अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण - 1998
9.	और सावित्री ने कहा	उषा महाजन किताब घर, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण - 1996
10.	कथान्तर	अरविन्द त्रिपाठी शिल्पायन 10295, लेन न. 1 वेस्ट गोरखपार्क शाहदरा,दिल्ली -110032 प्रथम संस्करण - 2003

11.	कर्फ्यू तथा अन्य कहानियाँ	नमिता सिंह शिल्पायन 10295, लेन नं 1, वेस्ट गोरखा पार्क शहादरा दिल्ली - 110 0032
12.	केसर कस्तूरी	शिवमूर्ति राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि, 2/38 अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002
13.	चर्चित कहानियाँ	पंकज विष्ट वाणी प्रकाशन 21 -ए दरियागंज नई दिल्ली - 110002
14.	टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ	पंकज विष्ट किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली - 110 002 संस्करण - 1995
15.	तिरिछ	उदय प्रकाश वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002 संस्करण - 1989

16. दल प्रतिनिधि कहानियाँ
भीष्म साहनी
किताब घर प्रकाशन
4855-56/24
अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली 110 002
संस्करण 2005

17. दस प्रतिनिधि कहानियाँ
मिथिलेश्वर
किताब घर प्रकाशन
4855-56/24
अंसारी रोड
दरियागंज,
नई दिल्ली 110 002
संस्करण 2006

18. दस प्रतिनिधि कहानियाँ
भीष्म साहनी
किताब घर प्रकाशन
4855-56/24
अंसारी रोड
दरियागंज,
नई दिल्ली 110 002
संस्करण 2006

19. नवें दशक की कथायात्रा
सं. धमेन्द्र गुप्त
साहित्य सहकार
29/62-बी
गली नं 11
विश्वास नगर,
नई दिल्ली 110 032
संस्करण 1998

20.	निर्वासन	ऊर्मिला शिरीष भारतीय ज्ञानपाठ प्रकाशन, नई दिल्ली 110 003 संस्करण 2003
21.	नौकरी पेशा नारी कहानी के आईने में	सं. पुष्पपाल सिंह सामयिक प्रकाशन जटवाडा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 प्र. सं. 1984
22.	पन्द्रह जमा पच्चीस और अन्य कहानियाँ	पंकज विष्ट तक्षशिला प्रकाशन संस्करण - 1980
23.	पॉल गोमरा का स्कूटर	उदय प्रकाश राधा कृष्णा प्रकाशन प्र. लि., 2/38 अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली 110 002
24.	प्रतिनिधि कहानियाँ	मोहन राकेश राजकमल प्रकाशन प्र. लि, बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली 110 002 प्र, सं. 2004

25.	भारत विभाजनः हिन्दी श्रेष्ठ कहानियाँ	सं. नरेन्द्र मोहन निधि प्रकाशन, दिल्ली - 110 002
26.	यशपाल की संपूर्ण कहानियाँ	यशपाल लोकभारती प्रकाशन 15-ए महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद - 1 संस्करण 1993
27.	वैराग्य	गीतांजली श्री राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली - 110 002 संस्करण - 1999
28.	विद्रोह की कहानियाँ	सं. गिरिराज शरण प्रभात प्रकाशन चावडी बाज़ार दिल्ली - 110 006 संस्करण 1986
29.	व्यवस्था विरोधी कहानियाँ	सं. नरेन्द्र मोहन और बदीउज्जमाँ ज्ञानगंगा, 205ृसी चावडी बाज़ार संस्करण -1995
30.	शहादतनामा	जितेन्द्र भाटिया पराग प्रकाशन, 3/114 कर्ण गली विश्वास नगर, शहादर दिल्ली - 32

31. सच तो यह है — उषा महाजन
कल्याणी शिक्षा परिषद
3320-21. जटवाडा,
दरियागंज,
नई दिल्ली - 110 002
संस्करण 2004

32. समकालीन हिन्दी कहानियाँ — सं. ऋषिकेन, राकेश रेनु
परिभाषा प्रकाशन,
धर्म भवन शंकर चौक,
हुमरा,
सीतामठी 843 301
प्र. सं. 1992

33. सिद्धार्थ का लौटना — जितेन्द्र भाटिया
आधार प्रकाशन प्र. लि
एस.सि.एफ 267,
सेक्टेर 16
पंचकूला - 134 113
(हरियाना)

34. संजीव की कथायात्राः पहला पडाव — संजीव
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज,
नई दिल्ली - 110 002
प्र. सं. 2008

35. संजीव की कथायात्राः दूसरा पडाव — संजीव
वाणी प्रकाशन, 21 - ए
दरियागंज,
नई दिल्ली - 110 002
दिल्ली, प्र.सं. 2008

36.	संजीव की कथायात्राः तीसरा पडाव	संजीव वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली 110002 प्र.सं. 2008
37.	हरी बिन्दी	मृदुला गर्ग सामयिक प्रकाशन जटवाडा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 प्र. सं. 2006
38.	हिन्दी कहनियाँ	सं. जैनेन्द्र कुमार लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मागाँधी मार्ग इलाहाबाद - 1

आलोचनात्मक ग्रंथ सूची

39.	अमरकान्त का कथा साहित्य	बहादुर सिंह परमार शिल्पायन - दिल्ली 32 सं - 2007
40.	अयोध्या	भानुप्रताप शुक्ल विक्रम प्रकाशन, सं. 1998
41.	अयोध्या कुछ सवाल	मालिनी भट्टाचार्य सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली 110 001, प्र.सं. 1994

42.	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	नामवर सिंह लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद - 1 प्र. सं. 1986
43.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.बच्चन सिंह लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महातामा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद -1, सं. 1986
44.	आज की कहानी	विजय मोहन सिंह राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली 110051 सं. 1983
45.	आज़ादी 50 वर्ष क्या खोया, क्या पाया?	सं. देवेन्द्र उपाध्याय सामायिक प्रकाशन, सं. 1998
46.	औरत कल, आज और कल	आशाराणी व्होरा कल्याणी शिक्षा परिषद 3320-21 जटवाडा, दरियागंज नई दिल्ली 110 002 सं. 2005
47.	अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य	मीरा गौतम वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज नई दिल्ली - 110 002 संस्करण 2008

48.	इतिहास और वर्ग चेतना	ग्यार्ग लूकाज़ प्रकाशन संस्थान 4715/21 दरियागंज नई दिल्ली - 110 002
49.	उदारीकरण का सच	अमित भादुडी दीपक नय्यर राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना, प्र.सं. 1996
50.	उदारीकरण की राजनीति	राजकिशोर वाणी प्रकाशन नई दिल्ली - 110 002 प्र.सं. 1998
51.	एक अहिन्दु का घोषणा पत्र	राजकिशोर प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली - 110 002, प्र.सं. 2002
52.	कथा साहित्य के सौ बरस्	विभूति नारायण राय शिल्पायन 10295, लेन. नं. 1 वेस्ट गोरखा पार्क शहादरा, दिल्ली 32
53.	कथाकार संजीव	सं. गिरीश काशिद शिल्पायन, दिल्ली 32 प्र. सं. 2008

54.	कहानी के नये प्रतिमान	कुमार कृष्ण वाणी प्रकाशन 21 - ए दरियागंज नई दिल्ली 110 002
55.	कहानी समकालीन चुनौतियाँ	शंभू गुप्त वाणी प्रकाशन 21-ए दरियागंज नई दिल्ली 110 002 प्र.सं. 2009
56.	कहानी स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन नई दिल्ली - 110 002 प्र. सं. 1968
57.	गुजरात - हादसे की इक़ीक़त	सं. सिद्धार्थ वरदराजन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्र.सं. 2004
58.	जनवादी कहानी-पूर्व पीढ़ी से पुनर्विचार तक	रमेश उपाध्याय वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज नई दिल्ली - 110 002, प्र. सं. 2000
59.	जीना है तो लडना है	वृन्दा कारात सामयिक प्रकाशन जटवाडा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली 110 002,

		प्र. सं. 2007
60.	जीवन की तनी डोर ये औरतें	नीलम कुलश्रेष्ठ मेधा बुक, एक्स-11 नवीन शहादरा, दिल्ली - 110 032 प्र. सं. 2005
61.	डब्ल्यू.एस.एफ साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स	सं. अरविन्द सिंह सत्यम राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ - 226 020 प्र. सं. 2004
62.	नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर शब्दकार 2203, गली डकौतान तुर्कमान गेट, दिल्ली 110 006 प्र. सं. 1978
63.	नयी कहानी, नए सवाल	डॉ सत्यकाम कला मुद्रण, पटना - 800 001 प्र. सं. 2002
64.	नयी कहानी पुनविचार	मधुरेश नेशनल पब्लशिंग हाउस 2/35 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली 110 002 प्र.सं. 2008

65. नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति — सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी
राजकमल प्रकाशन प्र.लि
1 बी नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज
नई दिल्ली - 110 002

66. नये साम्राज्य के नये किस्से — अरुधति रॉय
पेंगुइन बुक्स
प्र. सं. 2005

67. नारीवादी विमर्श — राकेश कुमार
आधार प्रकाशन प्र. लि
एस. सी.एफ 267
सेक्टेर - 16
पंचकूला - 134113
(हरियाना)

68. नंदीग्राम मीडिया और भूमण्डलीकरण — जगदीश्वर चतुर्वेदी
अनामिका पब्लिशिंग एवं
डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज
नई दिल्ली - 110 002,
प्र. सं. 2008

69. भूमण्डलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र — प्रभा खेतान
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली - 110 002
प्र. सं. 2007

70. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य — रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन 21 ए
दरियागंज,
नई दिल्ली - 110 002

71.	महिला रचनाकारों की कहानियों में जीवन मूल्य	डॉ. भारती रोक्के विद्या प्रकाशन, कानपुर 22 प्र.सं. 2008
72.	मोहन राकेश की कहानियों में नारी चरित्र	डॉ. राव साहेब जाधव चन्द्र लोक प्रकाशन कानपूर - 208 021 प्र.सं. 2005
73.	राष्ट्रभाषा का आयोध्या काण्ड	अमय कुमार दुबे वाणी प्रकाशन, प्र. सं. 2005
74.	पूँजीवाद में रूस का संक्रमण	प्रो. अनुराधा. एम.चिनाँय पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्र. सं. 1999
75.	बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ	प्रभा खेतान वाणी प्रकाशन - 21 ए दरियागंज नई दिल्ली - 110 002
76.	भारतीय राजनीति का अन्तविरोध	मधु लिमये सारांश प्रकाशन, प्र. सं. 1996
77.	भूमण्डलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श	सुधीश पचौरी प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली 110 030 प्र.सं. 2003

78.	भूमंण्डलीकरण की चुनौतियाँ	सच्चिदानन्द सिन्हा वाणी प्रकाशन 21 - ए दरियागंज, नई दिल्ली 110 002
79.	विनाश को निमंत्रण	सं. राज किशोर वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 प्र.सं. 199
80.	वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण	नीरजा जैन गर्गी प्रकाशन 127 न्यू आवाज़ विकास कॉलनी, सहारनपूर - 247 0001 प्र. सं. 2004
81.	वैश्वीकरण? वैश्वीकरण समर्थक बौद्धिक छल का खुलासा	कंवलजीत सिंह संवाद प्रकाशन शास्त्री नगर मेरठ 250 004 प्र.सं. 2008
82.	सदी के प्रश्न	जितेन्द्र भाटिया भारतीय ज्ञानपीठ, इंस्टिटयूशन अरिया लोदी रोड नई दिल्ली 110 003 प्र. सं. 2004

83.	समकालीन कहानी का समाजशास्त्र	देवेन्द्र चौबे प्रकाशन संस्थान 4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली 110 002
84.	समकालीन भारत	मनोहर पुरी उषा पुरी अनमोल साहित्य प्रकाशन, प्र. सं. 2000
85.	साम्राज्यवाद का उदय और अन्त	अयोध्या सिंह प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 110 002 प्र. सं. 2002
86.	साम्राज्यवादी वैश्वीकरण	फ़िडेल कास्त्रे संवाद प्रकाशन शास्त्री नगर, मेरठ - 250 004 प्र. सं. 2008
87	साम्यवादी विश्व का विघटन और समाजवाद का भविष्य	मस्तराम कपूर सारांश प्रकाशन नई दिल्ली - 110 091 प्र.सं 2001
88.	स्त्री	दिनेश धर्मपाल भावना प्रकाशन दिल्ली - 110 091, प्र. सं. 2007

89. स्त्री अस्मिता - साहित्य और विचारधारा — जगदीश चतुर्वेदी, सुधा सिंह, आनन्द प्रकाशन 176-178, रवीन्द्र सरणी, कोल्कत्ता

90. स्त्री उपेक्षिता — सिमोन द बोअर, प्रभा खेतान, सरस्वती विहार जी.टी रोड, शहारदा, दिलशाद गार्डेन दिल्ली 110 095

91. स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने — रमणिका गुप्ता, शिल्पायन, 10295 लेन. नं. 1 वेस्ट गोरखा पार्क शहादरा, दिल्ली -32

92. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्प — डॉ शिव शंकर पाण्डेय, आलेख प्रकाशन दिल्ली 1998

93. हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास — डॉ हेतु भरद्वाज, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलनी चौडा रास्ता जैपूर - 302 003, पृ. सं. 2005

94.	हिन्दी कहानी का प्रगतिवादी रवैया	डॉ. वी. के. सुब्रह्मण्यन जवाहर पुस्तकालय मथुरा - 281 001, प्र. सं. 2007
95.	हिन्दी कहानी का समकालीन परिवेश	सं. दिविक रमेश प्रंथकेतन दिल्ली - 110 032 प्र. सं. 2006
96.	हिन्दी कहानी का विकास	मधुरेश सुमित प्रकाशन, बी - 43, गोविन्दपुर, इलाहाबाद, प्र. सं. 2000
97.	हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगति	डॉ. हृदयपाल वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
98.	हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ	सुरेन्द्र चौधरी राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 110 002 प्र. सं. 1995
99.	हिन्दी कहानी समकालीन परिदृश्य	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ जवाहर पुस्तकालय मधुरा (यु.पी) 281 001 प्र. सं. 2005
100.	हिन्दी साहित्य में महानगरीय नारी जीवन	डॉ. बाबा साहेब कोकार्ट समता प्रकाशन-कानपूर प्र. सं. 2003

अंग्रेज़ी सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

101. Globalization — Man Fed. B. Steger, Oxford University Press, 2003

102. Indias Foreign Policy Since Independence — V.P. Dutt, National book trust, India A-5, Green Park New Delhi 110 016, 2007

103. Making Globalization works — Joseph E. Stiglitz, W.W. Norton & Company, 2006

मलयालम सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

104. Aagolavalkaranam, Artham, Vyapthi, Sidhantham — M.P. Veerendra Kumar, Mathrubhumi Books, The State Institute of Language, Keala, Thiruvananthapuram, 2000

105. Aagolarvalkaranathinte Puthuyudhangal — Vandana Shiva, D.C. Books, Kottayam, 2007

106. Adhiniveshathinte Adiozhukukal — M.P. Veerendra Kumar, Mathrubhumi Books, 2004

107.	Ghattum Kanacharadum	M.P. Veerendra Kumar Mathrubhumi Books 1994
108.	Jalayudhangal	Vandana Shiva Mathrubhumi books 2007
109.	Lokavyapara Sangadhanayum Oorakudukkukalum	M.P. Veerendra Kumar P.A. Vasudevan Mathrubhumi books Kozhikode
110.	Roskshathinte Vithukal	M.P. Veerendra Kumar Mathrubhumi Books 2007

पत्र-पत्रिकाऐं

1.	कथन	अप्रैल - जून - 2005
2.	कथन	अक्तूबर - दिसंबर - 2005
3.	कथाक्रम	अप्रैल - मई - 2007
4.	कथादेश	अप्रैल - 2007
5.	मधुमति	अप्रैल-मई 2003
6.	मधुमति	अप्रैल - मई - 2004
7.	वर्तमान साहित्य	जनवरी - 2007
8.	वर्तमान साहित्य	जून - 2007
9.	वर्तमान साहित्य	सितंबर - 2007
10.	वर्तमान साहित्य	मार्च - 2008
11.	वर्तमान साहित्य	आगस्त - 2008
12.	वर्तमान साहित्य	अप्रैल - 2009

13. वसुधा - अक्तूबर - 2003
14. वागर्थ - फरवरी - 2002
15. विकल्प - जून - 1007
16. विकल्प - 4 मार्च - 1999
17. हंस - फरवरी - 1999
18. हंस - मार्च - 1999
19. हंस - अप्रैल - 1999
20. हंस - जून - 1999
21. हंस - नवंबर - 1999
22. हंस - फरवर्री - 2001
23. हंस - अप्रैल - 2001
24. हंस - आगस्त - 2001
25. हंस - अक्तूबर - 2001
26. हंस - नवंबर - 2001
27. हंस - दिसंबर - 2001
28. हंस - अप्रैल - 2002
29. हंस - मई - 2002
30. हंस - जून - 2002
31. हंस - अगस्त - 2002
32. हंस - जनवरी - 2003
33. हंस - अप्रैल - 2003
34. हंस - अगस्त - 2003
35. हंस - सितंबर - 2003

36.	हंस	- नवंबर - 2003
37.	हंस	- दिसंबर - 2003
38.	हंस	- फरवरी - 2004
39.	हंस	- मार्च - 2004
40.	हंस	- मई - 2004
41.	हंस	- जुलाई - 2004
42.	हंस	- अगस्त - 2004
43.	हंस	- सितंबर - 2004
44.	हंस	- जनवरी - 2005
45.	हंस	- जुलाई - 2005
46.	हंस	- अगर्स्त - 2005
47.	हंस	- सितम्बर- 2005
48.	हंस	- नवंबर - 2005
49.	हंस	- फरवरी - 2006
50.	हंस	- मई - 2006
51.	हंस	- अगस्त - 2006

अंग्रेज़ी पत्रिकाएें

52.	Front Line	- November 17, 2006
53.	Front Line	- June 1, 2007
54.	Front Line	- Septembet 7, 2007
55.	Front Line	- March 28, 2008
56.	Front Line	- December 4, 2009
57.	Front Line	- December 18, 2009

58.	Front Line	- April 9, 2010
59.	India Today	- February 19, 2007
60.	India Todat	- June 17, 2007
61.	Out Look	- December 11, 2006
62.	Out Look	- April 9, 2007
64.	Out Look	- November 12, 2007
65.	Out Look	- September 3, 2007
66.	Out Look	- August 4, 2008
67.	Out Look	- November 9, 2009
68.	Out Look	- December 7, 2009
69.	The Week	- June 24 - 2007

मलयालम पत्रिकाऐं

70.	Malayalam Varika	- June 1, 2007
71.	Malayalam Varika	- December 14, 2007
72.	Malayalam Varika	- December 21, 2007
73.	Malayalam Varika	- September 5, 2008
74.	Mathrubhoomi	- December 20, 2007
75.	Mathrubhoomi	- May 7, 2007
76.	Mathrubhoomi	- June 4, 2007
77.	Mathrubhoomi	- June 7, 2007
78.	Mathrubhoomi	- March 28, 2009

79. Mathrubhoomi - February 25, 2009

80. Mathrubhoomi - August 7, 2008

81. Mathrubhoomi - December 15, 2007

82. Mathrubhoomi - December 3, 2007

83 Madhyamam - March 23, 2009

84. Madhyamam - March 30, 2009

85. Madhyamam - June 23, 2010